देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
July 2025
Vol.-22, Issue-1

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

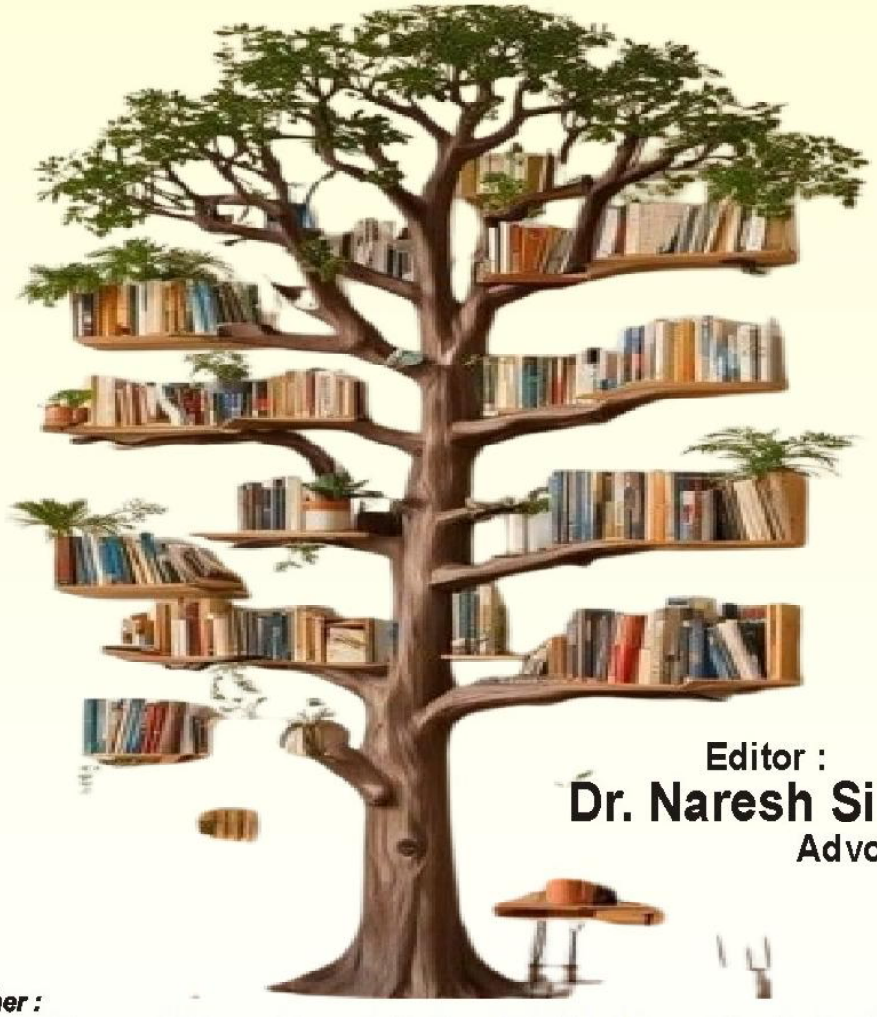

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-1(1) (जुलाई 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – जुलाई 2025

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	वैशेषिक दर्शन के द्रव्यों का विश्लेषण	एकलव्य	10–13
3.	कबीर का रहस्यवाद, अहिंसावाद, और प्रपत्तिवाद का मेल	रामुराम	14–17
4.	Role of Academic Libraries in Supporting Digital Humanities Research in Indian Universities	Deepika Raj, Dr. Dharma Vir Singh	18-35
5.	भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	SURESH CHAND	36-40
6.	पृथ्वी की आतंरिक संरचना	Nena Ram Prajapat	41-44
7.	Innovative Activities in Higher Education for Quality Development	Dr. Satish Chand Mangal, Dr. Mukesh Kumar Sharma, Mrs. Rukmani Sharma	45-51
8.	बिगड़ता पर्यावरण लुप्त होती नदियां : एक विवेचनात्मक अध्ययन सरस्वती के संदर्भ में	डॉ. जितेन्द्र सिंह	52–56
9.	AI AND HUMAN RIGHTS : A CRITICAL EXAMINATION OF AI IMPACT ON ACCESS TO EDUCATION, HEALTHCARE AND EMPLOYMENT	RICHA MITTAL, ANKIT SINGH RAJPUT	57-70
10.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री जीवन	कट्टा विष्णुवर्धन रेड्डी	71–74
11.	समुद्रः सतत ऊर्जा का भविष्य : एक भौगोलिक दृष्टिकोण	Sunita	75-80
12.	रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी की शिक्षा नीतियों की आधुनिक भारत में प्रासंगिकता : एक समग्र विश्लेषण	डॉ. राजकुमार रावत	81–86
13.	हिंदी साहित्य में नारीवाद का विकास	डॉ. वैशाली सिंह	87–90
14.	नारी जीवन की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण	रीता मौर्य	91–94
15.	Women in Classical and Mythological Texts	GURMEET KAUR	95-102
16.	Unveiling the Reality of Reaction Mechanisms Through Product Identification, Isotopic Tracers, and Detection of Short-Lived Intermediates	Dr. Amardeep Kumar	103-108

17.	कुमाऊ से पलायन : एक अध्ययन	ममता शाह, डॉ. राजेश प्रसाद	109–112
18.	महाराजा रणजीत सिंह से पूर्व पंजाब में खालसा राज्य की स्थापना एक समीक्षा	डॉ. जयश्री, तंवर, रितु अग्रवाल	113–117
19.	पद्मावत में 'प्रेम'	डॉ० जितेन्द्र कुमार	118–125
20.	**THERMODYNAMICS OF BLACK HOLES : THE ORETICAL DEVELOPMENTS AND INFORMATION PARADOX**	**Prashant Bhagwanrao Bunde Dr. Namdev Pawar,**	**126-140**
21.	**The Underdog Bowling to the Cultural Field in Kukunoor's Iqbal**	**Anas Tabraiz**	**141-152**
22.	भारत में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण : चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. कुमकुम श्रीवास्तव	153–157
23.	प्रेमचंद्र के कथा-साहित्य में नारी	डॉ० वंदना	158–163
24.	मन्नू भण्डारी की कहानियों में पारिवारिक विघटन	मीर जाहिदुल इसलाम	164–167
25.	'फिर उगना' के बहाने आदिवासी चेतना की पुनर्रचना	ज्ञानदीप गौतम	168–173
26.	भगवानदास मोरवाल की कहानियों में सामाजिक चेतना	टंकर बाबू	174–179
27.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में निहित व्यंग्य	भक्ति कुमारी	180–185
28.	समकालीन कविता, जीवन मूल्य और यथार्थ	डॉ. बृजमोहन द्विवेदी	186–189
29.	सभ्यता विमर्श और गांधी की समावेशीय दृष्टि	डॉ. प्रार्थना सिंह, डॉ. रविश कुमार सिंह	190–194
30.	जनसंख्या नियंत्रण में परिवार नियोजन की भूमिका	डॉ. विजेता सिंह	195–200
31.	**Foreign Language Anxiety: Barriers to Learning French in Indian Classrooms**	**L. SHERINE JAQULINE MARY**	**201-205**
32.	सूर्यबाला के कथा साहित्य में जीवन मूल्य एवं संघर्ष	डॉ. अंजू शर्मा	206–210
33.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में सांप्रदायिकता : संक्षिप्त परिचय	राहुल साव	211–217
34.	आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों में बख्तियारपुर प्रखंड के हरदासपुर गांव के जनसंचार का प्रभाव	नीतीश वर्धन	218–226

संपादकीय...

वक्त के आईने में साहित्य की परछाइयाँ

"बाहर से शांत दिखने के लिए
अंदर से बहुत लड़ना पड़ता है...।"

इस एक नज्मी पंक्ति में आज का समय जैसे सिमट आया है – एक अंतर्विरोध से भरा यथार्थ, जहाँ समाज का चेहरा मुस्कुराता दिखता है लेकिन भीतर कहीं गहरे संघर्ष की लपटें हैं। बोहल शोध मंजूषा का यह 'जुलाई 2025 अंक' भी इसी अंतर्दृष्टि को आत्मसात करता है कृ जहाँ शोध, साहित्य और संवेदना, सब एक साथ चलते हैं। आज का साहित्यकार, आलोचक और शोधार्थी केवल रचनाओं का पाठक नहीं, बल्कि समय का साक्षी भी है। वह न केवल समाज की धड़कनों को सुनता है, बल्कि उनके अर्थ भी टटोलता है। इस अंक में संकलित रचनाएँ इसी साक्ष्य को विस्तार देती हैं। कुछ समकालीन काव्य विमर्शों पर विचार करते हुए, तो कुछ शोध–लेख सामाजिक संरचना में साहित्य की भूमिका पर रोशनी डालते हैं।

हम ऐसे समय में हैं जहाँ साहित्य महज भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक चेतना का एक औजार बन चुका है। शोध और विश्लेषण की दिशा भी अब केवल शास्त्रीय व्याख्याओं तक सीमित नहीं रही। वह जनपदीय चेतना, हाशिए के विमर्श, स्त्री दृष्टिकोण और अंतर्जाल पर उभरते नव–स्वरूपों की ओर भी बढ़ रही है।

"हर लम्हा सौदागर होते हैं
दौलत के शोकीन लोग...।"

यह भी आज की मनोवृत्ति को उजागर करने वाली एक और नज्मी झलक है। जहाँ मूल्य और मुनाफा, भावना और बाजार के बीच लगातार द्वंद्व चलता रहता है। साहित्य इस द्वंद्व को केवल दर्ज नहीं करता, बल्कि उसे चुनौती भी देता है। इस अंक में प्रकाशित कई लेखकों ने परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष को अपनी दृ ष्टि से देखा है। कुछ ने लोक साहित्य को नई व्याख्या दी है, तो कुछ ने फेसबुक, ब्लॉग और यूट्यूब पर हो रहे सृजनात्मक कार्यों की प्रामाणिकता पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत किया है। यह संपादकीय मंडल के लिए गर्व की बात है कि बोहल शोध मंजूषा अब ऐसी आवाजों का मंच बन रही है, जो समय के खिलाफ खड़े होकर सत्य की तलाश करती हैं।

हम यह भी देख रहे हैं कि नवोन्मेषी शोध छात्र अब केवल विश्वविद्यालयों के परिसरों तक सीमित नहीं हैं। वे गाँव की धूल से लेकर शहर की भीड़ तक, हर अनुभव को शोध की जमीन बनाते हैं। यही कारण है कि इस अंक में ग्रामीण संवेदना, दलित विमर्श, पर्यावरण चेतना, बाल साहित्य, मीडिया भाषा और न्यायिक साहित्य जैसे विविध पक्षों पर आलेख शामिल किए गए हैं।

यह अंक समर्पित है उन सभी अनदेखे और अनकहे अनुभवों को, जिन्हें साहित्य ने शब्द दिए हैं। यह प्रयास रहेगा कि हर अंक के साथ हम उस मौन को भी स्वर दें जो समाज के कोनों में घुट रहा है।

अंत में, मैं उन सभी लेखकों, समीक्षकों और पाठकों का आभार प्रकट करता हूँ जो इस वैचारिक यात्रा में सहभागी बने हैं। आइए, हम सब मिलकर बाहर की शांति को केवल मुखौटा न बनने दें, बल्कि भीतर की लड़ाई को भी समझें, स्वीकारें और साहित्य के माध्यम से उस पर संवाद करें।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 10-13

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैशेषिक दर्शन के द्रव्यों का विश्लेषण

एकलव्य

पिता का नाम – नितिन रुंगटा

श्रीअन्नम्भट्ट ने तर्कदीपिकाटीका में द्रव्य को परिभाषित करते हुए कहा है– 'द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्'। अर्थात् जिसमें द्रव्यत्व जाति रहती है अथवा जिसमें गुणवत्ता होती है, उसे ही द्रव्य कहते हैं। इसी प्रकार वैशेषिकसूत्र नामक ग्रन्थ में भी द्रव्य को क्रिया एवं गुण से युक्त तथा कार्यमात्र का समवायिकारण माना है, यथा 'क्रिया–गुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम्' इति (वैशेषिकसूत्र – १. १. १५) द्रव्य के नौ भेद माने गये हैं, जो कि निम्नानुसार हैं –१. पृथ्वी, २. जल, ३. तेज, ४. वायु, ५. आकाश, ६. काल, ७. दिशा, ८. आत्मा, तथा ९. मन। यथा– 'तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवा– य्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव' (तर्कसङ्ग्रह)। इनके मत में द्रव्य के नौ ही भेद होते हैं, इसी कारण ये मीमांसासम्मत अन्धकार को दशम द्रव्य (जो कि क्रियाहीन या गतिशून्य है) के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करते हैं। न्याय–वैशेषिक मत में अन्धकार पृथक् द्रव्य नहीं है, अपितु तेज का अभाव रूप ही है। अतः द्रव्य नौ ही हैं।

१. पृथिवी – आचार्य श्रीअन्नम्भट्ट के अनुसार 'तत्र गन्धवती पृथिवी' (तर्कसङ्ग्रह)। अर्थात् उन नौ द्रव्यों में, जिसमें गन्ध नामक गुण रहता है, उसे 'पृथिवी' कहते हैं। पृथिवी के दो प्रकार होते हैं – नित्यपृथिवी एवम् अनित्यपृथिवी। नित्यपृथिवी परमाणुरूप होती है तथा अनित्यपृथिवी कार्यरूप होती है। अनित्यपृथिवी के पुनः तीन प्रकार होते हैं – १. शरीर, २. इन्द्रिय तथा ३. विषय। आत्मा के भोगायतन को शरीर कहते हैं। संसार में उत्पन्न सभी प्राणियों के शरीर पार्थिव शरीर हैं। पृथिवी की गन्ध को ग्रहण करनेवाले घ्राणेन्द्रिय को इसका इन्द्रिय माना जाता है तथा मृत्तिका–पाषाणादि पृथिवी के विषय हैं। इस पृथिवी में ही चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य सात प्रकार के रूप पाये जाते हैं, यथा – 'चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। तच्च शुक्ल–नील–पीत–रक्त–हरित–कपिश– चित्रभेदात् सप्तविधम्। ....तत्र पृथिव्यां सप्तविधम्' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार रसनेन्द्रिय से ग्राह्य छरू प्रकार के रस भी पृथिवी में ही रहते हैं, यथा– 'रसनाग्राह्यो गुणो रसः। स च मधुराऽम्ल–लवण–कटु–कषाय–तिक्तभेदात् षड्विधः।..... तत्र पृथिव्यां षड्विधरू' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य दो प्रकार का गन्ध भी केवल पृथिवी में ही रहता है, यथा – 'घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः स द्विविध :– सुरभिरसुरभिश्च। पृथिवीमात्रवृत्तिः' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार त्वगिन्द्रिय से ग्राह्य तीन प्रकार के स्पर्श में अनुष्णाशीत अर्थात् न गर्म और न ठण्डा प्रकार का स्पर्श भी केवल पृथिवी में ही रहता है। इसी प्रकार सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व तथा संस्कार ये गुण भी पृथिवी में सामान्य रूप से रहते हैं। इस प्रकार आचार्यकणाद द्वारा निरूपित 'रूप–रस–गन्ध –स्पर्शवती पृथिवी' (वै.सू. २.१.१) इस पृथिवी नामक द्रव्य के लक्षण को ही तर्कसङ्ग्रहकार ने क्रमेण लक्षित किया

है।

२. **जल** – तर्कसङ्ग्रह के अनुसार – 'शीतस्पर्शवत्य आपः'। यह आप् (जल) का लक्षण है, इसके अनुसार जिसमें शीतल स्पर्श होता है, उस तत्त्व को जल कहते हैं। यह जलतत्त्व भी पृथिवी के समान ही नित्य तथा अनित्य भेद से दो प्रकार का होता है। नित्यजल परमाणुरूप होता है तथा अनित्यजल कार्यरूप होता है। पुनः अनित्य कार्यरूप जल भी तीन प्रकार का होता है (शरीर, इन्द्रिय तथा विषय भेद से)। जलीयशरीर वरुणलोक में रहता है तथा रसों को ग्रहण करने वाले जिह्वाग्रवर्तती रसनेन्द्रिय को जलीय इन्द्रिय माना जाता है। इसी प्रकार नदी, सागर आदि जल के स्रोत इसके विषय हैं। यथा – 'शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार सात प्रकार के रूपों में में से 'अभावस्वरशुक्ल' (न चमकनेवाला सफेद) रूप जल में ही रहता है। इसी प्रकार छः प्रकार के रसों में से जल में मधुर रस ही रहता है तथा त्रिविधस्पर्शो में से शीतस्पर्श समवायिसम्बन्ध से केवल जल में ही रहता है। इसी प्रकार चूर्ण आदि के पिण्डत्व का कारण 'स्नेह' नामक गुण भी केवल जल में ही रहता है, यथा– 'चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। जलमात्रवृत्तिः' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार पृथिवीवत् – सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व तथा संस्कार– ये सभी जल के सामान्यगुण हैं। इस प्रकार कणादमुनि द्वारा निरूपित 'रूप–रस–स्पर्शवत्यापो द्रवाःस्निग्धाः' (वै.सू. २.१.२)। इस जल के लक्षण को ही श्रीअन्नम्भट्ट ने तर्कसङ्ग्रह में प्रकारान्तर से लक्षित किया है।

३. **तेज** – तर्कसङ्ग्रह के अनुसार उष्णस्पर्शवत्तेजः।' यह तेज (अग्नि) का लक्षण है, इसके अनुसार जिसमें उष्ण स्पर्श रहता है, वह तत्त्व तेज या अग्नि कहलाता है। यह तेज भी नित्यानित्य भेद से दो प्रकार का होता है। नित्यतेज परमाणुरूप होता है तथा अनित्यतेज कार्यरूप होता है। अनित्य कार्यरूप तेज भी शरीर, इन्द्रिय एवं विषय भेद से तीन प्रकार का होता है। तैजसशरीर आदित्यलोक में रहता है। रूप को ग्रहण करनेवाले नेत्र की पुतली के अग्रभाग में रहनेवाले चक्षुरिन्द्रिय को तैजस इन्द्रिय माना जाता है। इसी प्रकार भौम, दिव्य, उदर्य तथा आकरज ये चार तेज के विषय हैं,

यथा– शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराऽग्रवर्ति। विषयश्चतुर्विधः – भौमदिव्योदर्याकरज– भेदात्। (तर्कसङ्ग्रह)

इसी प्रकार सप्तविधरूपों में से 'भास्वरशुक्ल' (चमकनवाला सफेद) रूप केवल तेज में ही रहता है। इसी प्रकार उष्णस्पर्श भी केवल तेज में ही रहता है। इसके अतिरिक्त– सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व तथा संस्कार ये गुण भी तेज के सामान्यगुण हैं। इस प्रकार वैशेषिकसूत्र ग्रन्थ में दर्शित 'तेजो रूपस्पर्शवत्' (वै.सू. २.१.३) इस तेज के लक्षण को ही तर्कसङ्ग्रहकार ने विशदतया निरूपित किया है।

४. **वायु** – तर्कसङ्ग्रह के अनुसार 'रूपरहितः स्पर्शवान् वायुः।' यह वायु का लक्षण है, इसके अनुसार जिसमें रूपराहित्य हो तथा स्पर्शगुण विद्यमान हो, उस तत्त्व को वायु कहते हैं। यह वायु भी नित्यानित्यभेद से दो प्रकार का होता है। नित्यवायु परमाणुरूप एवम् अनित्यवायु कार्यरूप होता है। पुनः अनित्य कार्यरूप वायु भी शरीर, इन्द्रिय तथा विषय भेद से तीन प्रकार का होता है। वायवीय शरीर वायुलोक में रहता है। वायवीय इन्द्रिय त्वचा (त्वक्) है, जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। वायु का विषय वृक्ष आदि के कम्पन का हेतु है। शरीर के अन्दर सञ्चरण करनेवाले वायु को 'प्राण' कहते हैं। वह वायु एक ही है, तथापि उपाधिभेद से (स्थान भेद से) प्राण, अपान, समान,

उदान तथा व्यान इन संज्ञाओं से जाना जाता है। जैसा कि अमरकोश के सुप्रसिद्ध टीकाकार – श्रीभानुजीदीक्षित ने कहा है –

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
उदानः कण्ठदेशे स्यात् व्यानः सर्वशरीरगः।। (रामाश्रमी टीका)

इस प्रकार वायु के पाँच भेद होते हैं। इसी प्रकार त्वगिन्द्रिय से ग्राह्य त्रिविधस्पर्शो में से पृथिवी के समान वायु में भी 'अनुष्णाऽशीत' (न उष्ण एवं न शीत) नामक स्पर्श गुण होता है। इसके अतिरिक्त सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व तथा संस्कार ये वायु के सामान्यगुण होते हैं। आचार्यकणाद ने भी वायु का लक्षण – 'स्पर्शवान् वायुः' (वै.सू. २.१.४) किया है। इसी मत की पुष्टि तर्कदीपिका में 'प्रतीयमानस्पर्शाश्रयः स वायुः' इन शब्दों में की है।

५. आकाश – तर्कसङ्ग्रहकार ने 'शब्दगुणकमाकाशम्। तच्चौकं विभु, नित्यञ्च।' इस प्रकार से आकाश तत्त्व को लक्षित किया है। शब्द आकाश का विशेष गुण है, जैसा कि श्रीविश्वनापञ्चानन ने भी कहा है– 'आकाशस्य तु विज्ञेयः शब्दो वैशेषिको गुणः' (भाषापरिच्छेद)। आकाश एक ही है तथा सर्वव्यापक है। आकाश को सभी मूर्त्तद्रव्यों (क्रियासम्पन्नद्रव्यों) का संयोगी होने के कारण 'विभु' द्रव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त – सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ये सभी आकाश के सामान्यगुण हैं। आकाश पञ्चमहाभूतों में परिगणित है, जिसके साथ पृथिवी, जल, तेज तथा वायु की भी गणना की जाती है।

६. काल – 'अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः।' इस काल के लक्षण को आचार्य श्रीअन्नम्भट्ट ने निरूपित किया है। जिसके अनुसार वह तत्त्व काल कहलाता है, जो अतीतादि अर्थात् भूत, वर्तमान तथा भविष्य इनके व्यवहार का कारण होता है। यह काल सभी का आधार है एवं सभी कार्यों का निमित्तकारण भी है। यथा – 'सर्वाधारः कालः सर्वकार्यनिमित्तकारणञ्च' (तर्कदीपिका) इस प्रकार यह काल वस्तुतः एक ही है, किन्तु उपाधिभेद से भूत, वर्तमान एवं भविष्य इनके लिये पृथक्–पृथक् रूप में इसका व्यवहार होता है। सभी मूर्तद्रव्यों का संयोगी होने के कारण यह विभु द्रव्यों में परिगणित है। इसी प्रकार ध्वंस अर्थात् विनाश का अप्रतियोगी होने के कारण यह नित्य भी है। यथा – 'स चौको विभुर्नित्यश्च' (तर्कसङ्ग्रह)। इसी प्रकार सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग एवं विभाग ये सभी काल के सामान्यगुण हैं।

७. दिक् – तर्कसङ्ग्रह के अनुसार 'प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्।' यह दिक् अर्थात् दिशा का लक्षण है। इसके अनुसार वह तत्त्व दिक् कहलाता है, जो प्राचीप्रभृति अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण इन दिशाओं के व्यवहार का कारण होता है। यह दिक्तत्त्व भी यथार्थतया एक ही है, तथापि उपाधिभेद से अनेक प्रतीक होता है। यह तत्त्व भी नित्य तथा विभुद्रव्यों में परिगणित है। इसी प्रकार काल के समान सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग तथा विभाग ये दिक् के सामान्यगुण हैं।

८. आत्मा – तर्कसङ्ग्रह के अनुसार ज्ञान के आधार को श्आत्माश कहते हैं, यथा – 'ज्ञानाऽधिकरणमात्मा।' न्यायवैशेषिकदर्शन के अनुसार यह आत्मतत्त्व दो भेदों में विभक्त है – जीवात्मा एवं परमात्मा। उनमें भी परमात्मा नित्यज्ञान का आश्रयरूप ईश्वर तथा सर्वज्ञ एक ही है – 'नित्यज्ञानाधिकरणत्वमीश्वरत्वम्' (तर्कदीपिका), 'तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव।' (तर्कसङ्ग्रह) परन्तु जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न–भिन्न अर्थात् अनेक है। यह जीव ही सुखादि का आश्रय है, 'सुखाद्याश्रयत्वं जीवलक्षणम्' (तर्कदीपिका)। इसी प्रकार प्रत्येक जीवात्मा भी विभु तथा

नित्य है। इस के कारण ही मनुष्य में कर्तृत्व, भोक्तृत्व प्रभृति अविद्याजन्य भाव जागृत हो जाते हैं। इसी कारण जीव संसारचक्र से मुक्त नहीं हो पाता है। प्रत्येक जीवात्मा का अपना अलग वैशिष्ट्य होता है, इसी कारण प्रत्येक जीवात्मा, अन्य जीवात्माओं से भिन्न होता है। इसी प्रकार बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म एवम् अधर्म ये आठ गुण केवल आत्मा में ही रहनेवाले विशेष गुण हैं। उनमें भी बुद्धि, इच्छा तथा प्रयत्न ये तीन नित्य रूप में ईश्वरीय गुण हैं। उसी प्रकार पूर्वोक्त तीनों ही अनित्यरूप में जीव के भी गुण हैं। यह द्रव्यरूप 'आत्मा' ज्ञान का आश्रय अवश्य है, किन्तु स्वयं ज्ञानस्वरूप नहीं है। ज्ञान आत्मतत्त्व का आगन्तुक धर्म है। इस आत्मा के लक्षण को वैशेषिकसूत्र में कणादमुनि ने भी निरूपित करते हुए कहा है – प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि। (वै.सू. ३.२.४)

९. **मनः** – आचार्य श्रीअन्नम्भट्ट के अनुसार सुख–दुःखादि की प्राप्ति के साधनरूप इन्द्रिय को 'मन' कहते हैं, यथा– 'सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः' (तर्कसङ्ग्रह)। यह मन स्पर्शरहित होते हुए भी क्रियावत्ता से सम्पन्न है। यथा 'स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्त्वं मनसो लक्षणम्' (तर्कदीपिका)। यह भी नित्यद्रव्य है, परमाणुरूप है तथा अनेक है। प्रत्येक आत्मा के लिये एक–एक मन आवश्यक है, क्योंकि आत्मा मन के द्वारा ही विषयों के ज्ञान को प्राप्त करता है। यह मन आत्मवत् चैतन्यगुण सम्पन्न नहीं है, अपितु अचेतन है। यह अन्तरिन्द्रिय मन, उसके कार्यों द्वारा ही अनुमेय है इसका बाह्यप्रत्यक्ष नहीं होता है। नवद्रव्यों में से ५ मूर्तद्रव्यों में मन की गणना की जाती है। यह पृथिवी प्रभृति कार्यरूप द्रव्यों के समान परमाणुरूप होने पर भी किसी भी प्रकार के सङ्घात का निर्माण नहीं करता है। मन का कोई विशेषगुण नहीं होता है, अपितु सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व तथा संस्कार इसके सामान्य गुण होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. कणाद. वैशेषिकसूत्रम्. सम्पादकः नारायणमिश्र. प्रकाशन– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथमसंस्करण. वाराणसी. 1966
2. प्रशस्तपादाचार्य. प्रशस्तपादभाष्यम्. सम्पादक आचार्य दुण्ढिराजशास्त्री. प्रकाशन– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी. पुनर्मुद्रितसंस्करण. 2021
3. केशवमिश्र. तर्कभाषा. सम्पादक डॉ. अर्कनाथचौधरी. प्रकाशन जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर. पुनर्मुद्रितसंस्करण. 2017।
4. अन्नंभट्ट. तर्कसङ्ग्रहः. सम्पादक राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर. प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी. पुनर्मुद्रितसंस्करण. 2019।
5. कुमार डॉ शशिप्रभा. वैशेषिकदर्शन में पदार्थ–निरुपण. प्रकाशन राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, दिल्ली. पुनर्मुद्रितसंस्करणम्. 1992

Gmail id – Eklavya5000@gmail.com

Mob. 8302682912

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 14-17

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीर का रहस्यवाद, अहिंसावाद, और प्रपत्तिवाद का मेल

रामुराम

पिता का नाम – रतना राम

कबीर :–

इनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित है। कहते हैं, काशी में स्वामी रामानंद का भक्त एक ब्राह्मण था जिसकी विधवा कन्या को स्वामीजी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आई। अली या नीरू नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पालने लगा। यही बालक आगे चलकर कबीरदास हुआ। कबीर का जन्म–काल जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार विक्रम संवत् १४५६ माना जाता है। कहते हैं कि आरंभ से ही कबीर में हिंदू–भाव से भक्ति करने की प्रवृत्ति लक्षित होती थी जिसे उसके पालने वाले माता पिता न दबा सके। वे 'राम राम' जपा करते थे, और कभी कभी माथे में तिलक भी लगा लेते थे। इससे सिद्ध होता है कि उस समय में स्वामी रामानंद का प्रभाव खूब बढ़ रहा था और छोटे बड़े, ऊँच नीच सब तृप्त हो रहे थे। अतः कबीर पर भी भक्ति का यह संस्कार बाल्यावस्था से ही यदि पड़ने लगा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। रामानंदजी के माहात्म्य को सुनकर कबीर के हृदय में शिष्य होने की लालसा जगी होगी। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन वे एक पहर रात रहते ही उस (पंचगंगा) घाट की सीढ़ियों पर जा पड़े जहाँ से रामानंदजी स्नान करने के लिये उतरा करते थे। स्नान को जाते समय अंधेरे में रामानंदजी का पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानंदजी बोल उठे 'राम राम कह'। कबीर ने इसी को गुरुमंत्र मान लिया और वे अपने को रामानंदजी का शिष्य कहने लगे। वे साधुओं का सत्संग भी रखते थे और जुलाहे का काम भी करते थे।

कबीर–पंथ में मुसलमान भी हैं। उनका कहना है कि कबीर ने प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। वे उस सूफी फकीर को ही कबीर का गुरु मानते हैं[9]। आरम्भ से ही कबीर हिंदू भाव की उपासना की ओर आकर्षित हो रहे थे। अतः उन दिनों जब कि रामानंदजी की बड़ी धूम थी, अवश्य वे उनके सत्संग में भी सम्मिलित होते रहे होंगे। जैसा आगे कहा जायगा, रामानुज की शिष्य परंपरा में होते हुए भी रामानंदजी भक्ति का एक अलग उदार मार्ग निकाल रहे थे जिसमें जाति–पाँति का भेद और खान पान का आचार दूर कर दिया गया था। अतः इससे कोई संदेह नहीं कि कबीर को 'राम नाम' रामानंदजी से ही प्राप्त हुआ। पर आगे चलकर कबीर के 'राम' रामानंद के 'राम' से भिन्न हो गए। अतः कबीर को वैष्णव संप्रदाय के अंतर्गत नहीं ले सकते। कबीर ने दूर दूर तक देशाटन किया, हठयोगियों तथा सूफी मुसलमान–फकीरों का भी सत्संग किया। अतः उनकी प्रवृत्ति निर्गुण उपासना की ओर दृढ़ हुई। अद्वैतवाद के स्थूल रूप का कुछ परिज्ञान उन्हें रामानंदजी

के सत्संग से पहले ही था। फल यह हुआ कि कबीर के राम धनुर्धर साकार राम नहीं रह गएय वे ब्रह्म के पर्याय हुए :–

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम हैं आना।।

सांराश यह कि जो ब्रह्म हिंदुओं की विचार–पद्धति में ज्ञानमार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिये हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होंने 'भारतीय ब्रह्मवाद' के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्वाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना–पंथ खड़ा किया। उसकी बानी में ये सब अवयव स्पष्ट लक्षित होते हैं।

यद्यपि कबीर की बानी 'निर्गुण बानी' कहलाती हैं पर उपासना क्षेत्र में ब्रह्म निर्गुण नहीं बना रह सकता। सेव्य–सेवक भाव में स्वामी में कृपा, क्षमा, औदार्य आदि गुणों का आरोप हो ही जाता है। इसीलिये कबीर के वचनों में कहीं तो निरुपाधि निर्गुण ब्रह्मसत्ता का संकेत मिलता है, जैसे :–

पंडित मिथ्या करहु विचारा। ना वह सृष्टि, न सिरजनहारा।।
जोति–सरूप काल नह उहँवाँ, बचन न आहि सरीरा।।
थूल अथूल पवन नहिं पावक। रवि ससि धरनि न नीरा।।

और कहीं सर्ववाद की झलक मिलती है, जैसे :–

आपुहि देवा आपुहि पाती। आपुहिं कुल आपुहि है जाती।।

और कहीं सोपाधि ईश्वर की जैसे :–

साई के सब जीव हैं कोरी कुंजर दोय।

सारांश यह कि कबीर में ज्ञानमार्ग की जहाँ तक बाते हैं वे सब हिंदू शास्त्रों की हैं जिनका संचय उन्होंने रामानंदजी के उपदेशों से किया। माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वमसि, आठ मैथुन (अष्टमैथुन), त्रिकुटी, छः रिपु इत्यादि शब्दों का परिचय उन्हें अध्ययन द्वारा नहीं, सत्संग द्वारा ही हुआ, क्योंकि वे, जैसा कि प्रसिद्ध है, कुछ पढ़े लिखे न थे। उपनिषद् की ब्रह्मविद्या के संबंध में वे कहते हैं :–

तत्वमसी इनके उपदेसा। ई उपनीषद कहैं सँदेसा।।
जागबलिक औ जनक सँबादा। दत्तात्रेय बहै रस स्वादा।।

यहीं तक नहीं, वेदांतियों के कनक–कुंडल न्याय आदि का व्यवहार भी इनके वचनों से मिलता है :–

गहना एक कनक तें गहना, इन महँ भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ करि थापित इक निमाज, इक पूजा।।

इसी प्रकार उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (जैसे, चंद, सूर, नाद, बिंदु, अमृत, औंधा कुआँ) को लेकर अद्भुत रूपक बाँधे हैं जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं, जैसे :–

सूर समाना चंद में दहूँ किया घर एक। मन का चिंता तब भया कछू पुरबिला लेख।
आकासे मुखि औंधा कुआँ पाताले पनिहारि। ताका पाणी को हंसा पीबै बिरला, आदि बिचारि।।

वैष्णव संप्रदाय से उन्होंने अहिंसा का तत्व ग्रहण किया जो कि पीछे होने वाले सूफी फकीरों भी मान्य हुआ। हिंसा के लिये वे मुसलमानों को बराबर फटकारते रहे :–

दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।
अपनी देखि करत नहीं अहमक, कहत हमारे बड़न किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन जिन तुमको उपदेस दिया।।
बकरी पाती खाति है ताकी काढी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञानमार्ग की बातें कबीर ने हिंदू साधु, संन्यासियों से ग्रहण की जिनमें सूफियों के सत्संग से उन्होंने 'प्रेमतत्त्व' का मिश्रण किया और अपना एक अलग पंथ चलाया। उपासना के वाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी खरी सुनाई और 'राम रहीम' की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासना–विधि के कारण मनुष्य मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का प्रयत्न उनकी वाणी बराबर करती रही। यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थी। इनकी उक्तियों में विरोध– और असंभव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था, जैसे :–

है कोई गुरूज्ञानी जगत महँ उलटि बेद बूझै।
पानी महँ पावक बरै, अंधहि आँखिन्ह सूझै।।
गाय तो नाहर को धरि खायो, हरिना खायो चीता।

अथवा :–

नैया बिच नदिया डुबति जाय।

अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ही इन्होंने ज्ञान की बाते कही हैं, जो नई न होने पर भी वाग्वैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया करती थीं। अनूठी अन्योक्तियों द्वारा ईश्वर–प्रेम की व्यंजना सूफियों में बहुत प्रचलित थी। जिस प्रकार कुछ वैष्णवों में 'माधुर्य' भाव से उपासना प्रचलित हुई थी उसी प्रकार सूफियो में भी ब्रह्म को सर्वव्यापी, प्रियतम या माशूक मानकर हृदय के उद्घगार प्रदर्शित करने की प्रथा थी। इसको कबीरदास ने ग्रहण किया। कबीर की वाणी में स्थान स्थान पर भावात्मक रहस्यवाद की जो झलक मिलती है वह सूफियों के सत्संग का प्रसाद है। कहीं इन्होंने ब्रह्म को खसम या पति मानकर अन्योक्ति बाँधी है और कहीं स्वामी या मालिक, जैसे :–

मुझको क्या तू ढूँढै बंदे मैं तो तेरे पास में।

अथवा :–

साई के सँग सासुर आई।
संग न सूती, स्वाद न माना, गा जीवन सपने की नाई।।
जना चारि, मिलि लगत सुधायो, जना, पाँच मिलि माड़ो छायो।

भयो विवाह चली बिनु दूलह, बाट जात समधी समझाई।।

कबीर अपने श्रोताओं पर यह अच्छी तरह भासित करना चाहते थे कि हमने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, इसी से वे प्रभाव डालने के लिये बड़ी लंबी चौड़ी गर्वोक्तियाँ भी कभी कभी कहते थे। कबीर ने मगहर में जाकर शरीर त्याग किया जहाँ इनकी समाधि अब तक बनी है। इनका मृत्युकाल संवत् १५७५ माना जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. कबीर ग्रंथावली श्यामसुंदरदास।
2. बीजक (संग्रहकर्ता धर्मदास)
3. कबीर (हजारी प्रसाद द्विवेदी)
4. संत कबीर (राम कुमार वर्मा)
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचंद्र शुक्ल)
6. हिंदी साहित्य का इतिहास (डॉ. नगेंद्र हरदयाल)

Gmail I'd : Ramuram41297@gmail.com

Mo. Number 8005820932

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 18-35

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Role of Academic Libraries in Supporting Digital Humanities Research in Indian Universities

Deepika Raj, Ph.D. Scholar,
Co-author - **Dr. Dharma Vir Singh,** Assistant Professor,
YBN University, Ranchi.

Abstract :

The emergence of Digital Humanities (DH) has reshaped the traditional landscape of humanities research by integrating computational methods with humanistic inquiry. In this evolving academic environment, academic libraries in Indian universities are increasingly positioned as key facilitators of DH initiatives. This research paper explores the dynamic role played by academic libraries in supporting Digital Humanities research within the Indian higher education context. Through a review of existing literature, institutional case studies, and analysis of infrastructural and human resource capabilities, the paper identifies how libraries are adapting to provide access to digital collections, support scholarly communication, enable data curation, and foster interdisciplinary collaboration.

Despite growing interest, many Indian academic libraries face challenges such as lack of funding, limited staff training in digital tools, and inadequate policy frameworks for digital preservation and access. However, initiatives in select institutions, including the development of digital repositories and partnerships with DH centers, point to an emerging model of library involvement that could be scaled nationally. The study concludes that for Digital Humanities to thrive in Indian universities, academic libraries must be empowered through institutional support, policy development, and professional training, thereby repositioning them as active collaborators in research innovation rather than passive custodians of knowledge.

Keywords : Digital Humanities, academic libraries, India, digital scholarship, digital repositories, higher education

Introduction :

The rapid advancement of digital technologies has significantly transformed academic research across disciplines, including the humanities. Digital Humanities (DH), an interdisciplinary field that

merges traditional humanities disciplines with computational tools and digital methodologies, has gained momentum worldwide. In the Indian academic landscape, this transformation is still emerging but has shown promising potential. As this field expands, academic libraries are becoming critical partners in fostering and facilitating Digital Humanities research.

Historically, libraries have served as repositories of knowledge, preserving and providing access to information in physical and, more recently, digital formats. However, the role of academic libraries is undergoing a paradigm shift from being passive resource providers to becoming active collaborators in research and learning. With the rise of Digital Humanities, libraries are now expected to support complex research activities involving data curation, digitization, metadata creation, digital preservation, and providing access to specialized tools and technologies. This transition requires libraries to reinvent their traditional services and align their resources, infrastructure, and staff capabilities with the emerging demands of digital scholarship.

In the context of Indian universities, this transformation is still in a nascent stage. While some institutions have started adopting digital initiatives, the integration of libraries into DH research remains inconsistent. There is a pressing need to assess how academic libraries are currently engaging with Digital Humanities and what gaps exist in terms of support, infrastructure, and expertise. Understanding this role becomes particularly important in India, where universities are repositories of rich cultural and linguistic heritage, and digitization can play a vital role in preserving and democratizing access to this knowledge.

Moreover, the implementation of the National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes digital learning and interdisciplinary research, providing a fertile ground for the expansion of Digital Humanities in Indian academia. Libraries, if equipped appropriately, can become key enablers of this policy shift. However, many academic libraries face challenges such as limited funding, lack of trained personnel, inadequate digital infrastructure, and insufficient collaboration between faculty and library staff.

This paper aims to explore the evolving role of academic libraries in supporting Digital Humanities research in Indian universities. By reviewing literature, examining case studies from select institutions, and analyzing the challenges and opportunities within this space, the paper seeks to highlight best practices and recommend strategic directions for libraries to become proactive partners in DH research. The study further investigates how libraries can facilitate capacity building, promote access to digital collections, support research data management, and foster a collaborative environment conducive to interdisciplinary scholarship.

In doing so, this research contributes to the growing discourse on the integration of libraries

into the digital academic ecosystem and emphasizes the importance of redefining their role in the era of digital scholarship, particularly in the Indian context.

3. Literature Review

3.1 Global Perspectives on Digital Humanities and Libraries :

The emergence of Digital Humanities (DH) as a scholarly field has reshaped the role of academic libraries globally. Traditionally considered as information repositories, libraries are now playing an integral part in facilitating interdisciplinary research that combines technology with humanistic inquiry (Burdick et al., 2012). The DH field includes areas such as text mining, digital mapping, metadata analysis, archival digitization, and digital storytelling. These processes often rely on the expertise and infrastructure that academic libraries offer, particularly in terms of metadata creation, digitization standards, data curation, and digital preservation (Spiro, 2012).

In the western context, several universities have integrated DH labs within their libraries. For instance, the University of Nebraska-Lincoln's Center for Digital Research in the Humanities operates in close collaboration with its library services, offering training and technical support to faculty (Bryant et al., 2014). Similarly, the Harvard Library's digital scholarship group provides GIS, text encoding, and repository services for DH researchers. These examples demonstrate how libraries have evolved to become hubs for digital innovation and scholarly collaboration (Muñoz, 2013).

Moreover, professional associations such as the Association of College & Research Libraries (ACRL) and the Digital Library Federation (DLF) advocate for greater involvement of librarians in digital scholarship. ACRL (2015) emphasizes the need for librarians to acquire new competencies, including data visualization, digital publishing, and project management, to remain relevant in the DH ecosystem.

3.2 Digital Humanities and Academic Libraries in India :

In India, the DH movement is comparatively new but gaining momentum. The uniqueness of Indian cultural heritage—marked by multilingual manuscripts, oral histories, temple architecture, and traditional knowledge systems—offers fertile ground for DH initiatives. However, the integration of academic libraries into DH research is still developing.

Sneha (2016) in her pioneering report *Mapping Digital Humanities in India*, noted that DH in India is primarily being led by individual scholars and small research groups. Libraries, though aware of the potential, are yet to become active participants in most institutions. Projects such as "Bichitra" (a digital variorum of Rabindranath Tagore's works) and "Pad.ma" (an online public access archive for annotated video material) are leading examples of digital projects, but library involvement in these has been peripheral (Sneha, 2016).

Das, Tripathi, and Das (2023) analyzed Library and Information Science (LIS) curricula in Indian universities and found that DH-related courses have only recently been introduced. Their study found that only 6 out of 20 surveyed LIS departments had courses or modules dedicated to digital scholarship or DH, indicating a significant skills gap among future librarians.

Moreover, Indian academic libraries are still catching up in terms of adopting international standards for metadata (such as TEI, Dublin Core) and using digital platforms such as Omeka, Scalar, or Voyant Tools that are widely utilized in global DH projects (Sharma, 2021).

3.3 National Infrastructure and Consortia Support :

India has made strides in building centralized infrastructure that can support DH research. The **INFLIBNET Centre**, established by the University Grants Commission (UGC), provides key digital services like :

- **Shodhganga**, a digital repository for Indian theses and dissertations
- **e-ShodhSindhu**, a consortium offering access to electronic journals and databases
- **IR@INFLIBNET**, an institutional repository model for universities

According to INFLIBNET's annual report (2022), more than 600 universities have contributed to Shodhganga, offering over 400,000 full-text theses to researchers. These digital platforms provide a backbone for DH research by ensuring access to large-scale, structured, and often underutilized content (INFLIBNET, 2022).

Furthermore, the National Digital Library of India (NDLI), developed by IIT Kharagpur and supported by the Ministry of Education, is another platform where libraries can contribute digitized material, opening new avenues for DH scholars (MHRD, 2021).

Despite these initiatives, scholars argue that many libraries have not fully aligned themselves with these national efforts. There is a lack of local digitization policies, inadequate training in metadata standards, and insufficient outreach regarding the use of these resources for research purposes (Gupta & Das, 2020).

3.4 Institutional Initiatives and Library–Faculty Collaboration :

Some Indian institutions have started to embed DH into their academic structure. The **Centre for Digital Humanities at IIT Bombay** is one of the earliest of its kind in India and works closely with library professionals on digital curation and metadata generation. Similarly, Jawaharlal Nehru University and the University of Hyderabad have begun digitizing rare books and palm-leaf manuscripts with support from their central libraries.

Mukherjee and Patra (2022) conducted a survey of 50 academic libraries in India and found that while 70% of libraries had some form of digital repository, only 24% actively collaborated with

faculty on DH projects. The rest operated in silos, primarily using their repositories as archival spaces rather than interactive research platforms.

Moreover, collaborative practices such as co-teaching workshops on digital literacy, jointly applying for DH grants, or creating DH-focused research guides are still rare. In contrast, global universities routinely facilitate such collaboration through library-sponsored DH labs or "Digital Scholarship Centers" (Posner, 2016).

3.5 Barriers and Gaps in the Literature :

Despite growing interest, several challenges persist in integrating academic libraries into DH research in Indian universities :

- **Lack of Awareness** : Many librarians and faculty are unfamiliar with DH concepts and tools.
- **Infrastructural Constraints** : Limited access to servers, software, and technical support.
- **Insufficient Training** : Few opportunities for librarians to get trained in text encoding, data visualization, GIS, or metadata standards (Gupta & Das, 2020).
- **Policy Vacuum** : No clear institutional policies around digital preservation, licensing, or collaborative authorship for DH projects.

These gaps are reflected in the literature as well. Most existing studies are descriptive rather than analytical, focusing on case studies or infrastructure over measurable outcomes or impact. Comparative studies on how libraries across institutions support DH—or fail to—are limited. There is also insufficient research on how students engage with DH resources in libraries, or how gender, language, and accessibility issues shape library support for DH (Sharma, 2021).

3.6 Summary of the Literature Review :

The literature underscores a global consensus on the transformative role of academic libraries in Digital Humanities research. Libraries in North America and Europe have successfully transitioned into digital scholarship hubs by building capacity in digitization, offering technical support, and collaborating with faculty. In India, the picture is mixed. While national initiatives like INFLIBNET and NDLI provide strong infrastructural foundations, institutional implementation is inconsistent. There is a clear need to equip Indian academic libraries with the tools, training, and policy support necessary to engage meaningfully with DH.

This study aims to fill some of these gaps by analyzing how Indian university libraries can play a more active role in supporting Digital Humanities, what institutional best practices are emerging, and what challenges need to be addressed to unlock their full potential.

4. Methodology :

This study adopts a **qualitative research design** to explore the role of academic libraries in

supporting Digital Humanities (DH) research within Indian universities. Qualitative methods are particularly suitable for investigating emerging fields like DH, where complex social, institutional, and technological factors intersect (Creswell, 2014). The methodology involves three key components: (1) document analysis, (2) semi-structured interviews, and (3) case studies of selected institutions.

4.1 Document Analysis :

The first phase involves analyzing policy documents, academic reports, and digital infrastructure guidelines issued by organizations such as the University Grants Commission (UGC), INFLIBNET, and the Ministry of Education. Key documents include the National Education Policy 2020, INFLIBNET's annual reports, and institutional digital repository guidelines. This review helped to understand the broader policy landscape and existing digital initiatives that affect academic libraries. Digital platforms like Shodhganga, e-ShodhSindhu, and the National Digital Library of India (NDLI) were also examined to assess their usability, accessibility, and relevance for DH research. This phase provides foundational context for understanding the national digital infrastructure supporting DH in academic environments (INFLIBNET, 2022; NDLI, 2021).

4.2 Semi-Structured Interviews :

To gather first-hand insights, **semi-structured interviews** were conducted with two key stakeholder groups :

- **Academic librarians** from central and state universities
- **Faculty members and researchers** engaged in DH or interdisciplinary research in the humanities.

Interviews were conducted with a purposive sample of 15 participants from 7 Indian universities across North, South, and West India. The universities were selected based on their involvement in digital repository management, LIS education, or documented DH activity. Each interview lasted between 30 and 45 minutes and was conducted via video conferencing platforms like Zoom or Google Meet.

The interviews focused on the following key themes :

- Awareness and understanding of Digital Humanities.
- Role of the library in supporting digital research.
- Available infrastructure and tools.
- Collaboration between librarians and faculty.
- Training needs and skill development.
- Institutional challenges and support mechanisms.

Interview data were coded thematically using NVivo software to identify recurring patterns,

contradictions, and innovative practices (Braun & Clarke, 2006).

4.3 Case Studies :

Three institutions were selected for in-depth **case study analysis** :

- **IIT Bombay** – Home to one of India's first DH centers.
- **Jawaharlal Nehru University (JNU)** – Noted for its digital archival initiatives.
- **University of Hyderabad** – Active in multilingual manuscript digitization.

These case studies allowed for a more granular understanding of how institutional libraries engage with DH projects. Institutional websites, library portals, digital repositories, and published reports were reviewed, and additional interviews were conducted with library staff and faculty coordinators.

4.4 Ethical Considerations :

All participants were informed about the nature and purpose of the study and provided verbal or written consent before the interviews. Confidentiality and anonymity were maintained throughout the research process, and no identifiable data were disclosed. The study adhered to ethical research practices as outlined by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR, 2018).

5. Findings :

The analysis of policy documents, semi-structured interviews with academic librarians and faculty, and institutional case studies revealed a multi-layered understanding of how academic libraries in Indian universities are engaging with Digital Humanities (DH). While some institutions are proactively integrating DH practices, many libraries still face significant infrastructural and operational barriers. The findings are presented under five key thematic areas:

5.1 Availability and Development of Digital Collections :

One of the foundational aspects of Digital Humanities research is access to digitized materials, such as manuscripts, archival texts, audio-visual content, and research datasets. Most libraries surveyed have initiated digitization projects, largely focused on rare books, theses, and dissertations.

For example, Jawaharlal Nehru University (JNU) has digitized a large number of archival records through its central library, contributing significantly to Shodhganga and the Digital Library of India. Similarly, the University of Hyderabad has digitized multilingual manuscripts, particularly in Sanskrit and Telugu, which are valuable for DH researchers engaged in linguistic and cultural studies (Mukherjee & Patra, 2022).

However, in the majority of institutions, digitization remains limited in scope due to lack of funds, trained personnel, and policy direction. Many librarians reported that while they have the necessary scanning equipment, metadata creation and optical character recognition (OCR) capabilities

are either underdeveloped or completely absent. Without metadata standardization—such as the use of Dublin Core or TEI (Text Encoding Initiative)—these collections remain difficult to search and analyze (Sharma, 2021).

5.2 Infrastructure and Access to Digital Tools :

Infrastructure emerged as a central concern in supporting DH. Libraries with better technological integration offer access to data visualization software, text-mining platforms, and repository management tools like DSpace and Greenstone. At IIT Bombay, for instance, the Centre for Digital Humanities works with the central library to provide access to digital annotation tools, text encoding systems, and language processing software (Sneha, 2016).

Conversely, librarians in smaller state universities revealed that their libraries often lack even basic internet bandwidth and data servers necessary to support large-scale digitization or cloud-based DH tools. In many institutions, library automation is still underway, and repositories are used primarily for thesis submission rather than interactive research or analysis (Gupta & Das, 2020).

Only a few libraries had subscriptions to international DH software tools such as Voyant, Omeka, or Gephi, and even fewer offered training to faculty or students on how to use them. This digital gap significantly limits the potential of libraries to act as centers of innovation in DH research.

5.3 Library Services for DH Support :

Academic libraries in DH-intensive universities have begun offering specialized services aligned with digital scholarship needs. These include :

- Guidance on metadata tagging and citation management.
- Workshops on digital literacy, text encoding, and open access publishing.
- Collaborative support in data management plans for research grants.

At institutions like the University of Delhi and Banaras Hindu University, library professionals reported conducting periodic training sessions for faculty and students on digital tools for research. These sessions covered topics such as Zotero for citation management, DSpace for repository access, and emerging open-source tools in digital textual analysis (Das et al., 2023).

However, these services are not uniform. In smaller or rural universities, library services remain limited to traditional tasks such as book lending and catalog maintenance. Library professionals interviewed expressed interest in supporting DH but cited lack of training as a major barrier. Some respondents were unfamiliar with the term “Digital Humanities,” indicating a clear need for professional development programs and capacity building (Mukherjee & Patra, 2022).

5.4 Collaboration Between Librarians and Faculty :

Successful DH initiatives often emerge from strong collaborations between library staff and

academic departments. In institutions like IIT Bombay and JNU, collaborative models have been established where librarians assist faculty in building digital archives, designing course repositories, and even co-authoring DH projects.

For example, at IIT Bombay, the library supports faculty research in computational linguistics by offering language corpora and metadata services. The University of Hyderabad has created interdisciplinary research groups where library staff contribute to grant proposals by outlining data management and archiving strategies (Sneha, 2016).

However, in most institutions surveyed, librarians are not included in research teams or grant applications. Faculty members often view librarians as support staff rather than research collaborators. This division hampers the development of integrated DH projects and discourages librarians from acquiring advanced digital competencies (Gupta & Das, 2020).

One of the librarians interviewed remarked :

"Faculty don't see us as partners in research; we're called in only when there is a need to scan or upload something. But DH requires us to be involved from the start."

Such sentiments point to a cultural and structural gap that must be addressed to foster collaboration.

5.5 Challenges Faced by Academic Libraries :

Several recurrent challenges emerged from the interviews and case studies :

- **Lack of Funding** : Many libraries do not receive dedicated funds for digitization or DH activities. General library budgets are often insufficient to maintain infrastructure, let alone purchase licenses for digital tools or hire trained staff.
- **Insufficient Training** : Most library staff lack formal training in DH tools and techniques. While LIS curricula are beginning to include digital literacy, in-service librarians need ongoing training through workshops, webinars, and certificate courses (Das et al., 2023).
- **Policy and Governance Gaps** : Only a few universities have a clear digitization policy or DH strategy. Libraries operate in an ad-hoc manner, often without standard operating procedures (SOPs) for metadata creation, copyright clearance, or open access.
- **Language and Accessibility Barriers** : A significant portion of India's cultural content is in regional languages. Lack of OCR tools for Indian scripts and poor metadata practices further complicate access and usability. Libraries need to invest in multilingual metadata creation and indigenous script digitization (Sharma, 2021).
- **Perception Issues** : As noted earlier, the perception of librarians as passive service providers rather than active research collaborators inhibits DH growth. Changing this mindset requires advocacy

from library leadership and administrative support.

5.6 Summary of Findings :

The findings indicate that while academic libraries in India have made modest progress in supporting Digital Humanities, much remains to be done. Digitization efforts exist but lack consistency and scalability. Infrastructure and access to tools are unevenly distributed across institutions. Library services for DH are emerging, but only in isolated pockets. Collaboration between librarians and faculty remains limited due to systemic and cultural barriers.

However, there are strong foundations to build upon—national initiatives like INFLIBNET, institutional repositories, and a growing interest among librarians to upskill. For academic libraries to fully support DH research, they must be recognized as key stakeholders in digital scholarship and be provided with the necessary resources, training, and institutional support.

6. Case Studies :

To further understand the role of academic libraries in supporting Digital Humanities (DH) research in Indian universities, this section presents three institutional case studies: **IIT Bombay**, **Jawaharlal Nehru University (JNU)**, and the **University of Hyderabad**. These institutions were selected for their notable initiatives in DH and their evolving engagement with library resources and services in digital scholarship.

6.1 Indian Institute of Technology (IIT) Bombay: Library as a DH Partner :

The **Centre for Digital Humanities (CDH)** at IIT Bombay, established in 2011, is one of the first structured DH research units in India. While the CDH primarily functions as a research and teaching center, the **Central Library of IIT Bombay** plays a crucial supporting role. The collaboration between the CDH and the library exemplifies how academic libraries can become enablers of interdisciplinary research through infrastructural support, access to specialized collections, and training in digital tools (Sneha, 2016).

The library supports various DH initiatives by facilitating access to historical corpora, Sanskrit and Prakrit manuscripts, and digitized scientific texts. It also assists researchers in the use of digital tools such as **Python for text mining**, **Gephi for network analysis**, and **TEI-compliant XML for encoding texts**. Additionally, librarians at IIT Bombay work with the CDH team to create metadata standards for digitized collections, contributing to interoperable and reusable datasets for wider scholarly use (Mukherjee & Patra, 2022).

Furthermore, the library provides orientation workshops to postgraduate students and early-career researchers on how to use DH tools for thesis development and digital publishing. This institutional model demonstrates a successful partnership where the library is not just a service

provider, but a collaborator in knowledge production.

6.2 Jawaharlal Nehru University (JNU): Digitization and Access through the Central Library :

JNU has taken substantial steps in digitization through its **Central Library**, which supports research in humanities and social sciences. The library houses rare documents, archival materials, and government records that are frequently used by historians, political scientists, and literature scholars.

The digitization project undertaken in collaboration with the **Digital Library of India** and **INFLIBNET** includes rare books, Ph.D. theses, and conference proceedings. As of 2022, the JNU Library had contributed over 8,000 theses to **Shodhganga**, making it one of the most active contributors to the national digital repository (INFLIBNET, 2022).

The library has also initiated metadata tagging using **Dublin Core**, which enhances discoverability and usability of digitized collections. According to Das, Tripathi, and Das (2023), the library staff at JNU underwent training programs in metadata creation and digitization techniques as part of the UGC-INFONET Digital Library Consortium initiatives.

However, unlike IIT Bombay, JNU does not have a standalone DH center. Most DH activities are embedded within academic departments, and the library plays a facilitative rather than collaborative role. Faculty members noted that while the library provides access to digital resources and software tools like **Voyant Tools** and **Zotero**, it is not yet fully integrated into the research planning and execution stages (Gupta & Das, 2020). This case illustrates the importance of establishing formal partnerships between departments and libraries for holistic DH engagement.

6.3 University of Hyderabad: Multilingual Manuscript Digitization and Outreach :

The **University of Hyderabad (UoH)** presents a unique model where the library has taken a lead role in **digitizing regional and multilingual manuscripts**, many of which are written in Telugu, Sanskrit, and Urdu. The **Indira Gandhi Memorial Library** has collaborated with the Department of Sanskrit Studies and the Department of Urdu to create digital archives of palm-leaf manuscripts and rare printed texts.

According to Sharma (2021), this digitization initiative incorporates Optical Character Recognition (OCR) for Indian scripts, and the library uses **Unicode-based encoding systems** to ensure linguistic compatibility and accessibility. These digitized texts are uploaded to the university's institutional repository, which follows **Open Access (OA)** standards, thus supporting the principles of inclusivity and wide dissemination of knowledge.

The UoH library also organizes **community outreach programs and digital literacy**

workshops to train researchers in the use of digital tools. The workshops cover subjects such as digital preservation, metadata tagging, digital storytelling, and the use of repositories for scholarly publishing (Mukherjee & Patra, 2022). These efforts help build a digitally literate academic community and position the library as a proactive agent in promoting DH.

Despite its achievements, the library faces challenges related to funding and staffing. A lack of trained personnel in TEI, XSLT, and advanced OCR tools slows down progress. Nevertheless, the collaborative framework between the library and humanities departments has enabled UoH to serve as a model for other public universities in regional language digitization and DH facilitation.

6.4 Comparative Analysis of Case Studies :

University	Library-DH Role	Infrastructure & Tools	Collaboration Level	Notable Achievement
IIT Bombay	Active collaborator	Gephi, Python, XML, Metadata	High	Established India's first DH center
Jawaharlal Nehru Univ.	Facilitator, not collaborator	Dublin Core, DSpace, OCR	Moderate	Top contributor to Shodhganga repository
Univ. of Hyderabad	Lead in multilingual digitization	Unicode OCR, Open Access Repository	Moderate–High	Palm-leaf manuscript digitization and training programs

These cases collectively highlight that Indian academic libraries, when empowered with infrastructure, training, and institutional support, can play diverse roles in advancing DH research—from content providers to technical collaborators. The variance across institutions also underscores the need for a national framework or policy that integrates libraries into the core of DH development.

7. Discussion :

The findings of this study reflect the evolving but uneven role of academic libraries in supporting Digital Humanities (DH) research in Indian universities. While select institutions have made notable progress in integrating digital tools, digitizing rare collections, and initiating collaborations, the majority of libraries remain underutilized in the DH ecosystem. This section discusses the key insights from the study in relation to global trends, institutional readiness, and the challenges and opportunities

that lie ahead for Indian academic libraries.

7.1 Libraries as Evolving Digital Partners :

Globally, academic libraries have moved beyond traditional roles of archiving and lending to become hubs of digital scholarship. They offer services like metadata consulting, research data management, digital preservation, and training in DH tools (Burdick et al., 2012). This transformation is visible in Indian institutions such as IIT Bombay, where the library works closely with the Centre for Digital Humanities to support computational analysis and digital text encoding (Sneha, 2016). This shows that Indian libraries, when given adequate support, can emulate successful international models and serve as active collaborators in research.

However, this evolution is not uniform across Indian academia. Many libraries continue to function with outdated systems and limited technological infrastructure. In such settings, the potential of libraries to facilitate or co-create DH research remains untapped. This disparity highlights the need for institutional frameworks that mandate and empower libraries to play a central role in digital research.

7.2 Institutional Culture and Faculty-Library Collaboration :

One of the strongest determinants of a library's involvement in DH is the institutional culture surrounding interdisciplinary collaboration. In institutions like JNU and the University of Hyderabad, library staff contribute to digitization efforts and metadata development. However, interviews revealed that librarians are seldom seen as research collaborators by faculty members. This perception undermines the library's potential contribution to DH projects.

To overcome this, universities must foster a culture of collaboration by involving library professionals from the earliest stages of research design and grant proposal development. Creating joint DH committees or digital scholarship working groups that include both faculty and librarians could enhance mutual understanding and cooperation. This approach aligns with recommendations by the Association of College & Research Libraries (ACRL, 2015), which emphasizes collaborative digital scholarship ecosystems.

7.3 Skill Gaps and Professional Development :

One of the consistent barriers observed across institutions is the lack of training among library professionals in DH tools and methods. While some librarians are proficient in metadata standards and repository management, fewer are trained in advanced DH techniques such as text mining, GIS mapping, or digital storytelling (Gupta & Das, 2020). This skill gap restricts the ability of libraries to offer technical support to researchers or conduct workshops that promote digital scholarship.

To address this, library science curricula in India must embed DH-related modules and

certifications. Additionally, in-service training programs and partnerships with international DH networks could help upskill library staff. Funding from bodies like the University Grants Commission (UGC) or the Indian Council of Social Science Research (ICSSR) could be allocated specifically for librarian training in digital tools and platforms.

7.4 Infrastructure and Access to Resources :

Digital Humanities research requires robust infrastructure—digitization labs, OCR software, data servers, and access to tools like Omeka, Scalar, or Voyant. While national platforms such as INFLIBNET, Shodhganga, and the National Digital Library of India (NDLI) provide a base, many university libraries lack the localized infrastructure to build upon these resources effectively (INFLIBNET, 2022).

Libraries need dedicated funding for technology upgrades, staff expansion, and maintenance of institutional repositories. Furthermore, collaborations with IT departments within universities can provide technical expertise and shared infrastructure, reducing the financial burden on libraries alone.

7.5 Policy Recommendations and Strategic Planning :

A recurring theme in the findings is the absence of institutional and national policies that define the role of libraries in DH. Unlike countries with centralized digital scholarship strategies (e.g., the UK's Arts and Humanities Research Council's digital strand), India lacks a formal policy framework for DH development that includes libraries as stakeholders.

Strategic planning at the national level is essential to create guidelines on :

- DH integration in LIS curricula.
- Standards for metadata and digitization.
- Collaboration protocols between libraries and research departments.
- Funding models for library-based DH initiatives.

A national-level DH network or consortium of libraries involved in digital scholarship could also promote resource sharing, knowledge exchange, and advocacy.

7.6 Opportunities for Future Growth :

Despite the challenges, there is considerable optimism among librarians and faculty regarding the future of DH in India. The growth of open access, the implementation of the National Education Policy (NEP) 2020, and increasing awareness about digital literacy are all aligned with the expansion of DH research. Libraries can position themselves at the heart of this transformation by adopting a strategic vision, enhancing internal capabilities, and collaborating with academic departments on shared digital projects.

Emerging areas such as indigenous knowledge digitization, multilingual corpus development,

and community-driven DH projects provide Indian libraries with unique opportunities to contribute to global scholarship.

8. Conclusion and Recommendations :

8.1 Conclusion :

The study explored the evolving role of academic libraries in supporting Digital Humanities (DH) research in Indian universities. Through document analysis, stakeholder interviews, and institutional case studies, it is evident that while Indian libraries are beginning to embrace the principles of digital scholarship, their involvement in DH remains inconsistent, fragmented, and largely dependent on individual institutional efforts rather than a national strategy.

Libraries at institutions such as IIT Bombay, Jawaharlal Nehru University (JNU), and the University of Hyderabad have made meaningful contributions by digitizing resources, supporting access to DH tools, and collaborating—albeit at varying levels—with faculty and researchers. However, the broader landscape remains constrained by infrastructural limitations, skill deficits among librarians, low faculty-library collaboration, and a lack of institutional policies guiding DH support.

At a time when Digital Humanities is redefining how scholarship is conducted—combining computational tools with cultural and historical analysis—libraries must adapt to become active partners in research creation, not just custodians of content. As repositories of vast cultural, linguistic, and archival materials, academic libraries in India have immense potential to support the country's unique and diverse DH projects, particularly in indigenous and regional language contexts.

To harness this potential, strategic interventions at both the institutional and national levels are necessary. Libraries must be integrated into the academic research ecosystem as enablers of digital knowledge production.

8.2 Recommendations :

Based on the findings and discussion, the following recommendations are proposed to enhance the role of academic libraries in Digital Humanities research across Indian universities :

1. Develop Institutional DH Strategies that Include Libraries :

Universities should formulate clear strategies that define the role of academic libraries in DH projects. These strategies should outline how libraries will support digitization, metadata creation, software training, and collaboration with academic departments. Library professionals should be included in research planning committees and funding proposals.

2. Introduce DH Training and Capacity Building for Librarians :

There is a critical need for ongoing professional development programs that focus on :

- Text encoding (e.g., TEI XML)

- Metadata standards (e.g., Dublin Core, MODS)
- Data curation and preservation
- DH tools (e.g., Voyant Tools, Gephi, Omeka)
- GIS and digital mapping
- Open Access publishing practices.

These programs could be delivered through online modules, workshops, certificate courses, or collaboration with international DH centers. Library schools should also integrate DH training into their LIS curricula.

3. Improve Infrastructure and Access to Tools :

Universities must invest in essential infrastructure including :

- High-speed internet and data servers
- Scanners and digitization labs
- Optical Character Recognition (OCR) software for Indian scripts
- Digital repositories with open access capabilities
- Institutional licenses for DH tools

Partnerships with national initiatives like INFLIBNET, NDLI, and Shodhganga should be leveraged to extend resources and reduce duplication.

4. Encourage Faculty-Library Collaboration :

Academic libraries must move beyond the traditional service model and actively engage in interdisciplinary research. Universities should incentivize joint projects between faculty and librarians through :

- Recognition in performance appraisals.
- Co-authorship in DH publications.
- Shared responsibilities in DH labs or digital scholarship centers.

This would foster a culture where libraries are seen as research collaborators rather than only administrative units.

5. Create a National Consortium for DH and Libraries :

A national-level body or consortium—possibly under INFLIBNET or the UGC—should be established to :

- Create a shared framework for DH standards.
- Facilitate inter-library collaboration on DH projects.
- Offer central funding for library-based DH infrastructure.
- Maintain a digital repository of best practices and case studies.

Such a consortium would unify fragmented efforts and offer guidance for emerging DH initiatives.

6. Promote Multilingual and Inclusive DH Projects :

Given India's linguistic diversity, libraries should prioritize the digitization and accessibility of texts in regional and tribal languages. Supporting multilingual metadata creation and vernacular OCR tools can help bring marginalized voices into the digital space. Academic libraries should collaborate with departments of linguistics, history, and literature to curate region-specific DH resources.

7. Raise Awareness of DH Among Students and Faculty :

Libraries can play a key role in increasing awareness about DH by organizing :

- DH bootcamps and orientation programs.
- Annual digital scholarship fairs.
- Hackathons and workshops on using DH tools.
- Open lecture series and webinars.

Such initiatives will build a campus-wide culture of digital scholarship.

As India transitions into a digital knowledge society, academic libraries must reposition themselves at the forefront of research and innovation. The success of Digital Humanities in Indian academia depends not only on faculty and departments but equally on how libraries transform themselves into centers of digital excellence. With the right vision, training, infrastructure, and collaborative spirit, academic libraries can be pivotal in shaping the next generation of digital scholars and preserving India's rich cultural heritage in the digital age.

References :

1. ACRL. (2015). *Framework for Information Literacy for Higher Education*. Association of College and Research Libraries.
2. Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in psychology. *Qualitative Research in Psychology*, 3(2), 77–101.
3. Bryant, R., Dortmund, A., & Smiraglia, R. (2014). *The Role of Academic Libraries in Digital Humanities*. College & Research Libraries.
4. Burdick, A., Drucker, J., Lunenfeld, P., Presner, T., & Schnapp, J. (2012). *Digital_Humanities*. MIT Press.
5. Creswell, J. W. (2014). *Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches* (4th ed.). Sage Publications.

6. Das, S., Tripathi, M., & Das, A. (2023). "Integrating Digital Humanities in LIS Education in India: Current Status and Future Directions." *Library Philosophy and Practice*.
7. Das, S., Tripathi, M., & Das, A. (2023). *Integrating Digital Humanities in LIS Education in India: Current Status and Future Directions*. Library Philosophy and Practice.
8. Gupta, P., & Das, A. (2020). "Digital Humanities in Indian University Libraries: Challenges and Opportunities." *DESIDOC Journal of Library & Information Technology*, 40(6), 395–402.
9. Gupta, P., & Das, A. (2020). *Digital Humanities in Indian University Libraries: Challenges and Opportunities*. DESIDOC Journal of Library & Information Technology, 40(6), 395–402.
10. ICSSR. (2018). *Research Ethics Guidelines*. Indian Council of Social Science Research.
11. INFLIBNET. (2022). *Annual Report 2021–22*. Retrieved from https://www.inflibnet.ac.in
12. INFLIBNET. (2022). *Annual Report 2021–22*. Retrieved from https://www.inflibnet.ac.in
13. INFLIBNET. (2022). *Annual Report 2021–22*. Retrieved from www.inflibnet.ac.in
14. MHRD. (2021). *National Digital Library of India (NDLI)*. Ministry of Education, Government of India.
15. Mukherjee, B., & Patra, S. (2022). "Digital Library Initiatives in India: A Survey of University Libraries." *Annals of Library and Information Studies*, 69(3), 142–150.
16. Mukherjee, B., & Patra, S. (2022). *Digital Library Initiatives in India: A Survey of University Libraries*. Annals of Library and Information Studies, 69(3), 142–150.
17. Muñoz, T. (2013). *Digital Humanities in the Library Isn't a Service*. dh+lib blog.
18. NDLI. (2021). *National Digital Library of India*. Ministry of Education, Govt. of India. Retrieved from https://ndl.iitkgp.ac.in
19. Posner, M. (2016). *"What's Next: The Radical, Unrealized Potential of Digital Humanities."* Digital Humanities Quarterly, 10(3).
20. Sharma, S. (2021). "Metadata Challenges in Indian Digital Humanities Projects." *Journal of Digital Scholarship in the Humanities*, 36(4), 1093–1108.
21. Sharma, S. (2021). *Metadata Challenges in Indian Digital Humanities Projects*. Journal of Digital Scholarship in the Humanities, 36(4), 1093–1108.
22. Sneha, S. (2016). *Mapping Digital Humanities in India*. Centre for Internet and Society.
23. Sneha, S. (2016). *Mapping Digital Humanities in India*. Centre for Internet and Society.
24. Spiro, L. (2012). *"This Is Why We Fight": Defining the Values of the Digital Humanities*. In *Debates in the Digital Humanities*. University of Minnesota Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 36-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

SURESH CHAND

SUBJECT – Political Science

प्रस्तावना :–

भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी तथा अधिकारों के लिए उनके संघर्ष का 'प्रथम चरण' 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष से प्रारम्भ होता है। महात्मा गाँधी द्वारा प्रोत्साहित महिलाओं ने सर्वप्रथम तो 'गृह शासन' (1916) के आंदोलन में भाग लिया। उन्होंने बाद के नमक सत्याग्रह एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी भाग लिया। इन आंदोलनों में जो महिलाएं अग्रणी रहीं हैं उनमें एनी बेसेंट (जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा भी बनीं) जैसी यशस्वी महिलाएं थीं जिनके विषय में मार्गरेट कजन्स की सटीक टिप्पणी इस प्रकार है: 'भारतीय महिलाओं की चौतन्य एकता का प्रादुर्भाव'। अन्य सुविख्यात महिलाएं जैसे सरोजनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, राजकुमारी अमृत कौर, लेडी फिरोज मेहता, अरूणा आसफ अली, दुर्गाबाई देशमुख इत्यादि ने बाद में स्वतंत्रता संग्राम में बहुत ही सक्रिय भूमिका निभाई।

तीन महिला संगठनों (विमेन्स इन्डियन एसोसियेशन, ऑल इन्डिया विमेन कान्फ्रेंस तथा नैशनल काउन्सिल ऑफ विमेन इन इन्डिया) ने 1932 में द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस को एक ज्ञापन पेश किया जिसमें कहा गया था कि नए संविधान में व्यस्क मताधिकार तथा सामान्य निर्वाचकों की व्यवस्था की जाये। इन्होंने महिलाओं के लिए आरक्षण, नामांकन या मनोनयन के सुझाव को अस्वीकार करते हुए पूरी समानता की मांग की थी।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश के विभाजन के साथ हुए खून खराबे तथा एक बड़ी जनसंख्या के विस्थापन के बाद 1950 तथा 1960 के दशक में धर्म निरपेक्ष, बहुलवादी, बहुधार्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से समन्वित राजनीतिक व्यवस्था को बढ़ावा दिया गया। इस वातावरण तथा संवैधानिक गारंटी से कुछ महिलाएं लाभान्वित हुईं।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति ने कहा है कि राष्ट्रीय आंदोलन और महात्मा गाँधी का नेतृत्व, ये दो ऐसी प्रमुख शक्तियां थीं जिन्होंने महिलाओं के लिए राजनीतिक समानता प्राप्त करने में उत्प्रेरक का काम किया।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति ने महिलाओं की राजनीतिक स्थिति को, महिलाओं को शक्ति के निर्धारण और भागीदारी में प्राप्त समानता और स्वतंत्रता की मात्रा और उनकी इस भूमिका हेतु समाज द्वारा

दिये गये महत्व के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की प्रभावकारिता तथा उनके समानता के दर्जे की स्थिति की परख के तीन संकेतक प्रयुक्त किये हैं। ये तीन संकेतक हैं –

क) **राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी** – महिला मतदाताओं का मतदान के लिए आना और प्रत्येक चुनाव में महिला उम्मीदवारों की संख्या।

ख) **राजनीतिक रूझान** – राजनीति में भाग ले रही महिलाओं की जागरूकता, वचनबद्धता और अंतरग्रस्तता का स्तर, विशेषकर राजनीतिक कार्यवाही और व्यवहार में उनकी स्वायतत्ता और स्वतंत्रता।

ग) **राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं का प्रभाव** – राजनीतिक प्रक्रिया में स्वयं अपनी भूमिका और प्रभावकारिता के संबंध में महिलाओं के विचारों का मूल्यांकन और महिलाओं की इन नई भूमिकाओं के प्रति समाज का रवैया।

इसका संकेत विभिन्न चुनावों में महिला उम्मीदवारों की सफलता, महिलाओं के दबाव समूहों की कुशलता, नेतृत्व की प्रकृति और दलों तथा सरकार में महिलाओं का विशिष्ट वर्ग और विशेषकर महिलाओं से सीधे संबंध रखने वाले मुद्दों पर उन्हें जुटाने हेतु चलाए गये अभियानों की प्रभावकारिता से मिलता है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. उन सामाजिक मान्यताओं का पता लगाना जो महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में बाधक हैं, एवं महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के संबंध में ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन एवं महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों के संबंध में पिछड़ेपन के कारणों की पहचान करना।
3. पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी का तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन एवं उनकी सहभागिता में आने वाली समस्याओं का पता लगाना।
4. महिलाओं की राजनीतिक निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता के स्तर का पता लगाना एवं उनका चुनावों में सफलता का स्तर तथा राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को दी जाने वाली प्राथमिकताओं का तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
5. विषय–क्षेत्र का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए संदर्भित सुझावों की पहचान करना।

राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी :–

राजनीतिक प्रक्रिया में मतदाताओं के रूप में महिलाओं की भागीदारी का मूल्यांकन एक सकारात्मक सुझाव प्रस्तुत करता है। 1952 से उपलब्ध आँकड़े तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं।

सारणी

आम चुनावों में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत

आम चुनाव	वर्ष	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष और महिला भागीदारी के बीच अंतर
पहला	1952	–	–	61.2	–
दूसरा	1957	–	–	62.2	–
तीसरा	1962	62.0	46.6	55.0	15.4
चौथा	1967	66.7	55.5	61.3	11.2

पाँचवा	1971	60.9	49.1	55.3	11.8
छठा	1977	66.6	54.9	60.5	11.7
सातंवा	1980	62.2	51.2	56.9	11.0
आँठवा	1984	68.4	59.2	64.0	9.2
नौवां	1989	66.1	56.9	62.0	9.2
दसवा	1991	61.6	51.4	61.0	10.2
ग्यारहवा	1996	62.1	53.4	57.9	8.7
बाहरवा	1998	62.1	53.4	57.9	8.7
तेहरवा	1999	64.0	55.6	60.4	8.4
चौदहवा	2004	62.15	53.64	58.07	8.5
पन्द्रहवा	2009	60.0	56.0	—	4.0

चुनावी आंकड़ों का मूल्यांकन :–

कुछ आम चुनावों, जैसे 1984 के आठवें आम चुनाव में कुल मतदाता भागीदारी 64 प्रतिशत के उच्चतम पर रही है। अन्य चुनावों में कुल मतदाता भागीदारी 55 से 62 प्रतिशत के बीच रही है।

संसद एवं राज्य विधानमंडलों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व :–

भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी समिति ने यह टिप्पणी की है कि उसे अनेक विधायकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने बताया है कि राजनीति में सक्रिय भागीदारी से अनेक महिलाओं को रोकने वाले कारकों में हिंसा और चरित्र–हनन की धमकियां थीं।

जहां वर्ष 1957 में लोकसभा चुनाव में लड़ने वाली महिलाओं का प्रतिशत 2.97 था, वहीं वर्ष 2009 में यह बढ़कर केवल 8.65 प्रतिशत तक ही पहुंचा। 1957 से लेकर 2009 तक हुए चुनावों में काफी कम सीटों पर चुनाव लड़ने के बावजूद महिलाऐं, पुरूषों के मुकाबले हर बार ज्यादा संख्या में जीतीं।

संसद/राज्य विधानमंडलों में महिलाओं के लिए स्थानों का आरक्षण :–

विश्व में महिला सांसदों की औसत संख्या 18.4 प्रतिशत है। भारतीय संसद में महिला सदस्यों की संख्या 10.7 प्रतिशत है, जो 33 प्रतिशत महिलाओं के उस 33 प्रतिशत संख्या से कहीं दूर है, जिसे कोई भी सार्थक निर्णय लेने के लिए आवश्यक माना गया है।[9] महिलाओं को लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में सदनों की सदस्य संख्या का एक–तिहाई आरक्षण देने वाला '81 वां संविधान संशोधन विधेयक' 12 सितम्बर 1996 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया था। इस विधेयक में यह भी प्रावधान था कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में जो आम आरक्षण पहले ही दिया हुआ है, उसमें भी इन समुदायों की महिलाओं के लिए उसी प्रकार स्थान आरक्षित किये जाए। यह विधेयक एक संयुक्त संसदीय समिति को सौंपा गया जिसने विस्तृत सलाह के बाद 9 दिसम्बर 1996 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। किन्तु इस विधेयक को विचारार्थ किये जाने से पूर्व ग्यारहवीं लोक सभा भंग हो गयी और परिणामस्वरूप् यह विधेयक व्यंगत हो गया।

विधेयक को 12 वीं लोक सभा में 14 दिसम्बर, 1998 को पुनः '84 वें संविधान संशोधन विधेयक' के रूप में प्रस्तुत किया गया। कुछ राजनीतिक दलों द्वारा कुछ कथित शंकाओं के आधार पर इसका विरोध किया गया।

इस विधेयक की नियति भी 81वां संविधान संशोधन विधेयक जैसी हुई और 12वीं लोक सभा के भंग होने के साथ यह भी व्यंगत हो गया। 13वीं एवं 14वीं लोक सभा में यह विधेयक फिर प्रस्तुत किया गया, किन्तु आज तक यह विधेयक पास नहीं हो सका।

महिला आरक्षण में बाधाएँ :–

कुछ राजनीतिक दलों का मानना है कि आरक्षण के भीतर पिछड़ी, दलित और अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए आरक्षण मांगने की बात किसी तर्क की कसौटी पर सही नहीं उतरती है। अगर संसद की संरचना पर नजर डालें तो साफ हो जायेगा कि इस समय संसद में सबसे ज्यादा संख्या पिछड़ी जातियों के सांसदों की है। अगर महिला आरक्षण विधेयक के मौजूदा प्रारूप को स्वीकार किया जाता है तो सहज ही एक–तिहाई महिलाओं को आरक्षण मिलने लगेगा और ऐसे में बहुसंख्यक पिछड़े समुदाय की भी महिलाओं को प्रतिनिधित्व संसद में अपने–आप बढ़ जायेगा।

पंचायती राज एवं महिलाएँ :–

ऐतिहासिक रूप से पंचायतों में महिलाओं की भूमिका के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है क्योंकि इनमें मुख्यतः पुरूषों का आधिपत्य था। 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करने वाली, बलवंतराय मेहता समिति ने 1957 में पहली बार महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के लिए दो महिला सदस्यों के चयन की अनुशंसा की।

73वां एवं 74वां संशोधन तथा राज्य अधिनियम :–

अप्रैल 1993 में 73वां संशोधन लागू हुआ, जिसके लिए संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया एवं 74 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा संविधान में भाग 9–क जोड़ा गया, जिससे स्थानीय स्वशासन, उसका ढॉचा, उसकी शक्तियां तथा कार्यो का सुदृढ़िकरण किया गया और उन्हें संवैधानिक बताया गया, तथा महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किये गये। लोकतंत्र के त्रिस्तरीय सशक्तिकरण से भारत में प्रजातान्त्रिक पद्धति को बल मिला और इस तरफ विश्व का ध्यान आकर्षित हुआ। संशोधनों द्वारा पंचायतों की कार्य विधियों को भी कारगर बनाया गया। इस सम्बन्ध में इसमें एक राज्य चुनाव आयोग, एक वित आयोग की नियुक्ति का प्रावधान किया गया और पंचायतों की अवधि उनके यथा समय चुनाव और उनके निलम्बन की शर्ते निर्धारित की गई। शक्तियों तथा कार्यो के स्थानांतरण की बात कही गयी है और राज्यों से कहा गया कि 29 क्षेत्रों को स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करके धीरे–धीरे विकेन्द्रियकरण करे। इसके अतिरिक्त, 74वें संशोधन के तहत शहरी स्थानीय शासन अधिनियम, जिसे नगर पालिका अधिनियम कहा जाता है, के तहत एक जिला योजना समिति का प्रावधान है। यह समिति पंचायत तथा म्युनिसिपल क्षेत्र, दोनों के लिए मिली–जुली योजना समिति है, प्रत्येक जिला योजना समिति जिले के लिए विकास योजना का मसौदा तैयार करेगी और उसे राज्य सरकार को भेजेगी।

राज्य के विधानमण्डल को इन समितियों के गठन की विधि और इनके पदों को भरने, अध्यक्षों के कार्यो और उनके निर्वाचन के लिए कानून बनाने का अधिकार है। 73वें एवं 74वें संशोधन के बाद स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी निश्चित रूप से बढ़ी है, लेकिन बहुत कम महिलाएँ सक्रिय व स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। बिहार व उत्तर प्रदेश जैसे कुछ अन्य राज्यों में निर्वाचित महिलाओं के पति ही उनके कार्यो का संचालन करते हैं। महिला पंचायती सदस्यों का उनके परिवार के पुरूषों द्वारा रबड़ की मोहर की तरह इस्तेमाल किया

जाता है। महिलाएँ पुरूषों के लिए पिछले दरवाजे से राजनीति में प्रवेश करने का एक जरिया बन गई हैं। अन्य संदर्भ में अधिकतर महिलाओं ने आज की राजनीति के बारे में अपनी चिन्ता जताई है, उच्चतर तथा निचले स्तरों पर अधिकारी तंत्र के विरूद्ध अपना आक्रोश प्रकट किया है[13] और पुरूषों के निर्णय करने के ''शराब और डिनर'' कमीशन एवं भ्रष्टाचार के तौर–तरीकों को मानने की अनिच्छा से पता चलता है कि निर्वाचित महिलाएँ राजनीति में अपने ही सिद्धान्त अपनाना चाहती हैं।

निष्कर्ष :–

औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी 'महिलाओं की वर्तमान शक्ति एवं स्थिति की शर्त ही नहीं बल्कि सूचक भी है, तथा महिलाओं के अधिकारों एवं विकास को बढावा देने के लिए आवश्यक भी है।' महिलाओं के लिए निर्वाचन या राजनीतिक दलों, सामाजिक आंदोलनों या प्रदर्शनों जैसे औपचारिक राजनीतिक कार्यकलापों में सिर्फ भाग लेना पर्याप्त नहीं है। निर्वाचन प्रक्रिया, प्रशासन, कार्यपालिका, न्यायपालिका या स्थानीय सरकारी संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह सत्य नहीं है कि महिलाएँ हमेशा अन्य महिलाओं की समस्या के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करेंगी।

Name : Suresh Chand
Father Name : Oma Ram Tetarwal
Address : VPO- Jarau Kallan, Tehsil- Riyan Badi, Dist. Nagaur (Rajasthan)
Pin Code : 341513
M.No. 9672948551

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 41-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पृथ्वी की आतंरिक संरचना

Nena Ram Prajapat
S/o Shree Ram Prajapat

पृथ्वी की आतंरिक संरचना शल्कीय (अर्थात परतों के रूप में) है, जैसे प्याज के छिलके परतों के रूप में होते हैं। इन परतों की मोटाई का सीमांकन रासायनिक अथवा यांत्रिक विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है|

पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत भूपर्पटी एक ठोस परत है, मध्यवर्ती मैंटल अत्यधिक गाढ़ी परत है और बाह्य क्रोड तरल तथा आतंरिक क्रोड ठोस अवस्था में है।

पृथ्वी की आतंरिक संरचना के बारे में जानकारी के स्रोतों को दो हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष स्रोत, जैसे ज्वालामुखी से निकले पदार्थो का अध्ययन, समुद्रतलीय छेदन से प्राप्त आंकड़े इत्यादि, कम गहराई तक ही जानकारी उपलब्ध करा पाते हैं। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष स्रोत के रूप में भूकम्पीय तरंगों का अध्ययन अधिक गहराई की विशेषताओं के बारे में जानकारी देता है।

पृथ्वी के द्वारा अन्य ब्रह्माण्डीय पिण्डों, जैसे चंद्रमा, पर लगाया जाने वाला गुरुत्वाकर्षण इसके द्रव्यमान की गणना का स्रोत है। पृथ्वी के आयतन और द्रव्यमान के अन्तर्सम्बन्धों से इसके औसत घनत्व की गणना की जाती है। ध्यातव्य है कि खगोलशास्त्री पृथ्वी के परिक्रमण कक्षा के आकार और अन्य पिण्डों पर इसके प्रभाव से इसके गुरुत्वाकर्षण की गणना कर सकते हैं।

यांत्रिक लक्षणों के आधार पर पृथ्वी को स्थलमण्डल, एस्थेनोस्फीयर, मध्यवर्ती मैंटल, बाह्य क्रोड और आंतरिक क्रोड में बांटा जाता है। रासायनिक संरचना के आधार पर भूपर्पटी, ऊपरी मैंटल, निचला मैंटल, बाह्य क्रोड और आंतरिक क्रोड में बाँटा जाता है।

गहराई		परत
किलोमीटर	मील	
0–60	0–37	स्थलमण्डल (स्थानिक रूप से ५ और २०० किमी के बीच परिवर्तनशील)
0–35	0–22	… भूपर्पटी (परिवर्तनशील ५ से ७० किमी के बीच)
35–60	22–37	… सबसे ऊपरी मैंटल
35–2,890	22–1,790	मैंटल
100–200	62–125	… दुर्बलता मण्डल (एस्थेनोस्फियर)
35–660	22–410	… ऊपरी मैंटल
660–2,890	410–1,790	… निचला मैंटल
2,890–5,150	1,790–3,160	बाह्य क्रोड
5,150–6,360	3,160–3,954	आंतरिक क्रोड

पृथ्वी के अंतरतम की यह परतदार संरचना भूकंपीय तरंगों के संचलन और उनके परावर्तन तथा प्रत्यावर्तन पर आधारित है जिनका अध्ययन भूकंपलेखी के आँकड़ों से किया जाता है। भूकंप द्वारा उत्पन्न प्राथमिक एवं द्वितीयक तरंगें पृथ्वी के अंदर स्नेल के नियम के अनुसार प्रत्यावर्तित होकर वक्राकार पथ पर चलती हैं। जब दो परतों के बीच घनत्व अथवा रासायनिक संरचना का अचानक परिवर्तन होता है तो तरंगों की कुछ ऊर्जा वहाँ से परावर्तित हो जाती है। परतों के बीच ऐसी जगहों को असातत्य (geological discontinuity) कहते हैं।

भूपर्पटी :

भूपर्पटी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जिसकी औसत गहराई २४ किमी तक है और यह गहराई ५ किमी से ७० किमी के बीच बदलती रहती है। समुद्रों के नीचे यह कम मोटी समुद्री बेसाल्तिक भूपर्पटी के रूप में है तो महाद्वीपों के नीचे इसका विस्तार अधिक गहराई तक पाया जाता है। सर्वाधिक गहराई पर्वतों के नीचे पाई जाती है। भूपर्पटी को भी तीन परतों में बाँटा जाता है - अवसादी परत, ग्रेनाइटिक परत और बेसाल्टिक परत। ग्रेनाइटिक और बेसाल्टिक परत के मध्य कोनराड असातत्य पाया जाता है। ध्यातव्य है कि समुद्री भूपर्पटी केवल बेसाल्ट और गैब्रो जैसी चट्टानों की बनी होती है जबकि अवसादी और ग्रेनाइटिक परतें महाद्वीपीय भागों में पाई जाती हैं।

भूपर्पटी की रचना में सर्वाधिक मात्रा आक्सीजन की है। एडवर्ड स्वेस ने इसे सियाल नाम दिया था क्योंकि यह सिलिका और एल्युमिनियम की बनी है। वस्तुतः यह सियाल महाद्वीपीय भूपर्पटी के अवसादी और ग्रेनाइटिक परतों के लिये सही है। कोनार्ड असातत्य के नीचे सीमा *(सिलिका+मैग्नीशियम)* की परत शुरू हो जाती है। भूपर्पटी और मैंटल के बीच की सीमा मोहोरोविकिक असातत्य द्वारा बनती है जिसे मोहो भी कहा जाता है।

मैंटल :

मैंटल का विस्तार मोहो से लेकर २८९० किमी की गहराई पर स्थित गुट्टेन्बर्ग असातत्य तक है। मैंटल के इस निचली सीमा पर दाब ~140 GPa पाया जाता है। मैंटल में संवहनीय धाराएँ चलती हैं जिनके कारण स्थलमण्डल की प्लेटों में गति होती है। मैंटल को दो भागों में बाँटा जाता है ऊपरी मैंटल और निचला मैंटल और इनके बीच की सीमा ७१० किमी पर रेपिटी असातत्य के नाम से जानी जाती है। मैंटल का गाढ़ापन 10^{21} से 10^{24} Pa·s के बीच पाया जाता है जो गहराई पर निर्भर करता है। [2] तुलना के लिये ध्यातव्य है कि पानी का गाढ़ापन 10^{-3} Pa·s और कोलतार (pitch) 10^{7} Pa·s होता है।

क्रोड :

सीमा परत के नीचे पृथ्वी की तीसरी तथा अंतिम परत पाई जाती है, जिसे क्रोड कहते है। इसमे निकल (Ni) तथा लोहा (Fe) की प्रधानता होती है। इसलिए इस परत का नाम निफे (NiFe) है। यह 2890 किमी० गहराई से पृथ्वी की केन्द्र तक है। इसका घनत्व 11-12 तक है तथा औसत घनत्व 13 ग्राम प्रति घन सेमी है। क्रोड का भार पृथ्वी के भार का लगभग 1/3 है। यह पृथ्वी का लगभग 16% भाग घेरे हुए है। इसको दो भागो में बाटा गया है, बाह्य क्रोड तथा आंतरिक क्रोड। बाह्य क्रोड सतह के

नीचे लगभग 2900 से 5150 किमी0 तक फैला हुआ है तथा आंतरिक क्रोड लगभग 5150 से 6371 किमी0 पृथ्वी के केंद्र तक फैला हुआ है। बाह्य क्रोड में भूकम्प की द्वातीयक लहरें या S-तरंगे प्रवेश नही कर पाती है इससे प्रमाणित होता है कि यह भाग द्रव अवस्था में है। आंतरिक क्रोड में भूकम्प की P-लहरों की गति कम अर्थात 11•23 किमी0/सेकेण्ड हो जाती है। बाह्य कोर तरल अवस्था में पाया जाता है क्योंकि यह द्वितीयक भूकंपीय तरंगों (एस-तरंगों) को सोख लेता है। आंतरिक क्रोड की खोज १९३६ में के. ई. बूलेन ने की थी। यह ठोस अवस्था में माना जाता है। इन दोनों के बीच की सीमा को बूलेन-लेहमैन असातत्य कहा जाता है।

आंतरिक क्रोड मुख्यतः लोहे का बना है जिसमें निकल की भी कुछ मात्रा है। चूँकि बाह्य क्रोड तरल अवस्था में है और इसमें रेडियोधर्मी पदार्थो और विद्युत आवेशित कणों की कुछ मात्रा पाई जाती है, जब इसके पदार्थ धारा के रूप में आतंरिक ठोस क्रोड का चक्कर लगते हैं तो चुंबकीय क्षेत्र बन जाता है। पृथ्वी के चुम्बकत्व या भूचुम्बकत्व की यह व्याख्या डाइनेमो सिद्धांत कहलाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

भौतिक भूगोल सविन्द्र सिंह

Gmail. Id – nrprajapat721@gmail.com

M. No. – 88240-46864

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 45-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Innovative Activities in Higher Education for Quality Development

Dr. Satish Chand Mangal
(Research Project Supervisor)
Vice-Principal,
Shri Agrasen Snatkottar Shiksha Mahavidyalaya, K.V.P., Jamdoli, Jaipur

Dr. Mukesh Kumar Sharma
(Principal Investigator)
Assistant Professor,
Department of Education, Jagan Nath University, Jaipur (Rajasthan)

Mrs. Rukmani Sharma
(Co-Investigator)
Assistant Professor,
Department of Education, Jagan Nath University, Jaipur (Rajasthan)

Abstract:

Innovation has become central to the transformation of higher education across the globe. In the face of digital disruption, evolving learner expectations and global employability standards, educational institutions are compelled to rethink traditional pedagogies, curricula, and student support systems. This paper examines the multifaceted role of innovative activities in enhancing academic quality, student engagement, employability and institutional growth. It explores several innovative strategies, including content-based pedagogy, interdisciplinary curriculum design, continuous career counseling, digital learning tools, entrepreneurship incubation, outcome-based assessments, and faculty development programs. Drawing upon theoretical frameworks and practical models, the paper analyzes the challenges of implementation and proposes actionable suggestions for sustainable innovation in higher education. The article argues that innovation must not be viewed as an add-on, but as an essential component of 21st century learning ecosystems.

Keywords :

Higher Education, Innovation, Content-Based Pedagogy, Career Counseling, Digital Learning, Teaching-Learning Resources, Student Engagement, Interdisciplinary Curriculum, Outcome-Based

Learning.

Introduction :

Higher education is undergoing a significant transformation in the 21st century, driven by rapid technological advancements, changing student demographics, and evolving global demands. In this dynamic context, innovation has emerged as a cornerstone for enhancing the quality, relevance, and accessibility of higher education. Innovative activities in higher education refer to the implementation of novel strategies, methodologies and technologies that promote effective teaching-learning processes, foster creativity and prepare students for real-world challenges.

One of the key aspects of innovation in higher education is the shift from traditional content delivery to content-based and learner-centered pedagogy. Modern classrooms are increasingly focusing on experiential learning, problem-solving, and critical thinking, which encourage active student engagement. Educational institutions are adopting interdisciplinary curricula to bridge the gap between academic knowledge and practical application, thus enhancing the employability and holistic development of students.

Career counseling and guidance services have also gained importance as innovative support mechanisms in colleges and universities. These services help students identify their strengths, set career goals, and navigate the complex employment landscape. Furthermore, the integration of Information and Communication Technology (ICT) has revolutionized higher education through digital learning platforms, virtual labs, MOOCs and smart classrooms. These digital tools expand learning opportunities beyond the classroom and make education more flexible and inclusive.

The development and effective utilization of teaching-learning resources (TLRs) is another crucial area of innovation. From interactive e-books to simulation-based tools, innovative resources enrich the learning experience and accommodate diverse learning styles. In addition, faculty development programs focusing on new pedagogical trends, research skills and technology integration are essential to ensure that educators are equipped to meet contemporary educational needs.

Moreover, institutions are increasingly adopting Outcome-Based Education (OBE) models that emphasize measurable learning outcomes, skill acquisition and continuous evaluation. This approach ensures accountability and aligns educational goals with industry expectations.

In summary, innovative activities in higher education are not merely optional enhancements but essential elements for institutional excellence and national progress. By embracing innovation, higher education can become more inclusive, dynamic and future-ready- empowering students to become competent, ethical and socially responsible professionals.

The Concept and Need for Innovation in Higher Education :

Innovation in higher education refers to the development and implementation of new ideas, technologies, strategies and practices that enhance learning, teaching, administration and outreach. It involves a shift from passive knowledge delivery to active, student-centered engagement. The need for innovation stems from :

- The changing nature of work and skills demand
- Student diversity and inclusive learning needs
- Advances in educational technology
- The push for internationalization and competitiveness
- The demand for quality assurance and accountability

Innovation is thus essential not only for improving academic outcomes but also for preparing students for the future.

It encourages higher-order thinking skills such as analysis, creativity and problem-solving. Through innovation, institutions can better cater to diverse learners and promote equity in education. Digital transformation enables access to global knowledge resources and collaborative learning environments. Blended learning models and flipped classrooms have emerged as practical innovations. Assessment techniques are also evolving through innovative tools like AI-based evaluations and analytics. Faculty roles are shifting from content delivery to facilitation and mentorship. Research and innovation hubs within universities promote creativity and entrepreneurship. Student engagement has become more interactive through gamification and project-based learning. Institutional innovation also involves administrative efficiency and data-driven decision-making. Ultimately, innovation strengthens the relevance and resilience of higher education in a rapidly changing world.

Major Innovative Activities in Higher Education :

(1) Innovative Content-Based Pedagogy -

Modern pedagogy emphasizes learner autonomy, interaction and real-world application. Some innovative methods include :

- **Flipped Classrooms :** Students learn content at home via videos or reading materials and engage in problem-solving during class.
- **Problem-Based Learning (PBL) :** Students explore real-world problems in groups to build analytical and collaborative skills.
- **Case-Based Learning :** Helps students apply theoretical knowledge to practical scenarios.
- **Experiential Learning :** Involves internships, fieldwork, simulations and labs.

These approaches foster deeper understanding, better retention and the development of

transferable skills.

(2) Interdisciplinary and Flexible Curriculum -

Rigid, subject-siloed curricula are giving way to interdisciplinary models where students can choose courses across disciplines. The Academic Bank of Credits (ABC) model under NEP 2020 allows credit transfers between institutions, encouraging mobility and flexibility. Integration of arts, humanities, sciences and vocational education supports holistic development.

(3) Continuous Guidance and Career Counseling (CGCCP) -

The inclusion of structured career counseling services enhances academic and emotional support. Effective CGCCP programs include :

- Aptitude testing and interest profiling
- Individual mentoring and career planning
- Soft skills and resume-building workshops
- Mental health support services

This ensures that students are better prepared for professional life and confident in their decision-making.

(4) Use of Digital Learning Platforms and Tools -

Technology is a major enabler of innovation. Some widely used platforms include :

- Learning Management Systems (LMS) like Moodle, Google Classroom
- Massive Open Online Courses (MOOCs) from NPTEL, SWAYAM
- Virtual Labs, AR/VR simulations and gamified learning apps
- AI-Powered Analytics for personalized feedback and tracking
- E-Portfolios and digital credentials for showcasing skills

These tools make education accessible, interactive and scalable.

(5) Innovative Assessment Techniques -

Traditional exams often fail to measure creativity, collaboration or critical thinking. Hence, institutions are experimenting with :

- Continuous and formative assessment
- Project-based evaluation
- Open book and take-home exams
- Peer review and self-assessment models
- Digital assessment with analytics

These practices support a more comprehensive evaluation of student learning.

(6) Faculty Development and Innovative Teaching Practices -

For innovation to succeed, teachers must be empowered. Institutions are conducting :

- Faculty Induction and Training Programs (FDPs)
- Workshops on EdTech tools and pedagogy
- Communities of practice for collaborative teaching
- Action research and reflective teaching portfolios

These initiatives foster a growth mindset among educators and encourage lifelong learning.

(7) Research, Innovation and Entrepreneurship Incubation -

Institutions are now establishing Innovation and Entrepreneurship Cells that support :

- Student startups and idea competitions
- Collaborations with industry and research labs
- Intellectual Property Rights (IPR) awareness
- Seed funding and mentoring for early-stage ventures

Such initiatives promote a culture of innovation beyond the classroom.

Impact of Innovative Activities :

Innovative practices have shown measurable benefits in the following areas :

- **Improved Student Engagement :** Interactive methods promote curiosity and reduce dropout rates.
- **Better Learning Outcomes :** Critical thinking, creativity and collaboration skills improve.
- **Enhanced Employability :** Skill-based, interdisciplinary education aligns with job market needs.
- **Institutional Reputation :** Innovation enhances accreditation scores, rankings and public perception.
- **Faculty Motivation :** Professional growth opportunities increase retention and teaching quality.

Challenges in Implementation :

Despite the benefits, several barriers hinder innovation :

- **Infrastructure Gaps :** Many institutions lack smart classrooms, labs and internet access.
- **Faculty Resistance :** Due to lack of training, some educators are hesitant to adopt new practices.
- **Digital Divide :** Students from marginalized communities struggle with access and digital literacy.
- **Rigid Regulations :** Affiliations and central controls limit institutional autonomy.

- **Assessment Misalignment :** Traditional exams continue to dominate evaluation systems.

Addressing these issues requires strategic investment, policy support and capacity building.

Suggestions for Sustainable Innovation :

To ensure long-term innovation, institutions and policymakers should consider :

- Establishing dedicated Centers for Innovation and Excellence
- Creating technology-integrated learning ecosystems
- Funding faculty development and research
- Promoting student participation in curriculum co-design
- Implementing inclusive policies to bridge the digital divide
- Reimagining examination and assessment systems
- Encouraging industry-academia collaboration
- Building institutional autonomy through decentralized governance
- Incentivizing innovative projects with grants and awards
- Conducting impact assessments for ongoing improvement

Conclusion :

Innovative activities are no longer optional in higher education- they are essential. The transition from passive, uniform education to active, personalized and holistic learning is already underway. Institutions that embrace innovation across pedagogy, technology, counseling and assessment are better positioned to equip learners for a complex, fast-changing world. However, for innovation to be truly impactful, it must be inclusive, context-sensitive and backed by systemic support.

India's higher education sector stands at a pivotal moment. With policy frameworks like NEP 2020 providing direction, the future of education can be reshaped to be more flexible, student-centric and globally competitive. Innovation, when institutionalized thoughtfully and equitably, can serve as the foundation for a future-ready, knowledge-driven society.

References :

1. Aggarwal, J. C. (2020). *Essentials of Educational Technology*. Vikas Publishing House.
2. Bates, A. W. (2019). *Teaching in a Digital Age: Guidelines for Designing Teaching and Learning*. Tony Bates Associates Ltd.
3. Chickering, A. W., & Gamson, Z. F. (1987). Seven principles for good practice in undergraduate education. *AAHE Bulletin*, 39(7), 3–7.
4. Daniel, J. (2020). Education and the COVID-19 pandemic. *Prospects*, 49, 91–96. https://doi.org/10.1007/s11125-020-09464-3
5. Goel, D. R., & Goel, C. (2022). *Innovative Practices in Teacher Education*. Neelkamal

Publications.
6. Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education. https://www.education.gov.in
7. Mishra, S., & Panda, S. (2021). Online teaching-learning in higher education during COVID-19: Challenges and opportunities. *Asian Journal of Distance Education*, 16(2), 1–14.
8. OECD. (2021). *The Future of Education and Skills: Education 2030 Framework*. Organisation for Economic Co-operation and Development.
9. Prensky, M. (2010). *Teaching Digital Natives: Partnering for Real Learning*. Corwin Press.
10. Rao, D. B. (2019). *Innovative Practices in Higher Education*. Discovery Publishing House.
11. Srivastava, A. K. (2023). Digital transformation in Indian higher education institutions: Opportunities and challenges. *University News*, 61(22), 12–18.
12. UNESCO. (2022). *Reimagining our futures together: A new social contract for education*. https://unesdoc.unesco.org/
13. UGC. (2021). *Guidelines for Blended Learning in Higher Education Institutions*. University Grants Commission. https://www.ugc.ac.in
14. Veletsianos, G. (2020). Learning through innovation: Emerging models of higher education. *International Review of Research in Open and Distributed Learning*, 21(4), 1–15.
15. Yadav, S. (2024). Innovations in outcome-based education in India. *Journal of Educational Research and Practice*, 14(1), 34–46.

Dr. Mukesh Kumar Sharma

Assistant Professor, Department of Education, Jagan Nath University, Jaipur

NH-12, Tonk Road, Chaksu Bypass, Chaksu, Jaipur (Rajasthan) Pin Code-303901

E-Mail: sharmamukeshg85@gmail.com, Contact No.: 9636460039

E-Mail: satishmangal009@gmail.com, Contact No.: 8005508625

E-Mail: sharmamukeshg85@gmail.com, Contact No.: 9636460039

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 52-56

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिगड़ता पर्यावरण लुप्त होती नदियां : एक विवेचनात्मक अध्ययन सरस्वती के संदर्भ में

डॉ. जितेन्द्र सिंह
बनारस।

सार :–

नदियां जीवन दायिनी हैं तभी तो प्राचीन काल में सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे हुआ। नदियां न केवल जल प्रदान करती हैं बल्कि कई प्रकार के जानवरों और पौधों के लिए महत्वपूर्ण आवास हैं। ये हमारी संस्कृति की पहचान होने के साथ–साथ हमारे जीवन का आधार है। सरस्वती नदी केवल नदी ही नही बल्कि हमसे विमुख हुई उस मां स्वरूपी नदी की खोज है, जो हमारे क्रियाकलापों से आज हमसे बहुत दूर चली गई हैं।

उच्च तापमान के कारण ग्लेशियर पिंघलते है जिससे कई नदियों को पानी मिलता है। ग्लेशियर गायब होने से नदियों को लम्बे समय में बहुत कम या बिल्कुल भी पानी नहीं मिल पाता जिसका एक दुखद परिणाम होता है। नदियां सूख जाती हैं और अपने पीछे छोड़ जाती हैं लड़खड़ाती जर्जर–सभ्यताओं को जो उनकी स्वर्णिम गाथा की निशानी है। आज हम अपने सुख–सुविधा की तलाश में पूरे पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ रहे हैं। नदियों के किनारे प्राकृतिक पक्षी आवास लगभग नष्ट हो चुके हैं, जो नदियों के पानी को स्वच्छ रखने में सहायक होते हैं, परन्तु उनके नष्ट होने से नदियों का जल दूषित होने के साथ–साथ जलीय जीवों की विभिन्न प्रजातियों पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है।

अतः हमें एकजुट होकर पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखना चाहिए ताकि नदियां हमारे लिए और हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए वरदान साबित हों।

भूमिका :–

पौराणिक हिन्दू ग्रंथों तथा ऋग्वेद में वर्णित सबसे पवित्र एवं महत्वपूर्ण नदी सरस्वती है। सिन्धू–घाटी सभ्यता की पहचान दिलाने वाली नदित्मा सरस्वती नदी आज लुप्त हो चुकी है। किसी भी नदी का लुप्त होना हमारे लिए चिंता का विषय है। नदियॉ जीवन दायिनी होती हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि से ग्लेशियर पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव, मानवीय क्रिया–कलाप से प्रदूषित होती नदियॉ तथा स्वयं नदियों का अपहरण हमसे हमारी नदियों को ही नही छीन रहा है, अपितु ये हमसे हमारी संस्कृति व सभ्यता से भी हमें विमुख कर रहा है। धार्मिक अनुष्ठानों से लेकर वैज्ञानिक परिक्षेत्र में नदियॉ हमारे लिए सदैव महत्वपूर्ण रही हैं। नदियॉ पूरे पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखने में अपनी अहम भूमिका निभाती हैं। आइये अमल करते हैं–कैसे बिगड़ते पर्यावरण के प्रभाव से

नदियॉ लुप्त हो रही हैं। जरूरत है सरस्वती नदी के लुप्त होने से सीख लेने की ताकि भारत ही नही पूरे देश के नदियों को बचाया जा सके।

नदियां जीवन दायिनी हैं, तभी तो प्राचीन काल में सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे हुआ। नदियां न केवल जल प्रदान करती हैं, बल्कि कई प्रकार के जानवरों और पौधों के लिए महत्वपूर्ण आवास हैं। ये हमारी संस्कृति की पहचान होने के साथ–साथ हमारे जीवन का आधार है।

इतिहास साक्षी है– ''जब आर्य भारत आये तो इसका नाम सप्तसैंधव पड़ा। सरस्वती शतुद्री, विपाशा, परूष्णी, असिकनी, वितस्ता और सिन्धु इन सात नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश को ही सप्तसैंधव कहा गया। इसमें पंजाब सिंधु एवं अफगानिस्तान के क्षेत्र सम्मिलित थे। यहीं आर्यों का पहला निवास स्थान बना। यही पर ऋग्वेद की रचना हुई थी, अर्थात सरस्वती नदी का इतिहास प्राचीन से भी प्राचीनत है। सरस्वती नदी केवल नदी ही नही अपितु हमसे विमुख हुई उस मॉ स्वरूपी नदी की खोज है, जो हमारे क्रिया–कलापों से रूष्ठ होकर आज हमसे बहुत दूर चली गई है। इतिहास के आइने में झांकने से ज्ञात होता है कि मॉ सरस्वती नदी की महिमा पौराणिक हिन्दू ग्रन्थों तथा ऋग्वेद में भी है। पापों को धोने वाली, कष्टों से निवृत्त करने वाली, विद्यादायिनी इस पवित्र नदी का लुप्त होना हमारे लिए ठीक उसी प्रकार कष्ट दायक है, जिस प्रकार एक दूधमुहें बच्चें का उसकी मॉ से जुदाई। बच्चे का पालन–पोषण तो कोई कर भी देता है, परन्तु उस बच्चे को जीवन भर बस आती है, तो अपनी मॉ की याद .....

आज इस परिदृश्य में हम भी तलाश रहे हैं, हमारी ऑखे भी तरसती हैं, अपनी मॉ सरस्वती को देखने को। .....

प्राचीन काल से ही अन्य प्राकृतिक संसाधनों के साथ नदियों का विशेष महत्व रहा है। भारत में नदियों के धार्मिक, आर्थिक सभी प्रकार के महत्व को देखते हुए उन्हें विशेष स्थान प्रदान किया गया है। वर्तमान समय में गंगा एक नदी ही नही अपितु संस्कृति का प्रतीक भी है, यह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण एवं विकास में यहॉ की नदियों का अप्रतिम स्थान रहा है। ''नदियॉ सकारात्मकता में वृद्धि करती हैं, हमारे ऋषि–मुनि नदियों के किनारे एकांत में बैठकर सालों तक तपस्या करते थे। आज भी कई उत्सव और त्यौहारों को अपने विशाल हृदय में सबको समेटने वाली सभी को अपनी धन–सम्पदा का समान रूप से वितरण करने वाली जीवनदायिनी नदियों के साथ मनाते हैं। बहुत सारे ऐसे धार्मिक अनुष्ठान है, जिन्हें हम अपने राज्यों के अर्न्तगत अपनी–अपनी लोक संस्कृती के अनुसार प्रकृति को पूजा–अर्चना के साथ–साथ नदी पूजन भी करते हैं।

जैसे–उत्तर भारत खासकर उत्तर प्रदेश एवं बिहार में छठ महापर्व बहुत धूम–धाम से मनाया जाता है, धार्मिक मान्यता के अनुसार नदी एवं सूर्य देव की पूजा है। चार दिन तक चलने वाला यह अनुष्ठान हमें हमारी प्रकृति से जोड़कर रखता है।

विभिन्न राज्यों के मौसमी फलों के साथ गाय के दूध, घी व मक्खन से बने प्रसाद के साथ सूर्य की पूजा नदी जल में खड़ा होकर किया जाता है। इस महापर्व में विभिन्न लोकगीतों को गाकर मंगलाचार करते हुए इनके महत्व को पीढ़ी–दर–पीढ़ी बढ़ाया जा रहा है।

- **लहर मारे धीरे-धीरे, पानी गंगा जी के तीरे।**
  ओही तीरे वरती तिवईया हम ठाढ़.....।

- **भोरवे में नदिया नहाइला, अदित मनाईला हो।**
  बाबा फुलवा अक्षतवा चढ़ईला, सब गुण गाईला हो .....।

हमारे उत्तर प्रदेश व बिहार की एक परम्परा है, कि शादी के बाद वर–वधु ककन छुड़ाया जाता है और यह कार्यक्रम नदी किनारे नदी को मॉ मानकर आहवाहन किया जाता है, सुखमय दामपत्य जीवन हेतु प्रार्थना–अर्चना किया जाता है। क्षेत्रीय लोक संस्कृति के तहत यहॉ भी प्रकृति से लोकगीतों के माध्यम से असीम प्रेम स्पष्ट झलकता है।

- **पहिरी पहिरी पहिरी पहिरी,**
  गंगा मईया ई चुन्दरी।
- **रउरा डाढ़े–2 बड़ा नीक लागेला,**
  रून झुन–2 के बाजन बाजेला।

ऐसे बहुत सारे धार्मिक अनुष्ठान हैं, जो अलग–अलग राज्यों के विविध संस्कृतियों के अनुरूप हैं। ये हमें खासकर नदियों से हमारे अगाढ़ प्रेम को दर्शाते हैं और हमें प्रेम के साथ प्रकृति से बॉधे रखते हैं। जहॉ तक बात है, सरस्वती नदी की तो इसी नदी के तट पर ऋग्वेद की रचना हुई। यह ऋग्वैदिक आर्यों की सबसे पवित्र नदी थी। इसे नदीतमा अर्थात नदियों की मॉ सौभाग्यदायिनी, वृत्रध्नी एवं नदियों में अग्रवर्ती कहा गया है। अवेस्ता में इसे ही हरख्वती नदी कहा जाता है। द्वशद्वती एवं आपया सरस्वती की सहायक नदी थी। ऋग्वेद में कहा गया है कि सरस्वती परासर या परावर्त में जाकर विलुप्त हो जाती है। माना जाता है कि प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती का मिलन होता है इसलिए उसे त्रिवेणी संगम भी कहा जाता है। इसरो के वैज्ञानिकों का मानना है कि थार के रेगिस्तान में पानी का कोई स्रोत नही है फिर भी यहॉ कुछ स्थानों पर ताजे पानी के स्रोत मिले हैं। जैसलमेर जिले में जहॉ बहुत ही कम बारिस होती है लेकिन यहॉ 50–60 मीटर पर भू–जल मौजूद है। इस इलाके में कुॅए साल भर नहीं सूखते हैं।

स्वतंत्र एवं आइसोटॉप विश्लेषण में भी इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि रेत के टीलों के बीच ताजा पानी इकट्ठा है और रेडियो कार्बन डेटा इस बात का संकेत देते हैं कि यहॉ लगभग हजार साल पुराना भू–जल जमा है। वास्तव में हड़प्पा सभ्यता के बारें में आम मान्यता है कि वह पूरी तरह से मानसून से होने वाली बारिश पर निर्भर थी लेकिन अब ऐसे साक्ष्य मिले हैं, जो बताते हैं कि उत्तर–पश्चिम भारत में मौजूदा बरसाती नदी घघ्घर के किनारे बड़ी संख्या में बस्तियॉ बसी थी। एक समय में ये जलमार्ग पैराणिक नदी सरस्वती का था। भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला अहमदाबाद और IIT बाम्बे के शोधकर्ताओं की ताजा रिसर्च में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि उत्तर पश्चिमी भारत के मैदानी इलाके में एक बारहमासी नदी बहती थी। इसी नदी को ऋग्वेद में सरस्वती कहा गया है। महाभारत और दूसरे ग्रन्थों में सरस्वती को पूरी तरह से सुखने का विवरण है। ये शोध नेचर पब्लिशन के पत्रिका साइटिफिक रिपोर्ट के नविनतम अंक में प्रकाशित हुआ है। शोधकर्ता इस बात का सबूत देते हैं कि सरस्वती बारहमासी थी और उच्च हिमालय से 7000 ई0पू0 और 2500 ई0पू0 के बीच बहती थी। ऐसा माना जाता है कि हड़प्पा सभ्यता का पतन सरस्वती नदी के सूखने के कारण हुआ। वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण वाष्पीकरण बढ़ता है और वर्षा के पैटर्न में बदलाव आता है। जिससे नदियों और झरनों में पानी का प्रवाह कम हो जाता है। उच्च तापमान के कारण ग्लेशियर पिंघलते हैं, जिससे कई नदियों को पानी मिलता

है। ग्लेशियर गायब होने से नदियों को लम्बे समय में बहुत कम या बिल्कुल भी पानी नहीं मिल पाता, जिसका एक दुःखद परिणाम होता है। नदियॉ सूख जाती हैं और अपने पीछे छोड़ जाती हैं, लड़खड़ाती जर्जर सभ्यताओं को जो उनकी स्वर्णिम गाथा की निशानी है। सरस्वती नदी के लुप्त होने का कोई सटीक प्रमाण अभी तक प्राप्त नही है, फिर भी यदि पर्यावरणीय पक्ष को देखने से कुछ तथ्य जरूर विचार करने योग्य है। वर्तमान की तुलना यदि कालान्तर से करें तो एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। हिमालय का बिगड़ रहा पारिस्थितिकीय संतुलन, बड़ी विपदा के लिए बार–बार आगाह कर रहा है। हिमालय भारत सहित दुनिया के कई देशों के करोड़ो लोगों को जीवन दे रहा है। यह मानव सभ्यता का संरक्षक बना हुआ है। हिमालय के कुल रकबे में 17 प्रतिशत हिस्सेदारी उसके ग्लेशियर की है। यहॉ के विशाल बर्फ भण्डार पर ग्लोबल वार्मिंग का खतरा मंडराने लगा है, जिसके कारण ऊॅचाई वाले क्षेत्रों का तापमान तेजी से बढ़ रहा है। एक अध्ययन के अनुसार मध्य हिमालय में 1977 से 2000 के बीच प्रति दशक 0.60C के हिसाब से तापमान बढ़ा है। तिब्बती पठार पर लहासा का औसत तापमान पिछले तीन दशकों में 1.350C बढ़ चुका है। वैज्ञानिकों का मानना है कि 2070 तक इन ग्लेशियरों का रकबा 43 प्रतिशत सिकुड़ जायेगा।

इससे एशिया में बहने वाली 10 बड़ी नदियॉ, क्षेत्रों के विकास पर प्रतिकूल असर डालेगीं, जो काफी चिंता का विषय है। हमें अपने इतिहास से सीखने की जरूरत है, कहीं आने वाले समय हम सरस्वती नदी भॉति कई जीवनदायिनी नदियों जैसे–गंगा, यमुना, नर्मदा ताप्ती, बागमति, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियों से हॉथ न धो दें। हमारी प्रकृति सदैव हमें सचेष्ट कर रही है कि हम पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखें। अभी हाल–फिलहाल में इसका प्रमाण हमें कोरोना काल में देखने को मिला। हांलाकि यह संकट का समय था, परन्तु मानवीय क्रिया–कलाप पर प्रतिबंध लगने मात्र से नदियों का पानी लगभग 90 प्रतिशत तक शुद्ध व स्वच्छ हो चुका था। आज हम अपने सुख–सुविधा की तलाश में पूरे पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ रहे हैं। नदियों के किनारे प्राकृतिक पंक्षी, आवास लगभग नष्ट हो चुके हैं, जो नदियों के पानी को स्वच्छ रखने में सहायक होते है, परन्तु इनके नष्ट होने से नदियों का जल दूषित होने के साथ–साथ जलीय जीवों के विभिन्न प्रजातियों पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है। जुओलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की ताजा रिपोर्ट (फानल डायवर्सिटी ऑफ इण्डिया हिमालय) बताती है कि भारतीय क्षेत्र के हिमालय का रकबा देश के कुल क्षेत्रफल का 12 प्रतिशत है।

देश में जितनी भी जीव–प्रजातियॉ पाई जाती हैं, उनमें 30.16 प्रतिशत हिस्सेदारी हिमालय क्षेत्र की है। देश में कुल 100762 जीव प्रजातियॉ हैं इनमें 280 स्तनधारी, 940 पक्षी, 316 मत्स्य, 200 सरीसृप और 80 उभयचर प्रजातियॉ हैं। देश की कुल कशेरूकी जैव विविधता में हिमालय की हिस्सेदारी 27.5 प्रतिशत है।

जुओलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की ताजा रिपोर्ट के अनुसार इस क्षेत्र के 133 कशेरूकीय जीवों पर खतरा मण्डरा रहा है। वे इण्टरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर की लाल सूची में हैं, 43 स्तनधारियों पर गंम्भीर खतरा है। पक्षियों की 52 प्रजातियों पर विलुप्ति का खतरा है और इसका कारण है, ग्लोबल वार्मिंग। कुछ विद्वानों का मानना है कि उत्तर वैदिक काल और महाभारत काल में सरस्वती नदी का जल स्तर कम हो चुका था। बरसात के मौसम में इस नदी में जल स्तर काफी बढ़ जाता था। भू–गर्भी बदलाव की वजह से सरस्वती नदी का जल गंगा में चला गया। भू–चाल आने के कारण जब जमीन ऊपर उठी तो सरस्वती नदी का पानी यमुना में भी गिर गया। जिससे गंगा के साथ–साथ यमुना में भी सरस्वती का जल प्रवाहित होने लगा।

ऐतिहासिक रूप से तीस्ता नदी गंगा नदी प्रणाली का अंग थी तथा दक्षिण की ओर प्रवाहित होते हुए लगभग 1787 ई0 में आई बाढ़ के पश्चात इसने अपना मार्ग बदल लिया और पूर्व की ओर विस्थापित होकर ब्रम्हपुत्र नदी प्रणाली में शामिल हो गई। नदी अपहरण हिमालय की नदियों का एक प्रमुख गुण है। यह एक प्रकृतिक प्रक्रम हैं, जिसके द्वारा एक प्रबल नदी अपने शीर्ष की ओर अधिक अपरदन करके अपने समीप प्रवाहित होने वाली अन्य नदी के जल को अपनी धारा में मिला लेती है।

संभावना है कि ऐसी घटना हमारी सरस्वती नदी के साथ भी घटित हुआ है। चाहे जो कारण रहा हो आज हमारी मॉ तुल्य पवित्र नदी सरस्वती हमसे विमुख हो चुकी है और जाते–जाते हमें सीख दे गई कि–हे मानव अपनी क्रिया–कलापों व प्रकृति से खिलवाड़ करना बन्द करना नही तो मेरे द्वारा वरदान रूपी दी गई भारत की पवित्र नदियों जैसे–गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा आदि के साथ भी ऐसा हो सकता है। आज नदियों को स्वच्छ बनाये रखने में हमारी सरकार द्वारा भी कई योजनाओं व कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है, परन्तु इन कामों में तभी तेजी आयेगी, जब हम जनता भी सरकार के मुहिम के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खड़े रहेगें। तो आइये हम मिलकर एकजुट होकर पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखें ताकि हमारी नदियॉ हमारे लिए और हमारे आने वाली पीढ़ियों के लिए वरदान साबित हों।

''सोचिएगा जरूर, सवाल जनहित में जारी है।''

निष्कर्ष :–

प्राचीन काल में सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे हुआ। नदी किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान होती हैं। हड़प्पा सभ्यता जो काफी विकसित सभ्यता थी, वह भी सरस्वती नदी के किनारे विकसित हुई थी। किसी भी देश के आर्थिक सम्पन्नता में नदियों की अहम भूमिका होती है। बिगड़ते पर्यावरणीय परिवेश के कारण नदियॉ प्रदूषित होकर लुप्त होने के कगार पर हैं। सरस्वती नदी के लुप्त होने से हम एक बहुत बड़ी सभ्यता को खो चुके हैं, जरूरत है सरस्वती नदी से सीख लेने की और अभी वर्तमान में जितनी भी नदियॉ हैं, उन्हें संरक्षित, सुरक्षित एवं प्रदूषण रहित बनाने की ताकि हमारा पर्यावरणीय संतुलन बना रहे और हम भी खुशहाल रहें।

संदर्भ :–

1. प्राचीन भारत–सौरभ चौबे, संस्करण–2018, पेज नं0–8
2. भारत में नदियों का महत्व– दृष्टि IAS ब्लॉग–20 Sep 2022
3. प्राचीन भारत–सौरभ चौबे पेज नं0–117
4. सम–सामयिक–सामान्य भूगोल घटना चक्र–2024 पेज नं0–CA-105
5. शोध नेचर पब्लिशन पत्रिका साइटिफिक रिपोर्ट का नवीनतम अंक।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 57-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

AI AND HUMAN RIGHTS : A CRITICAL EXAMINATION OF AI IMPACT ON ACCESS TO EDUCATION, HEALTHCARE AND EMPLOYMENT

RICHA MITTAL, Research Scholar,
ANKIT SINGH RAJPUT, Research Scholar,
Jiwaji university Gwalior, Madhya Pradesh

ABSTRACT :

Artificial Intelligence is reshaping global societies, influencing access to education, healthcare and employment –key-pillars of human rights. However, its deployment also raises significant human rights concerns, especially regarding equity, algorithmic bias, data privacy and accountability. This paper critically examines the dual role of AI as both an enabler and a potential barrier to fundamental rights, focusing on its implications for marginalized communities and systemic inequalities. ***In education****, AI-powered adaptive learning platforms and virtual classrooms have expanded access to quality education, particularly in remote and underprivileged areas. However AI in education presents challenges such as ChatGPT can exhibit bias due to biased training data; AI can generate misinformation due to errors and outdated data and can be misused for cheating.* ***In healthcare****, AI enhances diagnostic accuracy, predictive analytics and telemedicine, improving patient outcomes and accessibility. However, it's crucial to acknowledge the potential downsides of AI in healthcare, ensuring its minimizes errors without creating new problems. One concern is the lack of emotional connection between AI and Patients. In this paper we analyses ideal approach which involves AI and human working together to provide the best possible care without compromising patient well-being.* ***In employment*** *AI can automate tasks like data entry and customer support, increase efficiency but potentially making some job obsolete. The study examines algorithmic discrimination risks in recruitment and wage determination, stressing regulatory measures for worker protection.*

This paper argues for human-centered AI governance ensuring fairness, transparency and accountability, recommending anti-discrimination laws in AI, stronger data protection and public

private collaboration to mitigate AI inequalities. This analysis stresses ethical AI governance urgency, advocating policies aligning innovation with human dignity, equity and justice in an AI-driven world.

Key-words :- *Human Rights, Artificial Intelligence, Education, Healthcare, Private sectors, employment*

- **Introduction :**

The rapid advancement and integration of AI across various fields, including education, healthcare and employment, have ushered in a new era of transformative opportunities and complex human rights challenges. This paper delves into the multifaceted implications of AI, examining its dual role in both advancing and hindering human rights. On one hand, AI has the potential to significantly improve access to critical services, offering innovative solutions in education, personalized treatments in healthcare, and streamlined processes in employment. However this technological leap in not without its drawbacks. AI systems, often trained on data reflecting existing societal biasness, can perpetuate and even exacerbate inequalities. This paper explores the potential of AI to entrench existing disparities in access to quality education, healthcare and fair employment opportunities. Furthermore, the enhancing reliance on AI in the process of decision making raises significantly concerns regarding surveillance and privacy violations. The opaque nature of some AI algorithms makes it challenging to understand the basis of their decisions, potentially leading to discriminatory outcomes and hindering the ability of individuals to challenges unfair or biased treatment.

Through a combination of empirical studies and ethical analyses, this research paper provides a nuanced understanding of the impact of AI on human rights. By analyzing real-world illustrations and examining the ethical considerations surrounding AI development and deployment, this paper aims to contribute to balanced and informed discussions about the responsible enhancement and implementation of AI. The main object is to harness the transformative potential of AI while mitigating its potential risks to ensure a just and equitable future for all.

- **Material and Methods :**

2.1 Research Objectives - Some potential research objectives on the topic "AI AND HUMAN RIGHTS: A CRITICAL EXAMINATION OF AI IMPACT ON ACCESS TO EDUCATION, HEALTHCARE AND EMPLOYMENT" are as follows :—

i. To examine the impact of AI on access to education, healthcare and employment.

ii. To identify the human rights implications of the impact of AI on access to education, healthcare and employment.

iii. To analyze the benefits of AI in these fields.

iv. To recognize the most pressing challenges posted by AI in these sectors

- **Research Methodology** —— This research employs a mixed-method approach:—-
- Doctrinal research—— Analysis of existing literature review and rules & regulations.
- Judicial approach—— Analysis of specific approach and views of judiciary on the use of AI.
- Primary Source— Insights from students, academicians, corporate employers and employees.

The data is collected from 25 respondents, from the various age groups in which the largest data collected from the age group between 18-35. For the reference we can refer the image i.

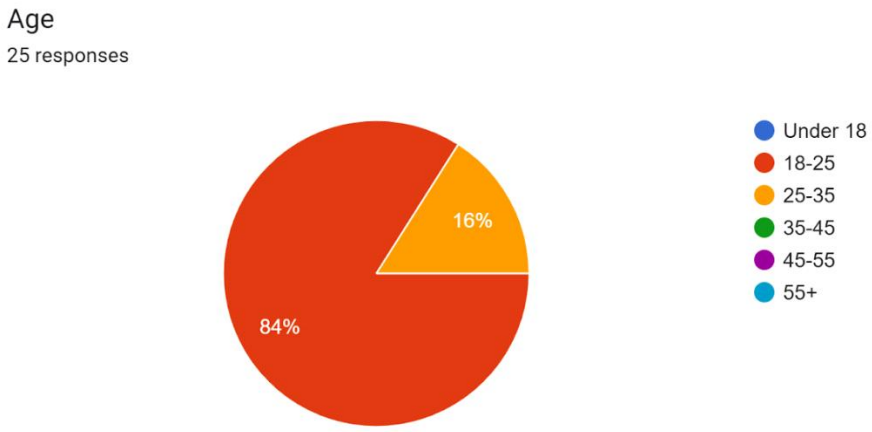

- **Discussion :-**

3.1 AI in education—— Education plays a multifaceted and vital role in the development of individuals and the societal progress. The educational history of India is rich and diverse, reflecting its cultural evolution over millennia. The development of education in India can be categorized into several key periods:-

In the **ancient time** the education was limited to the gurukul and education was imparted through oral traditions such as storytelling, chanting, debates and discussions. This method encouraged critical thinking and retention of knowledge. With the rise of Buddhism notable institutions like Nalanda and Taxila emerged during this period, focusing on a broader curriculum that included logic, metaphysics grammar and arts.

The **medieval period** emphasized values and holistic development but lacked inclusivity.

The **British period** introduced Western form of education. The introduction of English as a medium of instruction and the establishment of formal schools and colleges reshaped educational access.

Post -Independence Era prioritized literacy and elementary education. Right to education is enshrined as a Fundamental right under article 21A of the Indian Constitution by the 86th Constitution

amendment. Universities and colleges expanded, emphasis on technical education, introduction of smart classes, project works etc.

AI Era, the current educations landscape is increasingly influenced by technology, allowing the personalized learning experience and focus on skills development to the digital age. AI technologies in education have the potential to increase the learning through personalized tutoring, automated administrative tasks and 24/7 access to resources. As per the collected data the result of role of AI in education discuss as follows—

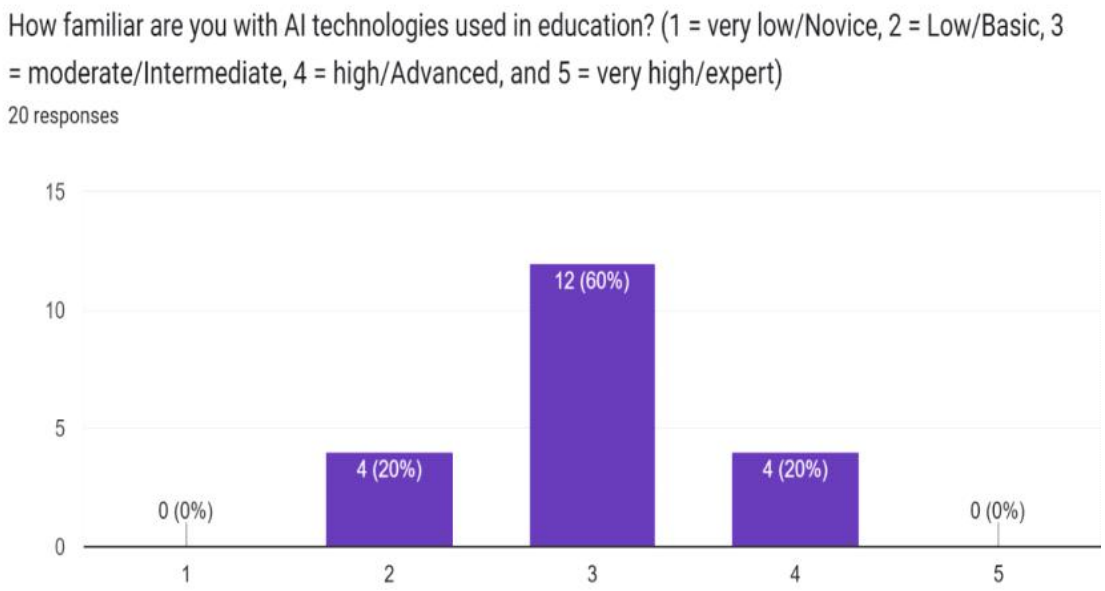

Image ii.

The objective of this is to gather information on familiarity with AI technologies used in education, as well as the perceptions and attitudes towards the use of AI in education. From the collected data it appears that the majority of respondents chose scales 2,3 or 4, indicating a moderate level of satisfaction.

The implementation of AI can also deform existing inequalities for instance :-

- AI systems trained on non-representative datasets may perpetuate cultural or socioeconomic biases, disproportionately affecting marginalized groups.
- The ethical implications of AI in education include issue related to privacy and data security. The collection of sensitive student data raises questions about consent and the potential for misuse. For instance Just about a year ago, a personal data of students was leaked from some universities and colleges and after the leak, fake calls were being made to their parents that their child has committed some crime or having an illegal affair. And if you want to save them from legal punishment then transfer money. So data leaking like this is the biggest attack on privacy, which are our fundamental

right under article 21 and also a human right.

- Enhance reliance on AI for decision making and other work can diminish the role of educators, potentially undermining the quality of education. Sometimes students also use the AI tool to embrace or insulting the teachers. Solve all the questions with AI without using their efficiency and application of minds.
- One of the limitations of AI in education is that there is a lack of holistic development. As per the survey the holistic approach emphasizes the interconnectedness of various aspects of a growth of student such as intellectual, emotional, social, physical and spiritual dimensions.

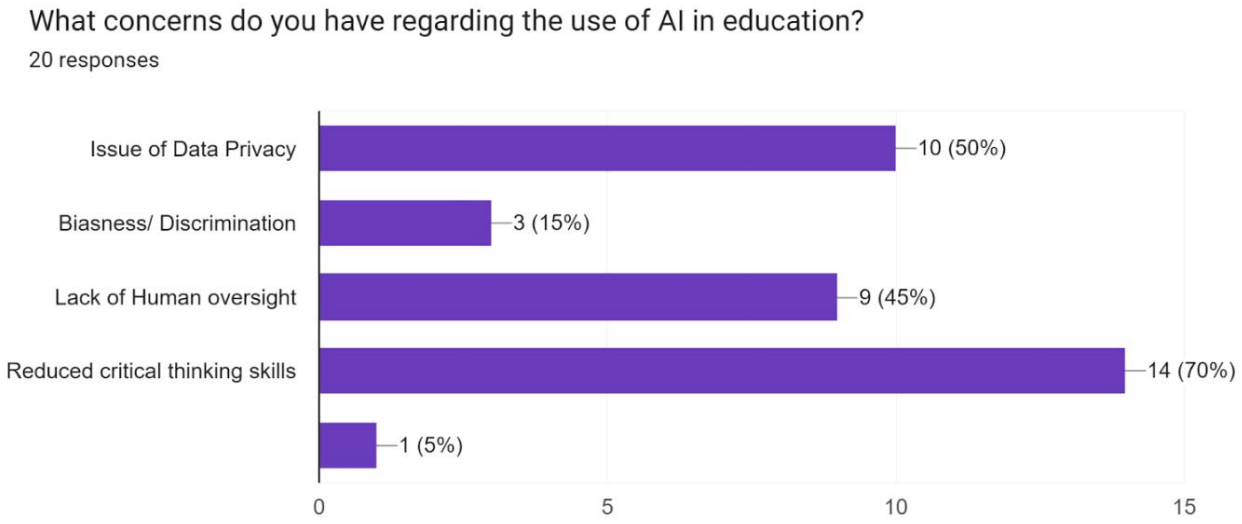

Image iii.

The objective of this question was to gather information on the concerns and perceptions of stakeholders regarding the use of AI in education. This question gathered 20 responses and the key-findings are :-

- Reduced critical thinking is significant concern with 70% of respondents worrying about the impact of AI in the critical thinking of the students.
- Data privacy is the second most significant concern, with 50% of respondents.
- Lack of human oversight and Biasness are also concerns and highlights the need for AI system to be designed with transparency and accountability.
- **AI in Healthcare**—under the article 21 we have right to life. In such right we have also a right to health, health treatment. In the landmark case of **Parmanand Katara v. UOI** the SC held that the right to medical aid is a fundamental right under article 21, doctors have a professional obligations to prioritize the saving of life, even if legal procedure are not immediately followed. In healthcare there are various works are performed by the stakeholders such as medical procedure, x-ray, and preparation of records, physician assistants and occupational therapists. These works are somewhat

technical, costs a lot and also consumes time. Nowadays AI tools are being used to enhance performance in the medical field also. Now through the collected data and existing literature review we will discuss what are the benefits and limitations of AI in healthcare and these are given as follows:_-

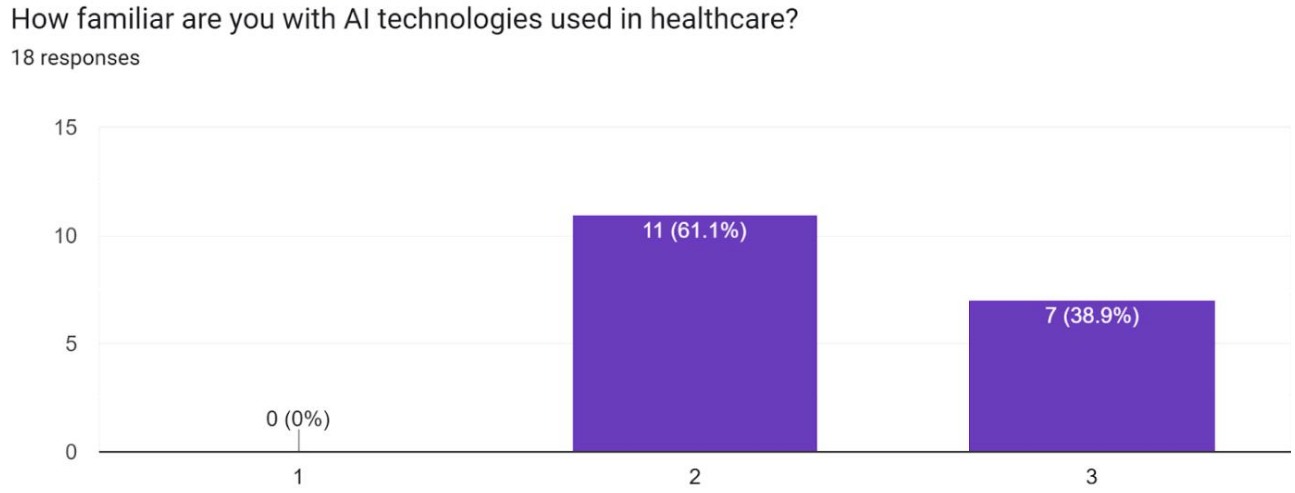

Image iv.

The objective of this question was to assess the level of familiarity with AI technologies in healthcare. This question gathered answers form 18 respondents. In this question Scale 1 –Not familiar, Scale 2—somewhat familiar, Scale 3— Very familiar. Majority of respondents are somewhat familiar and significant number of respondents are very familiar. All respondents have some level of awareness about AI.

Key Findings— Suggests a growing awareness and adoption of AI technologies in healthcare and highlighting opportunities for learning, training and innovation in the field.

Image v.

Image vi.

Existing Literature reviews demonstrate that in healthcare :-

- AI improved diagnostic accuracy. Diagnostic imaging is a leading AI application, with over half of approved AI/ML-based medical devices in the USA and Europe between 2015 and 2020 intended for radiological use. Studies show AI matching or exceeding human capabilities in image-based diagnoses across specialties like radiology, dermatology, pathology and cardiology, using techniques like convolutional neural networks and deep learning algorithms. Diabetic retinopathy screening is vital for preventing vision loss in diabetic patients, but programs face challenge due to high patient volumes and limited resources. "IDx-DR" AI algorithms, FDA-approved and Medicare-reimbursed, achieved 87% sensitivity and 90% specifically in detecting more-than mild diabetic retinopathy.
- AI can improve the 90% failure rate of clinical drug development projects that typically span several years. Programs like Google's AlphaFold 3 help researchers understand molecular interactions and predict drug effectiveness. This allows scientists to expedite clinical trials and aid patients faster.

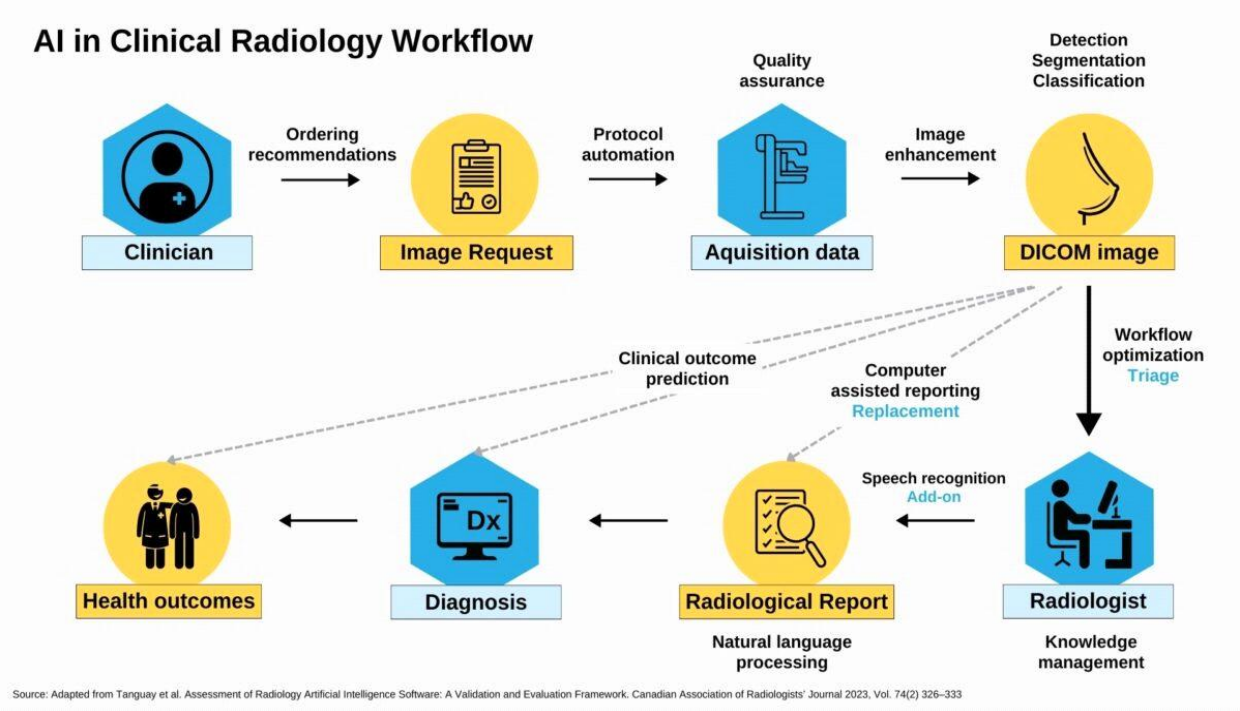

Image vii

- AI can assist clinicians in image preparation and planning for radiotherapy cancer treatment. InnerEye, an AI-based open-source technology, can reduce the time needed for exfoliation of head and neck and prostate cancer image by up to 90%, significantly cutting down waiting times for radiotherapy.
- AI in healthcare automates tasks like data entry and scheduling of appointments, freeing providers to focus on the care of patient. It also minimizes errors by expediting record and review of

result. Furthermore AI empowers healthcare professionals to enhance patient care while maintaining budget efficiency. AI analyzes the history of patients for improved diagnoses and treatments.

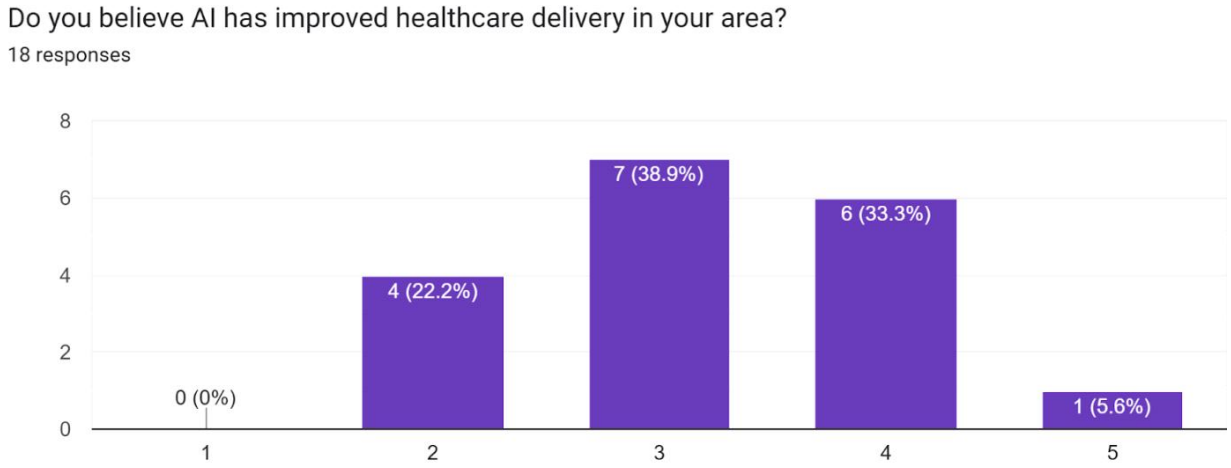

Image viii

As per the collected data respondents have mixed opinions about the impact of AI on healthcare delivery with no clear consensus. The largest group of respondents took a neutral stance.

AS per the report of Statista AI healthcare market, valued at $ 11 billion in 2021, will reach $ 187 billion by 2030. This indicates major changes for medical providers, hospitals, and pharmaceutical and biotechnology companies.

Beside these advantages, AI adoption in healthcare faces challenges such as the quality of data, infrastructure capacity, ethics safety and regulations. The main concern is primarily focuses on data privacy particularly in regions with weak regulatory frameworks. Healthcare stakeholders planning to leverage AI for health must consider ethical and responsible data access processes, given the sensitive nature of healthcare data. Access to domain expertise is crucial for creating rules and generating insights from datasets.

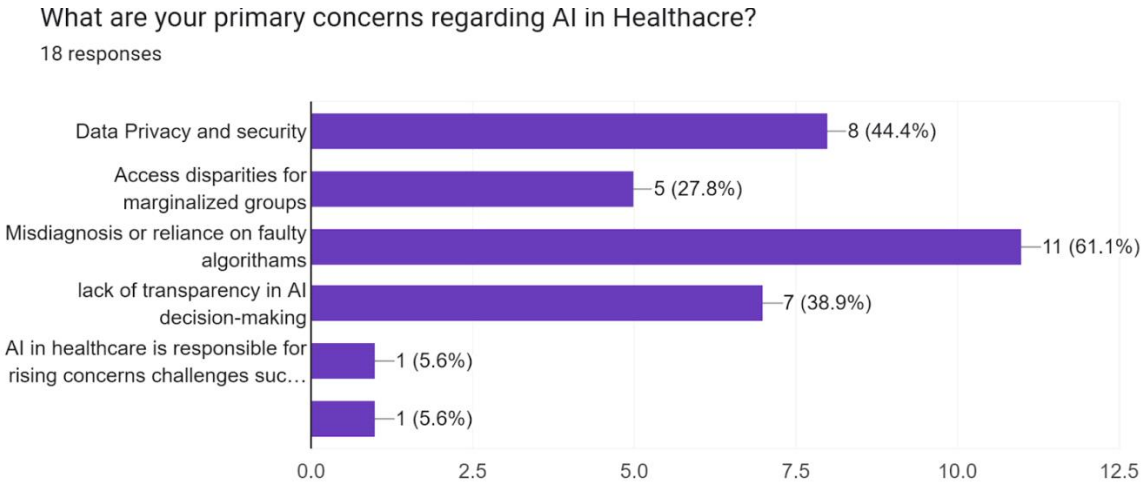

image ix.

The aim of this question to identify the primary concerns regarding the adoption of AI in healthcare. The question collected 18 respondents and the key findings are :-

- Misdiagnosis or reliance on faulty algorithms are the top concern with 61.1% of respondents.
- Data privacy and security are common concern in education, healthcare and employment and an important consideration.
- 38.9 % respondents concern about lack of transparency in AI decision-making.
- As per 27.8% respondents use of AI in healthcare access disparities in marginalized groups.
- **AI in Employment**—— Right to livelihood is a fundamental right under article 21 of the Constitution of India after the case of Olga Tellis v Bombay Municipal Corporation. But livelihood requires diligence. SDG 8 advocates for full and productive employment, but the rise of intelligent factors like robots and AI is changing labour dynamics. AI is a main area of the fourth industrial revolution, promoting the transformation and improving the digital economy industry.

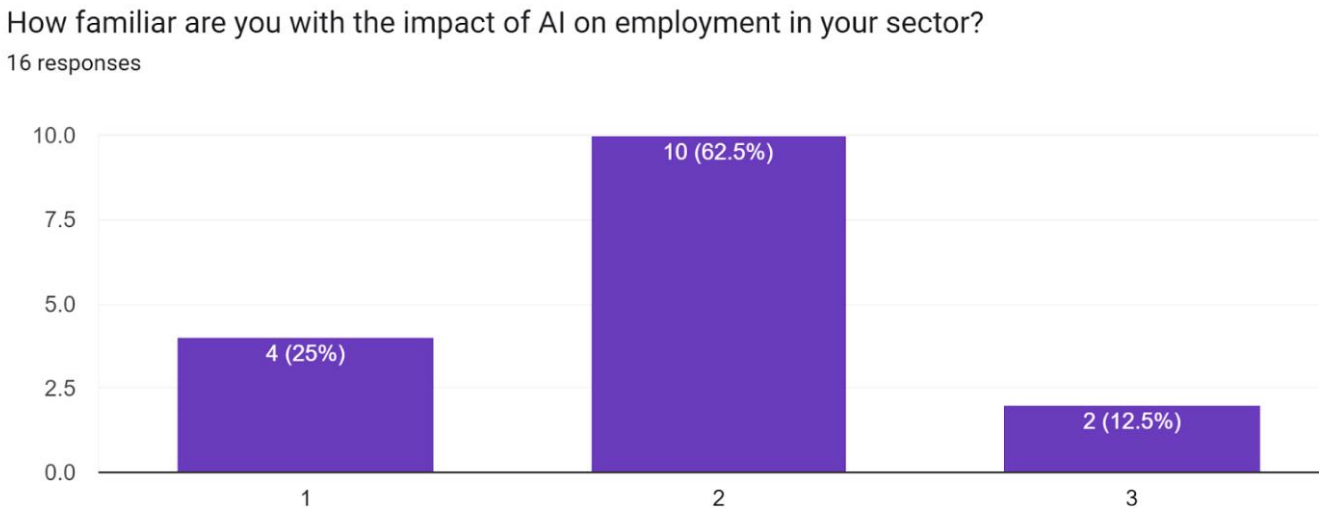

Image x.

The objective of this question was to assess the level of familiarity with AI technologies in employment in specific sector. This question gathered answers form 16 respondents. In this question Scale 1 –Not familiar, Scale 2—somewhat familiar, Scale 3— Very familiar. Majority of respondents are somewhat familiar and a limited number of respondents claim to be very familiar. Significant proportions are not familiar. The findings of this highlight the need for education, awareness and training to address the challenges and opportunities offered by AI in the employment sector.

Furthermore, the impact of AI on employment is twofold, i.e – advantage and limitations, but it depends upon various factors. AI can automate tasks, improve decision making, creating new jobs and enhance customer service but on the other side it can also displace jobs, widen the skills gap, exacerbate inequality and raise ethical concern. According to the expert's job market changes due to

AI by 2030.

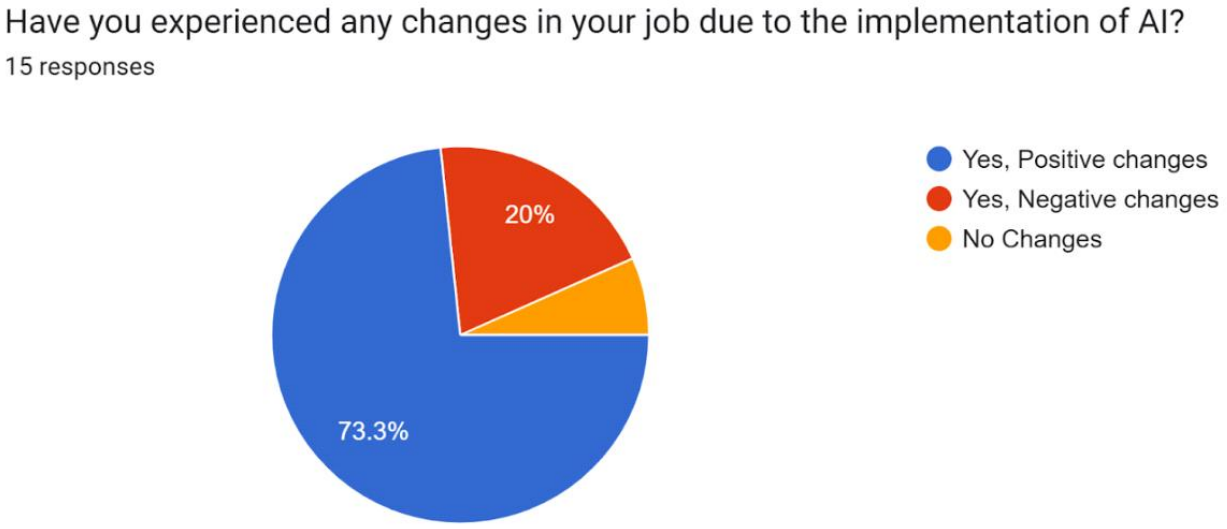

Image xi

The objective of this question was to analyze the impact of AI on jobs and gather information on the changes encounter by individuals due to the implementation of AI. The summary is that—-

- 73.3% respondents experienced positive changes.
- 20% respondents encounter negative changes.
- 6.7% of respondents reported no change.

The results recommend that AI has brought significant benefits to many jobs but also highlights the need to address negative impacts, what concerns respondents have about the impact of AI on employment are discussed in next question.

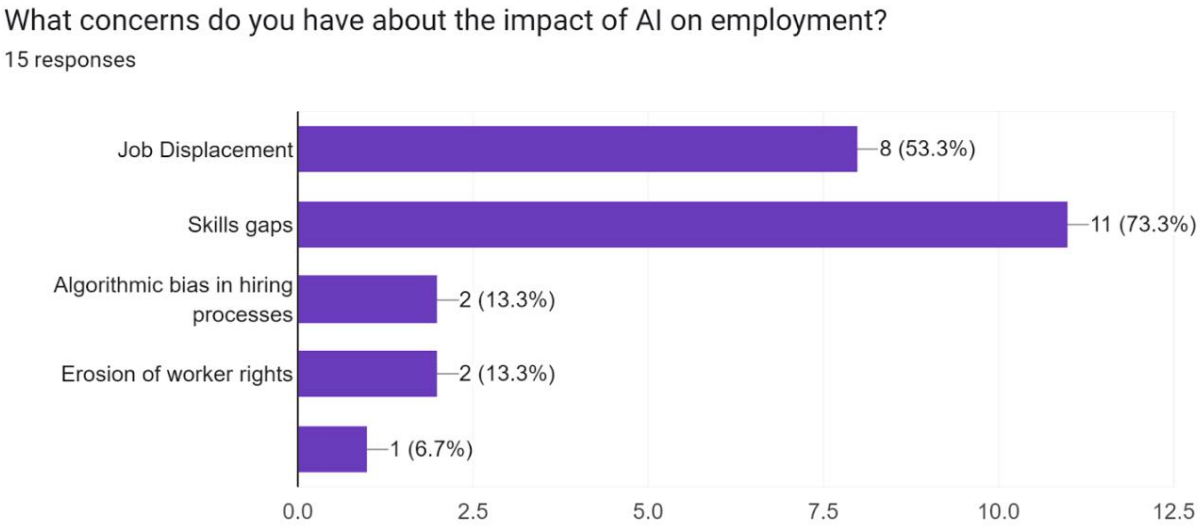

Image xii

The aim of this question is to investigate the concerns of pupils regarding the impact of AI on employment. The summary is:—

- With the 73.3% skills gaps is the top concern.
- 53.3% of pupils worry about job displacement.
- Algorithms bias in hiring process and erosion of worker rights are a lesser concerns.

The findings highlight the need for fair and transparent AI system, protection of the rights of the worker in the era of AI and the balancing regulation for the purpose of efficient work. As per the social engineering of Rosco Pound, in the era of AI, we can achieve an efficient GDP and Sustainability when we do not depend solely on AI or solely on Human labour. For the development of India it is necessary that both AI and Human work together so that we can achieve the goal of developed India. Because the population of India is more than other countries, If India will depend only on AI then there is a possibility of unemployment and if India will depend only on human work then it is possible that we will fall behind other developed countries in the technical field.

- **Results :**

The survey explores the impact of AI on human rights, especially concentration on three major sectors : education, healthcare and employment. It objectives to understand the opinion and perceptions of public, identify benefits and challenges & collect suggestions to mitigate risks associated with the acquiring AI. The analysis combines empirical data and qualitative insights to provide an overarching understanding the role of AI in advancing access to essential services.

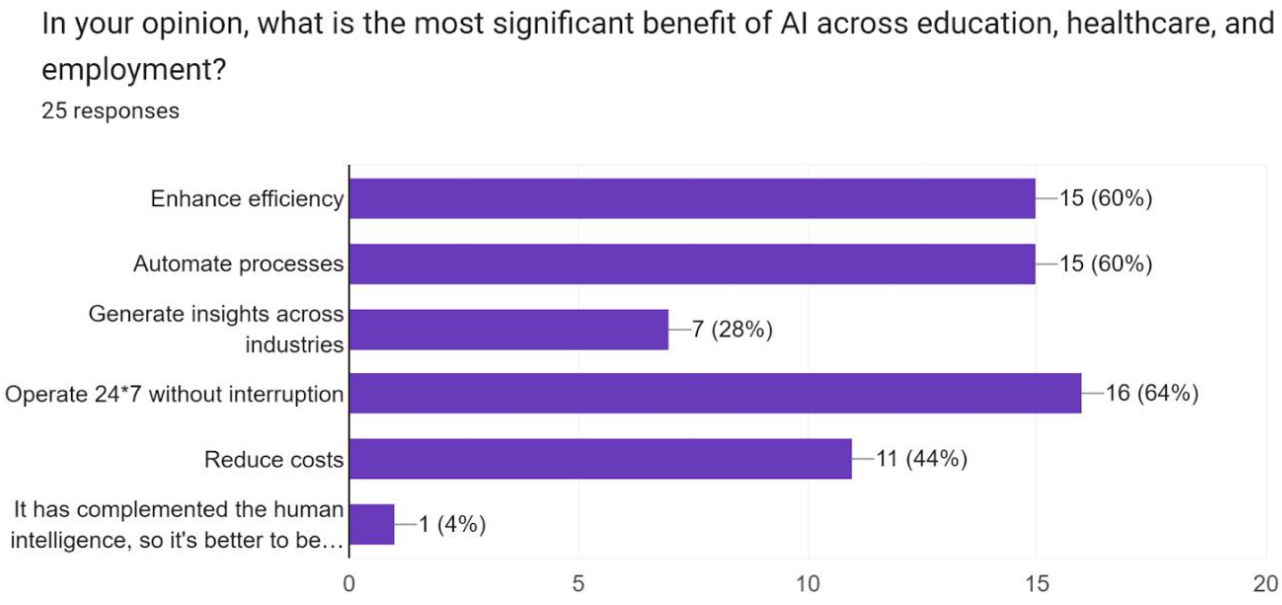

Image xiii

The aim of this question was to analyze the most significant benefit of AI across various sectors, including education, healthcare, and employment, from the perspective of Indian pupils. And the key-findings are :-

- Continuous operation is a top benefit, 64% respondents believe that the ability of AI to operate 24/7 without interruption is most significant benefit. Because India has a massive population and 24*7 availability ensures that services and supports are always accessible, regardless of the time or location and furthermore the limited human resources particularly is rural areas and the availability of AI 24*7 helps bridge this gap by providing automated support and service.
- As per the 15 respondents AI enhance efficiency and automate processes.
- According to the 44% respondents cost reduction is a significant advantage.

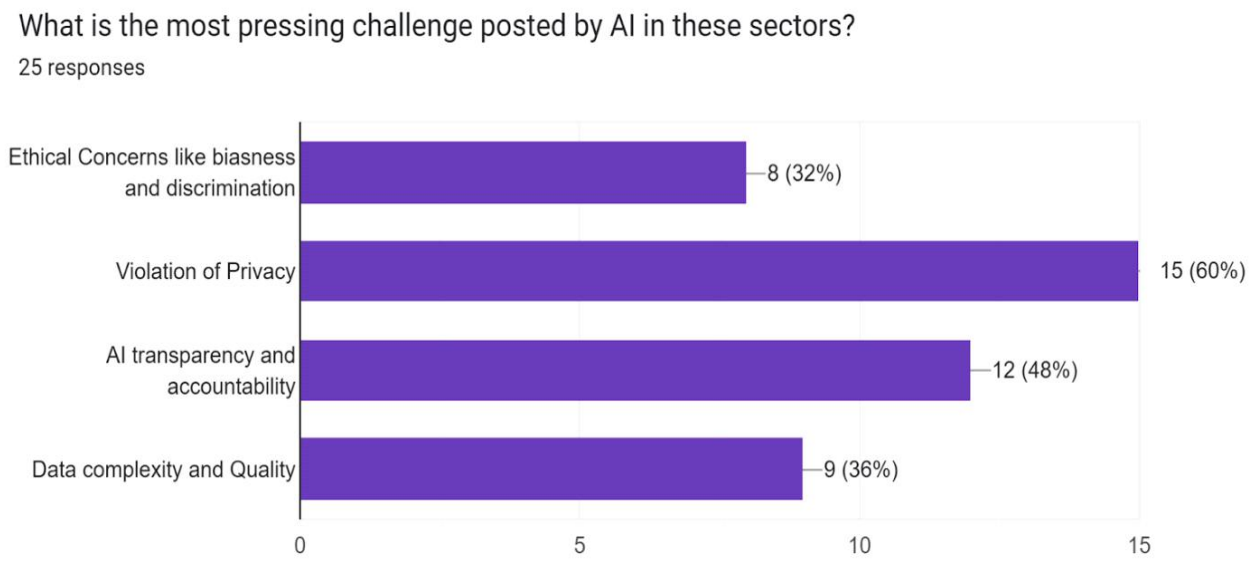

Image xiv

The objective of this study was to identify the most pressing challenges faced by AI in various sectors, with a focus on human rights. And the findings are given as follows :-

A total 25 respondents participated in this study, and as per the collected data :-

- 60% respondents identified violation of privacy as the most pressing challenge determined by the AI.
- As per the 48% respondents the transparency and accountability of AI is the post pressing challenge.
- 36% respondents identified data complexity and quality as the most pressing challenge.
- 32% respondents concerns about the ethical concerns like biasness and discrimination.

To address these challenges and uphold human rights some suggestions are given from the source of existing literature review and collection of data as specified in image xv.

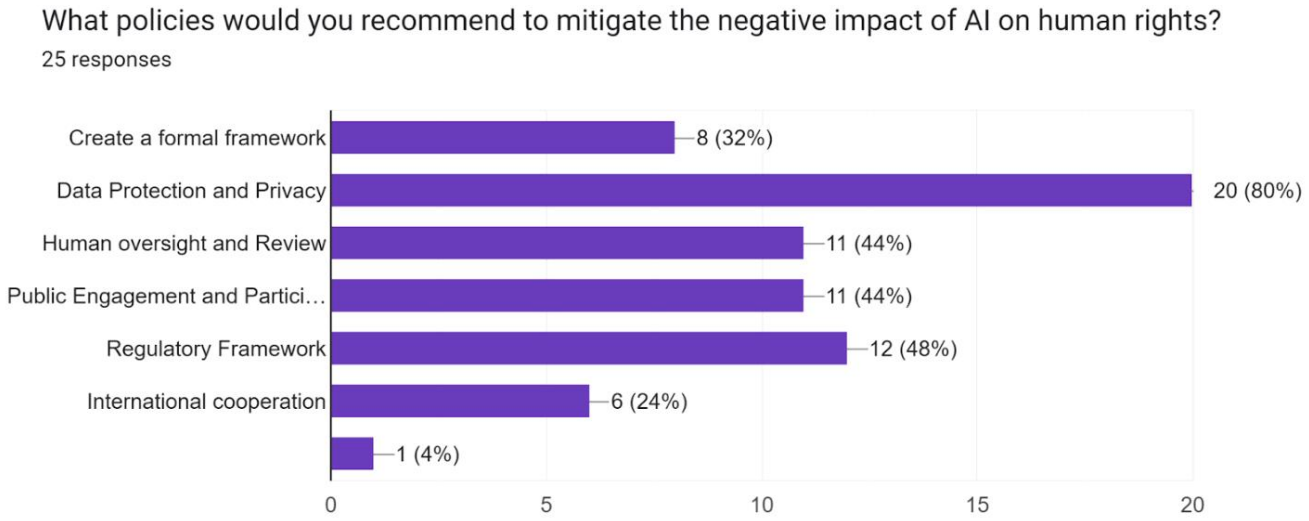

Image xv

The objective of this question was to collect recommendations to mitigate the negative impact of AI on human rights and the based on 25 responses, the findings are given as follows :

- As per 80% respondent's data protection and privacy are paramount and we need comprehensive data protection and privacy regulations.
- 48% respondents suggest the importance of regulatory frameworks while 44% respondents focus on human oversight mechanisms and public engagement and participation to prevent AI system from infringing on human rights.
- 24% respondents advocate international cooperation and treaty for the effective use of AI.
- **Conclusion & Suggestions** :- The potential of AI to democratize access to education, healthcare and employment is undermined by biasness and surveillance practices. A rights-based approach—combining rigorous equity audits, inclusive policymaking and worker protections is critical to ensure AI serves as a tool of empowerment rather than exclusion.

Recommendations :-

- Implement the AI standards for education and healthcare systems as explain by the UNESCO. UNESCO has established comprehensive guidelines and standards for the ethical use of AI in education and healthcare systems. These initiatives are;—-
- AI in Education—— As per the UNESCO to promote the inclusion and equity in education we should.
- Adopt the Human-Centered Approach
- Guidance for policy makers provides insights into the opportunities and challenges presented by AI in education.
- Competency framework for both students and teachers.

- AI in Healthcare—— In healthcare UNESCO recommends the following—-
- Outlines the principles to guide the ethical deployment of AI technologies and ensuring transparency, accountability and protection of personal health data.
- UNESCO encourages developing guidelines that address human-robot interactions within healthcare.
- Adopt Paris Summit guidelines for global AI governance including mandatory bias audits.
- Adopt EU's AI Act Principles to ensuring that AI systems are safe, transparent and respect fundamental rights. There are following core principles of EU's AI act—-
- Human decision making should be support AI system rather than replace it.
- To perform reliable functions high-risk AI system must be designed.
- To safeguard personal information strong data protection measures are required.
- Information should be given to users how AI system operates.
- This act mandates that AI system do not perpetuate biases against individuals or community.
- For the Strict compliance this act suggests that the AI should be continuous monitoring and provide clear documentation related to the functions of AI.
- For the non-compliance there is also a provision of penalty of EUR 7.5 million or 1.5 % of worldwide annual turnover to EUR 35 million or 7% depending on the severity of violations.

This comprehensive approach set a precedent for global discussions on the regulation of AI.

References :

richamittal993@gmail.com, 7534888844
ankitrajput624@gmail.com, 7987079967

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 71-74

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री जीवन

कट्टा विष्णुवर्धन रेड्डी

जूनियर लेक्चरर, गवर्नमेंट जूनियर कॉलेज, चेविल्ला, रंगारेड्डी, तेलंगाना।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखिका सिमोन का कहना है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है।' स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके स्त्री होने का एहसास दिलाया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज स्वयं की सत्ता को बनाए रखने हेतु स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों में बांधकर रखता है। सीमोन के अनुसार– "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि औरत बनाई जाती है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य अकेली नियंता नहीं होती।"[1] पश्चिमी जीवन शैली और चिंतन का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा तब से स्त्री वर्जनाओं को तोड़ने में समक्ष होने लगी है। शिक्षित स्त्री अपने हक के प्रति जागरूक हो रही है, जिससे वह परंपरागत रूढ़ि–प्रथाओं, मान्यताओं से मुक्त होने के लिए संघर्ष करने लगी हैं।

मधु कांकरिया कृत 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में स्त्री जीवन से जुड़े विभिन्न आयामों को मार्मिक रूप से रेखांकित किया है। लेखिका का कहना है कि उसका विश्वास है कि इस संसार में रोटी तो मिलेगी लेकिन उसकी कीमत बोटी देकर चुकानी पड़ेगी है। लेखिका के शब्दों में– "घर में कोई मर्द होता तो क्या ऐसे बोलने की हिम्मत कर सकता था वह? यह आदमियों की दुनिया है जो रोटी तो देगी पर बोटी नोच लेगी। फटी चदरी–सा यह घर अब तुम्हारे संभले–संभलेगा और मेरे।"[4] इस तरह उपन्यासकार ने स्त्री जीवन का परावलंबन व स्वावलंबन के विचार–विमर्श को प्रस्तुत किया है।

गीतांजली श्री कृत उपन्यास 'माई' में वर्णित माई स्त्री जीवन की सजीव मूर्ति के रूप उभरकर आती है। परंपरागत स्त्री के रूप में कर्तव्यों को निभाती है। घर के सभी सदस्यों की उचित देखभाल करती है, जिम्मेदारी उठाती है। रूढ़िवादी ससुरालवालों की हर प्रताड़ना और जली–कटी बातों को भी सुनती हैं किंतु अपनी मर्यादा को नहीं तोड़ती है। उसकी चुप्पी ही उसका सबसे बड़ा हथियार होता है। उसकी यह चुप्पी सबके हृदय में उठती विद्रोह की भावना है, जो घर वाले पहचान नहीं पाते हैं– "माई की आग की बात तो कभी नहीं उसकी आग तो न बचपन, न जवानी न बुढ़ापे में देखी या जानी। उसने तो आग को भीतर खींचकर ऐसे छुपा लिया कि बाहर निकलती शीतलता में अंगारों का कोई आभास नहीं रह गया। उसकी आग हम मान ही कर सके बस सोच पाए।"[5] स्त्री का अपने अस्तित्व और अपनी सत्ता के लिए सचेत होना स्त्री चेतना है।

अलका सरावगी कृत 'कलि कथा वाया बाईपास' उपन्यास में किशोर बाबू मारवाड़ियों की पिछली छह पीढ़ियों की चरित्रता की कथा कही है, साथ ही भारत में अंग्रेजों के आगमन और आजादी तक भारतीय मानस में आए बदलाव की कथा है। मारवाडी किशोर बाबू को केंद्र में रखकर गुजरात से कोलकत्ता तक फैले उत्तर

भारतीय समाज की कथा मार्मिक रूप से चित्रित हुई है। इसमें मारवाड़ी समाज में स्त्रियों का घुटन भरा जीवन है, जिसके केंद्र में किशोर बाबू की विधवा भाभी है। मारवाडी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी के सफेद साड़ियाँ पहनने के सिवाय और कुछ नहीं पहन सकती है। किशोर बाबू की भाभी जब यह सोचकर कि आज तो सब शिक्षित लोगों की जमात आएगी खुली सोचवाली। बहुत प्रसन्न मन से वह साड़ियाँ पहनकर शर्माती हुई कमरे से बाहर निकलती है, तभी किशोर बाबू अपनी रूढ़िवादी मानसिकता के कारण यह स्वीकार नहीं कर पाते है। रूढ़ि की दुहाई देकर विधवा स्त्री को उसी दयनीय स्थिति में धकेल देना चाहते है– "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी। उम्र बढ़ने के साथ–साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है पर मुझे लगता है यूं पी. वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक–मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर। कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।"[2] पुरुषप्रधान समाज की सोच है कि एक विधवा स्त्री का अच्छे कपड़े से मर्यादा खत्म होती है। इस उपन्यास में रूढ़िवादी समाज की कथा ही नहीं है, बल्कि इसमें भारतीय पुरुषप्रधान समाज की विसंगतियों का भी चित्रण है। अलका सरावगी ने इस उपन्यास में उच्च वर्ग की स्त्री का परावलंबन जीवन विस्तार दिखाया है। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में– "स्त्री की व्यथा पर आधुनिक काल के सभी रचनाकारों ने लेखनी उठाई है। लोक हृदय और लोक चिंता रचनाकर्ता की सच्ची पहचान है। साहित्य हमारे मनुष्य भाव की रक्षा का प्रयत्न है– जो हमें बेहतर मनुष्य बनाता है– भाव परिष्कार करता है और मनुष्यता की उच्च भूमि पर ले जाकर खड़ा कर देता है।"[3] साहित्य समाज जीवन को परिष्कृत करता है।

मोहनदास नैमिशराय कृत 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में स्त्री का अदम्य साहस और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए इस समाज की कुरीतियों का विरोध करती है। वेश्याओं में भी अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आने लगी है। अब वह भी अन्याय सहने के लिए तैयार नहीं है। उपन्यासकार के शब्दों में– "गुलाब सिंह फिर से दबे–दबे के साथ थाने में लौट आये थे। थाने के बाहर राष्ट्र की बेड़ियों का जमावड़ा और बढ़ गया था। आंदोलनकारियों के जत्थे के बीच से बड़ी मुश्किल से निकल पाये थे वे। थाने के बाहर भीड़ बढ़ती ही जा रही थी, प्रदर्शनकारियों का सैलाब उमड़ रहा था। तभी उन्होंने लाठी चार्ज का आदेश दिया था, आदेश पाते ही पुलिस फोर्स प्रदर्शनकारियों पर टूट पड़ी थी। सबसे आगे शबनम बाई। तभी चारों तरफ शोर मच गया था। राष्ट्रपति आ गये। थाने में तैनात कर्मियों के हाथ–पांव फूल गये थे। सुमीत व पार्वती अभी हवालात में थे। राष्ट्रपति ने स्वयं आकर इन्हें मुक्त किया।"[9]

उपन्यासकार ने वेश्या स्त्रियों में अपने हक के प्रति चेतना जाग्रत की है और स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। ताकि वह भी स्वतंत्र और मानवीय रूप से जीवन यापन कर सके। इस तरह उपन्यासकार ने सामाजिक न्याय और समानता के लिए विद्रोह करने का मार्ग दिखाया है। उपन्या पुरानी परंपराओं को स्त्री विरोधी बताता है। उन्हें अब परिवर्तन की मांग करके स्वावलंबी बनने के लिए जोरदार पहल करता है। इस उपन्यास मे चेतना मुखरित है। उपन्यासकार के शब्दों में– "इन गली सड़ी परंपरा के खिलाफ विद्रोह करने के लिए प्रेरित करते हुए कहता है कि "पार्वती परंपराओं और कुप्रथाओं को ओढ़ने–बिछाने वाले लोग यह सब कहते हैं, कुछ पल ठहर कर पुनरू ही संधे हुए स्वर में कहा था, "लोग तो यह भी चाहते है कि वेश्याएँ समाज में हमेशा रहे पर जो गलत है, वह तो गलत ही है, भले ही वह प्राचीन परंपराओं का महत्वपूर्ण हिस्सा ही क्यों न हो" पार्वती ने समुति से पूछा क्या "यह सच हो सकता है?" जैसे अटल विश्वास था

सुमित के स्वर में तुम लोगों की मुक्ति एक न एक दिन होकर ही रहेगी पार्वती।" "मैं मुक्ति की उस घड़ी का इंतजार करूँगी।" समीत ने कहा था, इंतजार नहीं संघर्ष करना होगा, पार्वती के भीतर की छटपटाहट उभरी थी। तुम साथ दोगे तो मैं सब कुछ करूँगी।" बाहर सूना–सूना था। भीतर हलचल थी, बेचैनी थी और हाहाकार था। पार्वती के स्मृति चित्र जैसे पुनः लौट आए थे, उनकी आँखों में मुक्ति के सपने थे।"[10] अब स्त्रियाँ तमाम अवरोधों और साजिशों के बावजूद अपनी सृजनात्मक आत्मशक्ति और श्रमशक्ति के बल पर विषमताओं से भरपूर सामाजिक संरचना को तोड़कर सामाजिक समानता की स्थापना के लिए संघर्षरत है– "पार्वती चुप थी सुमित ने उसकी आँखों में अपने सवाल का जवाब निहारते हुए उसके कंपकपाते हुए होठों की भाषा पढ़ने का प्रयास किया जैसे वे कुछ कहना चाहते हो। तुम कुछ न कुछ कहना चाहती हो, पर कह नहीं पा रही हो आखिर क्यों? आवेश में उसके होंठ हिले थे। नहीं, नहीं, मैं कहना चाहती हूँ।" सुमित ने फिर उकसाया था, तो फिर कहती क्यों नहीं, यहाँ किसी का डर है क्या अंततरू मन की बात होठों तक आ गई थी मैं यह धंधा आज और अभी से ही छोड़ती हूँ। जैसे उसके भीतर तूफान से टकराने का जज्बा था तभी शबनम बाई का स्वर उभरा था, शाबास बेटे कब से सब सुनने को हमारे कान ही तरस गये थे।" अब वेश्याओं ने इस गुलामी से मुक्ति मुक्ति की राह पर चलने को बेताब थी। सभी अपने–अपने पिंजरे में कैद उन सबको मुक्त होना था। चारों ओर मुक्ति के गीत गूँजने लगे थे। पहल हुई शबनम बाई के कोठे से।"[11] स्त्री यदि समाज से लड़ेगी तभी उसे उत्पीड़न से मुक्ति मिलेगी। उपन्यास में स्त्रियाँ समानता और न्याय के लिए संघर्ष करती है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरी समुदाय की दयनीय स्थिति का चित्रण है। इस समुदाय के पंचायत प्रमुख को मुखिया कहा जाता है। समुदाय का कोई व्यक्ति गलत काम करता है तो पंचायत उसे बहिष्कार करती है। कभी–कभी पंचायत का निर्णय भी गलत होता है। धीरे–धीरे इस समुदाय की स्त्रियों में चेतना आ रही है। वह ऐसी पंचायत के गलत निर्णय का विरोध भी कर रही है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र कदमबाई अपने बेटे को इस पंचायत के गलत मान्यता और निर्णय से परिचित कराती है। इस कारण मुखिया ने कदमबाई को समुदाय से बहिष्कृत किया जाता है। रामसिंह की बेटी अल्मा और कदमबाई का बेटा राणा दोनों में प्रेम है। किंतु श्रीराम शास्त्री अल्मा को किसी भी हालत में पाना चाहता है। मुखिया ने श्रीराम शास्त्री के पक्ष में निर्णय दिया था। इस अन्यायपूर्ण निर्णय का विरोध करती है– "तुम्हारी पंचायत को मैं नहीं मानता मुखियाजी। पंचों के भी दांत हैं, जो आदमी को फाड़ते नहीं, फंसाते हैं। राणा की माँ तुम्हारी पंचायत की शिकार है। उसे बस्ती भर की मजूरीनी बना दिया। कदमबाई घबरा सी गई। दंभ की बात कह दी रामसिंह ने। माना कि सरमन पढ़ा–लिखा है नहीं, पर कबीले का मुखिया तो है। उसका हुकुम सब सिर आंखों लेते हैं। किसी ने सुनाया तो इस मुखिया को।"[8] लेखिका ने गरीब स्त्रियों में आयी चेतना को दर्शाया है।

मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' उपन्यास की असीमा की माँ एक स्वाभिमानी स्त्री के रूप में उभरकर सामने आती है। अपने पति की दूसरी शादी के बाद उनके साथ न रहकर अपने बच्चों का पालन–पोषण स्वयं करती है। वह कभी भी अपने पति के द्वारा दिए वस्तुओं पर निर्भर नहीं है। स्वयं दर्जी का काम कर बच्चों के लिए आवश्यक चीजें मुहय्या करती है परंतु अपने पति के सामने कभी हाथ नहीं फैलाती है। वह कहती है कि– "मैंने अपनी जिंदगी खुद चुनी थी। मैं नहीं चाहती कि उसका साया तुम्हारी जिंदगी को ढक ले। मुझे मर्दों से नफरत नहीं है। जरुरी नहीं हैं कि सब मर्दों की ख्वाहिशे एक जैसी हो। मुझे मात्र शरीर बनकर जीना पसंद नहीं था

और मैं दया की पात्र भी नहीं बनना चाहती थी। यह मेरी किस्मत थी कि मुझे इन्हीं के बीच चुनना पड़ा।"[6] असीमा की माँ अशिक्षित होकर अपने मूल्यों को ताक पर नहीं रखती है। अंतिम क्षणों में मृत्यु के समय असीमा से कहती है कि– "मैं चाहती हूँ, मेरी चिता को आग तू दे।"[7] इस उपन्यास में स्त्री पात्र भले ही शोषित हो किंतु समस्याओ से जूझते–जूझते वह अंदर एक जागरूक स्त्री को संचारित कर स्त्री समाज की उन्नति के लिए कार्य करती है और जीवन सफल बनाकर आगे बढ़ती है।

अतः स्त्री का व्यक्तित्व सृष्टि के शुरुआत से ही देशकाल और वातावरण के अनुरूप कभी दबता, कभी उभरता गया है। अपनी अस्मिता और अधिकार के लिए उसे निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। मानवीय भावना और मानसिक क्षमता के स्तर पर स्त्री पुरुष के समकक्ष मानी जाता है। बावजूद वह कई बंधनों में जकड़ी है।

संदर्भ :–

1. सीमोन द बोउवार : अनुवादक प्रभा खेतान : स्त्री उपेक्षिता, पृ.सं. 121
2. मधु कांकरिया : सेज पर संस्कृत, पृ.सं. 50–51
3. गीतांजली श्री : माई, पृ.सं. 49
4. अलका सरावगी : कलिकथा वाया बाईपास, पृ.सं. 61
5. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ.सं. 139
6. मोहनदास नैमिशराय : आज बाजार बंद है, पृ.सं. 116
7. मोहनदास नैमिशराय : आज बाजार बंद है, पृ.सं. 86
8. मोहनदास नैमिशराय : आज बाजार बंद है, पृ.सं. 113
9. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 109
10. मृदुला गर्ग : कठगुलाब, पृ.सं. 170
11. मृदुला गर्ग : कठगुलाब, पृ.सं. 192

मो.नं. 6302639734

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 75-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समुद्रः सतत ऊर्जा का भविष्य : एक भौगोलिक दृष्टिकोण

Sunita

PGT Geography, PMShri GGSSS, Murthal Adda, Sonepat (3490)

सारांश :-

आज विश्व ऊर्जा संकट और जलवायु परिवर्तन की गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। पारंपरिक जीवाश्म ईंधनों की सीमितता और उनके उपयोग से उत्पन्न प्रदूषण ने सतत विकास के मार्ग को बाधित किया है। ऐसे में समुद्र ऊर्जा का एक स्वच्छ, सतत और विशाल स्रोत बनकर उभरता है। ज्वारीय, तरंग, समुद्री तापीय तथा पवन ऊर्जा जैसे विकल्पों में असीम संभावनाएं हैं। भारत की 7517 किमी लंबी समुद्री सीमा और द्वीपीय भूगोल इसे इस क्षेत्र में वैश्विक नेतृत्व प्रदान करने के लिए सक्षम बनाते हैं। यह शोध भारत में समुद्री ऊर्जा की संभावनाओं, तकनीकी चुनौतियों, पर्यावरणीय प्रभावों और नीति संबंधी आवश्यकताओं का विश्लेषण करता है। निष्कर्षतः, यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक सहभागिता और नीति समर्थन को समन्वित किया जाए, तो समुद्री ऊर्जा भारत के सतत भविष्य की आधारशिला बन सकती है।

प्रस्तावना :-

(क) वैश्विक ऊर्जा संकट :

जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, और जीवन स्तर में वृद्धि ने ऊर्जा की मांग को आसमान छूने तक पहुँचा दिया है। वर्तमान में दुनिया की अधिकांश ऊर्जा आवश्यकता जीवाश्म ईंधनों (कोयला, पेट्रोलियम, गैस) से पूरी होती है, लेकिन ये स्रोत सीमित हैं और इनके जलने से ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

(ख) भारत की ऊर्जा स्थिति :-

भारत एक तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था है, जहाँ ऊर्जा की मांग प्रतिवर्ष 6 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। अधिकांश ऊर्जा अभी भी कोयले से प्राप्त होती है, जो न केवल पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है बल्कि आयातित होने के कारण अर्थव्यवस्था पर भी दबाव डालता है। हालाँकि भारत ने सौर और पवन ऊर्जा में निवेश किया है, लेकिन समुद्री ऊर्जा जैसे संभावित विकल्पों पर ध्यान अपेक्षाकृत कम है।

(ग) समुद्री ऊर्जा की प्रासंगिकता :-

भारत की 7517 किमी लंबी तटीय रेखा, द्वीप समूह और समुद्री महाद्वीपीय शेल्फ जैसे भौगोलिक संसाधन इसे समुद्री ऊर्जा दोहन के लिए आदर्श बनाते हैं। समुद्र में असीम ऊर्जा छिपी है – जैसे ज्वारीय ऊर्जा, तरंग ऊर्जा, समुद्री तापीय अंतर और समुद्री पवन।

कुंजी शब्द :– समुद्री ऊर्जा, सतत विकास, अक्षय ऊर्जा स्रोत, ज्वारीय ऊर्जा, तरंग ऊर्जा, समुद्री तापीय ऊर्जा, समुद्री पवन ऊर्जा, तटीय भूगोल, ऊर्जा आत्मनिर्भरता, भारत, ऊर्जा नीति।

शोध का औचित्य :–

(क) सतत विकास की आवश्यकता :–

जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असंतुलन और ऊर्जा संसाधनों की घटती उपलब्धता के कारण "सतत विकास" अब केवल एक आदर्श नहीं, बल्कि अनिवार्यता बन गया है। भारत ने 2070 तक नेट जीरो कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य घोषित किया है, और उसके लिए पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों से दूर हटकर अक्षय ऊर्जा स्रोतों को अपनाना जरूरी है। समुद्री ऊर्जा, स्वच्छ, अक्षय और पुनःप्राप्त होने वाला स्रोत होने के कारण इस दिशा में एक ठोस विकल्प बन सकती है।

(ख) ऊर्जा आत्मनिर्भरता का लक्ष्य :–

भारत आज भी बड़ी मात्रा में कच्चा तेल, प्राकृतिक गैस और कोयला आयात करता है, जिससे विदेशी मुद्रा का अत्यधिक व्यय होता है। समुद्री ऊर्जा का विकास भारत को न केवल ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बना सकता है, बल्कि ऊर्जा निर्यातक भी बना सकता है।

(ग) तटीय और द्वीपीय क्षेत्रों का विकास :–

भारत के कई तटीय और द्वीपीय क्षेत्र सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं। समुद्री ऊर्जा परियोजनाएं इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास, रोजगार सृजन और अधोसंरचना निर्माण के नए द्वार खोल सकती हैं, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन को कम किया जा सकता है।

शोध–अंतराल :–

(क) सीमित तकनीकी विकास :

भारत में समुद्री ऊर्जा अभी शोध और प्रयोग के स्तर पर ही सीमित है। जबकि सौर और पवन ऊर्जा में भारत ने काफी प्रगति की है, वहीं समुद्री ऊर्जा की तकनीकें जैसे ज्वारीय टरबाइन, OTEC (Ocean Thermal Energy Conversion) और वेव कन्वर्टर अभी आरंभिक अवस्था में हैं। इन प्रणालियों की लागत अधिक है, दक्षता कम है और रख–रखाव के लिए विशेष समुद्री तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है। यही कारण है कि भारत में अभी तक कोई वाणिज्यिक समुद्री ऊर्जा संयंत्र पूरी तरह स्थापित नहीं हो पाया है।

(ख) नीति और निवेश में अस्पष्टता :–

हालाँकि भारत सरकार ने 2018 में National Offshore Wind Energy Policy घोषित की, परंतु समुद्री ऊर्जा के सभी प्रकारों (जैसे ज्वारीय, तरंग, तापीय) के लिए कोई व्यापक नीति अब तक अस्तित्व में नहीं है। स्पष्ट नीतिगत ढांचे के अभाव में निवेशकों में अनिश्चितता रहती है, जिससे निजी निवेश और सार्वजनिक–निजी भागीदारी (PPP) में कमी बनी रहती है।

(ग) पर्यावरणीय और सामाजिक अध्ययन की कमी :–

समुद्री ऊर्जा परियोजनाओं का समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र (जैसे प्रवाल भित्तियाँ, मछलियों के प्रजनन क्षेत्र) और तटीय समुदायों (विशेष रूप से मछुआरे) पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय शोध अभी अत्यंत सीमित हैं।

उद्देश्य :–

इस शोध का मुख्य उद्देश्य भारत के समुद्री भूगोल के परिप्रेक्ष्य में समुद्री ऊर्जा की संभावनाओं, चुनौतियों और रणनीतियों का मूल्यांकन करना है। विशेष रूप से निम्नलिखित लक्ष्यों को केंद्र में रखा गया है :–

(क) समुद्री ऊर्जा की संभावनाओं का भौगोलिक विश्लेषण :–

भारत के तटीय क्षेत्रों, समुद्री पवन पट्टियों, ज्वार–प्रवण क्षेत्रों तथा द्वीपीय इलाकों की भौगोलिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन इन स्थानों की ऊर्जा क्षमता का आकलन करता है।

(ख) प्रौद्योगिकियों की समझ विकसित करना :–

विभिन्न समुद्री ऊर्जा तकनीकों जैसे ज्वारीय टरबाइन, वेव कन्वर्टर, OTEC सिस्टम, और ऑफशोर विंड टर्बाइनों की कार्यप्रणाली, उनकी दक्षता, लागत और व्यवहार्यता को समझना इस शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

(ग) नीतिगत और निवेश संबंधी चुनौतियों की पहचान :–

यह अध्ययन मौजूदा सरकारी नीतियों, वित्तीय प्रोत्साहनों की कमी, और निजी निवेश की बाधाओं का विश्लेषण करता है ताकि सुधार की संभावनाएं सामने लाई जा सकें।

(घ) अंतरराष्ट्रीय अनुभवों से सीख :–

यूनाइटेड किंगडम, जापान, फ्रांस और कनाडा जैसे देशों के समुद्री ऊर्जा मॉडल का तुलनात्मक अध्ययन कर भारत के लिए उपयुक्त नीति सुझाव तैयार करना।

(ङ) पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण :–

तटीय पारिस्थितिकी और समुद्री समुदायों पर इन परियोजनाओं के संभावित प्रभावों का समग्र अध्ययन कर पर्यावरण–संवेदनशील योजनाएं प्रस्तावित करना।

शोध पद्धति :–

यह शोध मुख्यतः गुणात्मक विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें भौगोलिक तथ्यों, नीति दस्तावेजों और तकनीकी स्रोतों का विश्लेषण किया गया है।

(क) अध्ययन की प्रकृति :–

शोध का स्वरूप गैर–प्रायोगिक है। इसमें मौजूदा आंकड़ों, रिपोर्टों और द्वितीयक स्रोतों के आधार पर समुद्री ऊर्जा की संभावनाओं और समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।

(ख) स्रोत

1. सरकारी दस्तावेज :–

- MNRE (Ministry of New and Renewable Energy)
- NITI Aayog Reports
- NIOT (National Institute of Ocean Technology)

2. शैक्षणिक स्रोत :–

- Shodhganga, Springer Journals
- TERI (The Energy and Resources Institute) अध्ययन।

3. **मीडिया व लेख :**

- o Down to Earth, The Hindu (Environment section), Indian Express

4. **मानचित्र व GIS डेटा :–**

- o Coastal Energy Atlas
- o Google Earth Marine Tools

(ग) विश्लेषण उपकरण :–

- SWOT विश्लेषण : ताकत, कमजोरियाँ, अवसर और खतरे।
- GIS आधारित स्थल चयन मूल्यांकन।
- नीति अंतराल विश्लेषण।
- तुलनात्मक अध्ययन : जैसे UK और जापान बनाम भारत के ऊर्जा मॉडल।

समुद्री ऊर्जा के प्रकार और भारत में संभावनाएं :–

समुद्री ऊर्जा कई रूपों में उपलब्ध है, जो समुद्र की भौतिक और प्राकृतिक गतियों पर आधारित होती है। भारत की लंबी तटीय रेखा और द्वीपीय क्षेत्र इन सभी प्रकारों के लिए उपयुक्त हैं।

(क) ज्वारीय ऊर्जा :–

ज्वारीय ऊर्जा ज्वार और भाटे के आने–जाने से उत्पन्न जल प्रवाह की गतिज ऊर्जा से प्राप्त होती है।

- **उदाहरण :** खंभात की खाड़ी (गुजरात), कच्छ की खाड़ी और सुंदरबन (प. बंगाल)
- **क्षमता :** भारत में अनुमानतः 8000 मेगावाट की ज्वारीय ऊर्जा क्षमता है।
- **सुविधा :** पूर्वानुमान योग्य, स्थिर ऊर्जा उत्पादन
- **चुनौती :** उच्च निर्माण लागत, पारिस्थितिकी पर प्रभाव

(ख) तरंग ऊर्जा :–

समुद्री सतह पर उठने वाली लहरों की गति से विद्युत उत्पादन किया जाता है।

- **स्थान :** केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र के तटीय क्षेत्र।
- **उदाहरण :** NIOT द्वारा तमिलनाडु में वेव एनर्जी पायलट प्रोजेक्ट।
- **लाभ :** निरंतर और विशाल संभावनाएँ।
- **चुनौती :** तकनीकी नवाचार की कमी।

(ग) समुद्री तापीय ऊर्जा :–

यह ऊर्जा समुद्र के सतही गर्म पानी और गहरे ठंडे पानी के बीच तापीय अंतर से उत्पन्न होती है।

- **स्थान :** अंडमान–निकोबार, लक्षद्वीप।
- **शर्त :** तापीय अंतर >20°C होना आवश्यक।
- **लाभ :** 24 X 7 ऊर्जा आपूर्ति की संभावना।
- **चुनौती :** महँगी तकनीक और समुद्री जीवन पर प्रभाव।

(घ) समुद्री पवन ऊर्जा :–

समुद्र के ऊपर तेज हवाओं की सहायता से टर्बाइनों द्वारा ऊर्जा उत्पन्न की जाती है।

- **स्थान :** गुजरात और तमिलनाडु के तट।
- **सरकारी लक्ष्य :** 2030 तक 30 GW उत्पादन।
- **लाभ :** उच्च पवन गति, भूमि पर भार नहीं।
- **चुनौती :** स्थापना लागत और समुद्री मौसम की अनिश्चितता।

पर्यावरणीय, सामाजिक और तकनीकी दृष्टिकोण :–

(क) पर्यावरणीय प्रभाव :

सकारात्मक प्रभाव :

- समुद्री ऊर्जा शून्य कार्बन उत्सर्जन वाली होती है।
- पारंपरिक ईंधनों की तुलना में वायु, जल और भूमि प्रदूषण नहीं होता।

नकारात्मक प्रभाव :–

- टरबाइनों और संरचनाओं से समुद्री ध्वनि और कंपन उत्पन्न होते हैं, जो मछलियों और समुद्री जीवों की गतिविधियों को बाधित कर सकते हैं।
- प्रवाल भित्तियों, डॉल्फिन, व्हेल आदि के आवास प्रभावित हो सकते हैं।
- कुछ परियोजनाएं समुद्री धाराओं को बदल सकती हैं, जिससे जैविक चक्रों पर असर पड़ता है।

(ख) सामाजिक प्रभाव :–

- **रोजगार सृजन :**

तकनीकी निर्माण, स्थापना, रख–रखाव और निगरानी के क्षेत्रों में हजारों लोगों को रोजगार मिल सकता है।

- **तटीय समुदायों को लाभ :**

ग्रामीण क्षेत्रों और द्वीपों में ऊर्जा आपूर्ति बढ़ेगी जिससे स्थानीय जीवन स्तर सुधरेगा।

- **चुनौतियाँ :**

अगर परियोजनाएं समुदायों की राय के बिना लागू हों, तो विरोध हो सकता है। मछुआरे समुदायों की आजीविका पर असर पड़ सकता है। इसके लिए सामाजिक मूल्यांकन और पुनर्वास जरूरी है।

(ग) तकनीकी बाधाएँ :–

- समुद्री वातावरण अत्यधिक संक्षारक होता है, जिससे उपकरणों का रख–रखाव कठिन होता है।
- भारत में इन तकनीकों के विशेषज्ञ और प्रशिक्षित जनशक्ति की भारी कमी है।
- समुद्री आँधियों, चक्रवातों और ऊँची लहरों के कारण स्थापनाएँ कई बार क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

चर्चा, सुझाव और निष्कर्ष :–

(क) चर्चा :

- भारत की भौगोलिक स्थिति और समुद्री तटों की विविधता इसे समुद्री ऊर्जा के लिए वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी बनाती है।
- हालाँकि, नीति, तकनीक और निवेश के क्षेत्र में गंभीर सुधार की आवश्यकता है।
- वैश्विक अनुभव दर्शाते हैं कि यदि सरकार, उद्योग और समुदाय मिलकर कार्य करें तो यह ऊर्जा

रूपांतरण संभव है।

(ख) सुझाव :-

1. राष्ट्रीय समुद्री ऊर्जा नीति का गठन किया जाए, जो सभी प्रकार की समुद्री ऊर्जा को कवर करे।
2. NIOT, IITs, और अन्य संस्थानों को समुद्री ऊर्जा शोध के लिए विशेष अनुदान दिए जाएं।
3. तटीय और द्वीपीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
4. PPP मॉडल (Public & Private Partnership) को बढ़ावा देकर निवेश आकर्षित किया जाए।
5. GIS आधारित समुद्री ऊर्जा मानचित्रण विकसित किया जाए ताकि उपयुक्त स्थानों की पहचान की जा सके।
6. अंतरराष्ट्रीय सहयोग (जैसे फ्रांस, न्ज, जापान) से तकनीकी सहायता और निवेश प्राप्त किया जाए।
7. ऊर्जा साक्षरता अभियान चलाकर स्थानीय लोगों को जागरूक किया जाए।

(ग) निष्कर्ष :-

भारत जैसे विशाल और समुद्र–सम्पन्न देश के लिए समुद्री ऊर्जा भविष्य की एक अत्यंत संभावनाशील दिशा है। शोध के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ज्वारीय, तरंग, तापीय और समुद्री पवन ऊर्जा जैसे विकल्प यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नीति समर्थन और तकनीकी नवाचार के साथ अपनाए जाएँ, तो यह भारत को न केवल ऊर्जा आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर कर सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार। (2018) : "राष्ट्रीय अपतटीय पवन ऊर्जा नीति"।
2. नीति आयोग। (2020) : "नीली अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपत्र"।
3. राष्ट्रीय महासागर प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई। : "भारत में समुद्री ऊर्जा की संभावना पर तकनीकी रिपोर्ट"।
4. अंतरराष्ट्रीय अक्षय ऊर्जा एजेंसी। (2022) : "ओशियन एनर्जी टेक्नोलॉजी आउटलुक"।
5. टी.ई.आर.आई. (2021) : "भारत में नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र का मूल्यांकन"।
6. डाउन टू अर्थ पत्रिका। (2023) : "समुद्र : ऊर्जा का अगला स्रोत"।
7. शोधनदी (Shodhganga) : शोध प्रबंध : "भारत में तटीय क्षेत्रों की अक्षय ऊर्जा क्षमता का भूगोलिक विश्लेषण"।
8. प्रोफेसर अनिल कुमार सिंह। (2019) : "भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में भारत", दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
9. IPCC छठी आकलन रिपोर्ट। (2021) : "जलवायु परिवर्तन और ऊर्जा स्रोत"।
10. द हिंदू, पर्यावरण अनुभाग : "समुद्री ऊर्जा परियोजनाओं पर केंद्र की पहल", 2023।

sunitadhull2101972@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 81-86

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी की शिक्षा नीतियों की आधुनिक भारत में प्रासंगिकता : एक समग्र विश्लेषण

डॉ. राजकुमार रावत
शिक्षा विभाग, असिस्टेंट प्रोफेसर
Smt. ANAR DEVI TEACHER'S TRAINING COLLEGE BAKHARANA
(KOTPUTLI - BEHROR) 303105

सारांश :-

यह शोध पत्र रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी की शिक्षा संबंधी नीतियों की वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में प्रासंगिकता का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। टैगोर द्वारा प्रतिपादित 'प्रकृति–केंद्रित समग्र शिक्षा' और गांधीजी के "नई तालीम' मॉडल के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए, यह अध्ययन दर्शाता है कि ये विचार आज भी भारतीय शिक्षा की प्रमुख चुनौतियों के समाधान में सक्षम हैं।

विशेष रूप से, शोध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 के साथ इन शिक्षा दर्शनों के सम्बन्ध की जाँच की गई है। निष्कर्ष बताते हैं कि :

1. NEP 2020 ने टैगोर के बहुविषयक दृष्टिकोण और गांधी के कौशल–आधारित शिक्षा के सिद्धांतों को आंशिक रूप से समाहित किया है।
2. रटंत विद्या, नैतिक शिक्षा का अभाव और व्यावहारिक ज्ञान की कमी जैसी समस्याओं का समाधान इन विचारकों के दर्शन में निहित है।
3. ग्रामीण शिक्षा सुधार हेतु नई तालीम जैसे स्वावलंबी मॉडल्स को अपनाने की आवश्यकता है।

अंततः, शोध यह सिफारिश करता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली को टैगोर और गांधी के शैक्षिक दर्शन से प्रेरणा लेकर प्रकृति–समन्वित, कौशल–केंद्रित और मूल्य–आधारित शिक्षा मॉडल विकसित करना चाहिए।

प्रस्तावना :-

भारतीय शिक्षा प्रणाली के विकास में रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के योगदान को एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में देखा जाता है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में, जब भारत औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के प्रभाव में था, इन दोनों विचारकों ने स्वदेशी शिक्षा मॉडल विकसित किए जो न केवल उस समय बल्कि 21वीं सदी में भी प्रासंगिक हैं। टैगोर ने 'प्रकृति–केंद्रित समग्र शिक्षा' की अवधारणा प्रस्तुत की जबकि गांधीजी ने 'बुनियादी शिक्षा' (नई तालीम) के माध्यम से शिक्षा को जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से जोड़ा।

वर्तमान समय में जब भारत राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 को लागू कर रहा है, यह अध्ययन इन दोनों महान विचारकों के शैक्षिक दर्शन की पुर्नव्याख्या करता है और आधुनिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था में उनके अनुप्रयोग की संभावनाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध में यह प्रमाणित किया गया है कि टैगोर और गांधी के शिक्षा सिद्धांत वर्तमान शिक्षा प्रणाली की अधिकांश चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम हैं।

कुंजी शब्द :– टैगोर, गांधी, शिक्षा नीति, नई तालीम, NEP 2020, प्रकृतिक शिक्षा, कौशल विकास, मूल्य आधारित शिक्षा, भारतीय शिक्षा प्रणाली।

शोध के उद्देश्य एवं प्रमुख प्रश्न :–

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. टैगोर और गांधी की शिक्षा नीतियों के मूलभूत सिद्धांतों की व्याख्या करना।
2. वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करना।
3. NEP 2020 में इन विचारों के समावेश की सीमा और संभावनाओं का मूल्यांकन करना।
4. भविष्य की शिक्षा नीतियों के लिए व्यावहारिक सुझाव विकसित करना।

शोध के प्रमुख प्रश्न :

– क्या टैगोर और गांधी के शिक्षा सिद्धांत आधुनिक डिजिटल युग में प्रासंगिक हैं?

– NEP 2020 ने इन विचारकों के शैक्षिक दर्शन को किस सीमा तक समाहित किया है?

– वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की प्रमुख चुनौतियों का समाधान इन सिद्धांतों में कैसे निहित है?

शोध पद्धतियाँ एवं सामग्री विश्लेषण :–

इस अध्ययन में गुणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध के लिए निम्नलिखित स्रोतों से डेटा संग्रहीत किया गया :

प्राथमिक स्रोत :

– टैगोर द्वारा रचित 'शिक्षा का आदर्श' (1909) और 'विश्वभारती की अवधारणा'।

– गांधीजी के 'हरिजन' पत्रिका में प्रकाशित शिक्षा संबंधी लेख।

– शक्ति निकेतन और वर्धा शिक्षा योजना के मूल दस्तावेज।

द्वितीयक स्रोत :

– शिक्षा नीति पर अकादमिक शोध पत्र और पत्रिकाएँ।

– NEP 2020 का आधिकारिक दस्तावेज और कार्यान्वयन रिपोर्ट।

– टैगोर और गांधी पर लिखी गई प्रमुख जीवनियाँ और विश्लेषणात्मक पुस्तकें।

डेटा विश्लेषण विधियाँ :

1. **विषयगत विश्लेषण :** शिक्षा संबंधी मूलभूत विषयों की पहचान।
2. **तुलनात्मक अध्ययन :** दोनों विचारकों के दर्शन की तुलना।
3. **ऐतिहासिक विश्लेषण :** शैक्षिक विचारों का ऐतिहासिक संदर्भ।
4. **व्याख्यात्मक विश्लेषण :** वर्तमान संदर्भ में सिद्धांतों की व्याख्या।

टैगोर की शिक्षा नीति : एक गहन विवेचन :–

3.1 प्रकृति–केंद्रित शिक्षा दर्शन :

रवींद्रनाथ टैगोर की शिक्षा दर्शन की मूलभूत धारणा थी कि शिक्षा प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए दी जानी चाहिए। उन्होंने शक्ति निकेतन की स्थापना कर इस विचार को मूर्त रूप दिया। टैगोर के शब्दों में :

'विद्यालय ऐसा स्थान होना चाहिए जहाँ बच्चे खुले आकाश के नीचे, पेड़ों की छाया में, पक्षियों की चहचहाट के बीच, प्रकृति के साथ एकाकार होकर सीख सकें।'

इस अवधारणा के प्रमुख तत्व :–

– प्राकृतिक वातावरण में सीखने से बच्चों की रचनात्मकता और कल्पनाशक्ति का विकास।
– खुले स्थानों में शिक्षा से मानसिक स्वास्थ्य और संज्ञानात्मक विकास पर सकारात्मक प्रभाव।
– प्रकृति के साथ सीधा संपर्क बच्चों में पर्यावरण संवेदनशीलता और संरक्षण भावना विकसित करता है।

3.2 कला और संस्कृति का समन्वय :–

टैगोर ने शिक्षा में कला और संस्कृति को केन्द्रीय स्थान दिया। उनका मानना था कि :

'सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य के मन, हृदय और हाथों–तीनों का समान विकास करे। इसके लिए कला और संस्कृति शिक्षा का अनिवार्य अंग होनी चाहिए।'

इस दृष्टिकोण के प्रमुख आयाम :–

– संगीत, नृत्य और चित्रकला को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाना।
– स्थानीय कलाओं और शिल्पों को संरक्षण और प्रोत्साहन देना।
– सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता और सहज वातावरण प्रदान करना।
– सांस्कृतिक विरासत की समझ विकसित करना।

3.3 वैश्विक नागरिकता की अवधारणा :–

टैगोर ने शिक्षा को राष्ट्रीय सीमाओं से परे मानवता की सेवा के रूप में देखा। उन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना कर इस विचार को साकार किया। इस दर्शन के प्रमुख पहलू :

– 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना का विकास।
– पूर्व और पश्चिम के ज्ञान का समन्वय और संवाद।
– सांस्कृतिक आदान–प्रदान को प्रोत्साहन देना।
– अंतर्राष्ट्रीय समझ और शांति की शिक्षा पर बल।

गांधीजी की शिक्षा नीति : नई तालीम का विस्तृत विश्लेषण :–

4.1 बुनियादी शिक्षा का सिद्धांत :

महात्मा गांधी ने 1937 में 'नई तालीम' या बुनियादी शिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत की। इसके मूल में था :

'सच्ची शिक्षा वह है जो बच्चे को स्वावलंबी बनाए, उसके चरित्र का निर्माण करे और समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारी का बोध कराए।'

इसके प्रमुख स्तंभ :–

– शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए।
– मातृभाषा में शिक्षा दी जाए।
– शिक्षा स्वावलंबन पर आधारित हो।
– हस्तकला और उत्पादन कार्य शिक्षा का अभिन्न अंग हो।

4.2 श्रम की गरिमा का सिद्धांत :–

गांधी जी ने शिक्षा में हस्तकला और उत्पादन कार्य को केन्द्रीय स्थान दिया। उनका कहना था :

'हाथ से काम करने वाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। शिक्षा ऐसी हो जो हाथ, हृदय और मस्तिष्क का समन्वय करे।'

इसके अंतर्गत :

– कताई, बुनाई, कृषि, काष्ठकला जैसे कौशल सिखाए जाते थे।
– शारीरिक श्रम को सम्मान और गरिमा की दृष्टि से देखा जाता था।
– शिक्षा के साथ–साथ उत्पादन पर जोर दिया जाता था।
– स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित की जाती थी।

4.3 चरित्र निर्माण पर बल :–

गांधीजी के लिए शिक्षा का अंतिम लक्ष्य था चरित्रवान नागरिकों का निर्माण। उन्होंने जोर देकर कहा :

'शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान देना नहीं, बल्कि अच्छे चरित्र का निर्माण करना है। ज्ञान बिना चरित्र के खतरनाक हो सकता है।'

इसके लिए उन्होंने प्रस्तावित किया :–

– नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना।
– सादगी, सत्य और अहिंसा के मूल्यों पर जोर देना।
– सेवा भाव और सामाजिक जिम्मेदारी विकसित करना।
– आत्मानुशासन और आत्मनिरीक्षण को प्रोत्साहन देना।

आधुनिक भारत में प्रासंगिकतारू एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य :–

5.1 NEP 2020 में टैगोर और गांधी के सिद्धांतों का प्रतिबिंब :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में टैगोर और गांधी के कई शैक्षिक सिद्धांतों को समाहित किया गया है :

टैगोर के सिद्धांतों का समावेश :

– बहुविषयक शिक्षा पर जोर (धारा 4.9)
– कला और विज्ञान का समन्वय (धारा 4.10)
– रचनात्मकता और महत्वपूर्ण चिंतन को प्रोत्साहन (धारा 4.7)
– प्रारंभिक शिक्षा में खेल–आधारित शिक्षण (धारा 1.2)

गांधी के सिद्धांतों का समावेश :

– व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास (धारा 4.15, 16.3)

– स्थानीय भाषाओं में शिक्षा (धारा 4.11, 22.2)
– मूल्य आधारित शिक्षा पर जोर (धारा 4.24)
– सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन (धारा 1.4)

5.2 वर्तमान चुनौतियाँ और टैगोर-गांधी के समाधान :-

भारतीय शिक्षा व्यवस्था के समक्ष मौजूद प्रमुख चुनौतियाँ और इन विचारकों के सिद्धांतों से संभावित समाधान :

प्रमुख चुनौतियाँ :

1. रटंत विद्या पर अत्यधिक निर्भरता : परीक्षा–केंद्रित शिक्षा प्रणाली।
2. नैतिक शिक्षा का अभाव : चरित्र निर्माण की उपेक्षा।
3. व्यावहारिक ज्ञान और कौशल की कमी : रोजगारपरक शिक्षा का अभाव।
4. ग्रामीण–शहरी शिक्षा अंतर : संसाधनों और गुणवत्ता का असमान वितरण।
5. पर्यावरण शिक्षा की कमी : प्रकृति से दूर होती शिक्षा।

टैगोर-गांधी के समाधान :-

– प्रकृति–आधारित शिक्षा मॉडल को अपनाना (टैगोर)
– नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करना (गांधी)
– ''व्यावसायिक प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाना (गांधी)
– ग्रामीण शिक्षा के लिए स्वावलंबी मॉडल विकसित करना (गांधी)
– कला और संस्कृति को शिक्षा का अंग बनाना (टैगोर)

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

6.1 प्रमुख निष्कर्ष :

इस विस्तृत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं :

1. टैगोर और गांधी की शिक्षा नीतियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी उनके समय में थीं, विशेषकर वर्तमान शिक्षा संकट के संदर्भ में।
2. NEP 2020 ने इनमें से कई सिद्धांतों को आंशिक रूप से समाहित किया है, लेकिन पूर्ण रूप से लागू करने की आवश्यकता है।
3. भारतीय शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान चुनौतियों का समाधान इन विचारकों के दर्शन में स्पष्ट रूप से निहित है।
4. ग्रामीण शिक्षा, नैतिक मूल्यों, व्यावहारिक ज्ञान और पर्यावरण शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

6.2 व्यावहारिक सुझाव :

भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं :

1. प्रकृति-आधारित शिक्षा को बढ़ावा :

– टैगोर के विचारों को अपनाते हुए अधिक से अधिक खुले शिक्षण स्थान बनाए जाएँ।

- हर स्कूल में 'ग्रीन लर्निंग जोन' विकसित किए जाएँ।
- पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए।

2. कौशल विकास पर जोर :

- गांधीजी के नई तालीम मॉडल को आधुनिक रूप में लागू करें।
- कक्षा 6 से ही व्यावसायिक प्रशिक्षण अनिवार्य बनाया जाए।
- स्थानीय उद्योगों के साथ समन्वय स्थापित किया जाए।

3. मूल्य आधारित शिक्षा :

- नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाए।
- योग और ध्यान को दैनिक कार्यक्रम में शामिल किया जाए।
- सेवा भाव विकसित करने के लिए सामुदायिक कार्य अनिवार्य किया जाए।

4. ग्रामीण शिक्षा सुधार :

- गाँवों में स्वावलंबी शिक्षा मॉडल विकसित किए जाएँ।
- स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर शिक्षा दी जाए।
- ग्रामीण शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएँ।

5. शिक्षक प्रशिक्षण :

- शिक्षकों को टैगोर और गांधी के शैक्षिक दर्शन से अवगत कराया जाए।
- शिक्षण विधियों में नवाचार को प्रोत्साहन दिया जाए।
- शिक्षक–छात्र अनुपात में सुधार किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. टैगोर, रवींद्रनाथ. 'शिक्षा का आदर्श'. 1909.
2. गांधी, मोहनदास करमचंद. 'हरिजन'. 1937.
3. भारत सरकार. 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'
4. कृष्ण कुमार. 'भारत में शिक्षा का राजनीतिक दर्शन'. 2005.
5. NCERT- 'भारतीय शिक्षा का इतिहास'. 2018.
6. सच्चिदानंद सिन्हा. 'टैगोर एजुकेशन फिलॉसफी'. 2010.
7. ज्ञानी जैल सिंह. 'गांधीजी की शिक्षा योजना'. 2002.
8. मीनाक्षी ठाकुर. 'भारतीय शिक्षा चिंतन'. 2015.
9. योगेन्द्र यादव. 'नई तालीम का आधुनिक संदर्भ'. 2019.
10. UNESCO- 'एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट'. 2021.

Email : rajkumarktp784@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 87-90

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में नारीवाद का विकास

डॉ. वैशाली सिंह
हिन्दी संकाय

सारांश :-

यह शोधपत्र हिंदी साहित्य में नारीवाद के ऐतिहासिक, साहित्यिक और सामाजिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भक्ति काल की मीरा से लेकर समकालीन दलित लेखिकाओं तक, साहित्य में नारीवादी चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, मन्नू भंडारी और ममता कालिया जैसे रचनाकारों ने स्त्री की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, यौनिकता, और सामाजिक असमानता जैसे विषयों को केंद्र में लाकर साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। दलित और आदिवासी नारीवाद ने जाति और लिंग आधारित शोषण को उजागर किया। डिजिटल युग में नारीवादी लेखन को नया मंच मिला है, जिससे विमर्श और व्यापक हुआ है। यह शोधपत्र दर्शाता है कि हिंदी साहित्य ने नारी की आवाज को न केवल अभिव्यक्ति दी, बल्कि उसे समाज में बदलाव लाने का उपकरण भी बनाया।

प्रस्तावना :-

नारीवाद एक वैश्विक विचारधारा है, जो स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक समानता की वकालत करती है। हिंदी साहित्य ने नारी की स्थिति, उनके संघर्ष, और स्वतंत्रता की खोज को चित्रित कर सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित किया। भक्ति काल की मीरा से लेकर समकालीन दलित लेखिकाओं तक, नारीवादी चेतना ने विविध रूपों में अभिव्यक्ति पाई। यह शोध पत्र हिंदी साहित्य में नारीवाद के ऐतिहासिक, साहित्यिक, और सामाजिक आयामों का विश्लेषण करता है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि हिंदी साहित्य ने नारीवादी विचारों को कैसे आकार दिया और विभिन्न कालखंडों में इसका स्वरूप कैसे बदला। प्रमुख प्रश्न यह है कि हिंदी साहित्य ने सामाजिक परिवर्तन में नारीवादी चेतना को कैसे प्रभावित किया? इस पत्र में भक्ति काल, औपनिवेशिक काल, छायावाद, प्रगतिवाद, और समकालीन साहित्य में नारीवाद का अध्ययन किया जाएगा, जिसमें मीरा, प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, और दलित लेखिकाओं की रचनाएँ केंद्र में होंगी।

कुंजी शब्द :- नारीवाद, पितृसत्ता, स्त्री चेतना, लैंगिक समानता, आत्मनिर्भरता, दलित नारीवाद, सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, विवाह।

भक्ति काल में नारी की स्थिति :-

भक्ति काल (14वीं–17वीं सदी) में नारीवादी चेतना का प्रारंभिक स्वरूप मीरा की कविताओं में दिखाई देता है। मीरा ने राजपूत समाज की कठोर पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती दी। उनकी कविताएँ, जो कृष्ण के प्रति

प्रेम और समर्पण को व्यक्त करती हैं, सामाजिक बंधनों से मुक्ति की चाह को दर्शाती हैं। उनकी रचनाएँ नारी की आंतरिक शक्ति और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का प्रतीक बनीं। दूसरी ओर, तुलसीदास ने रामचरितमानस में सीता को आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया, जो पति के प्रति समर्पण और सहनशीलता का प्रतीक थी। यह चित्रण परंपरागत पितृसत्तात्मक मूल्यों को मजबूत करता था, किंतु सीता की दृढ़ता ने नारी की आंतरिक शक्ति को भी उजागर किया। भक्ति काल में नारीवादी चेतना सीमित थी, क्योंकि सामाजिक ढांचा नारी को गृहस्थ और धार्मिक भूमिकाओं तक सीमित रखता था। फिर भी, मीरा की रचनाएँ नारी की स्वायत्तता की प्रारंभिक आवाज बनीं।

औपनिवेशिक काल और सामाजिक सुधार :–

औपनिवेशिक काल (19वीं–20वीं सदी) में हिंदी साहित्य ने नारी की दयनीय स्थिति को उजागर किया। प्रेमचंद ने निर्मला और गोदान जैसे उपन्यासों में दहेज, बाल–विवाह, और सामाजिक शोषण जैसे मुद्दों को उठाकर पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना की। निर्मला में एक युवती के जीवन को दहेज और सामाजिक अपेक्षाओं ने त्रासदी में बदल दिया, जो सामाजिक सुधार की आवश्यकता को रेखांकित करता है। प्रेमचंद ने नारी की आर्थिक और सामाजिक असमानता को उजागर किया, जो औपनिवेशिक भारत में प्रचलित थी। इस काल में साहित्यकारों ने नारी शिक्षा और सामाजिक सुधार पर जोर दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे सुधारकों के प्रभाव से प्रेरित होकर, हिंदी साहित्य ने नारी की स्थिति को बेहतर बनाने की दिशा में कदम उठाए। यह काल नारीवादी चेतना के विकास का प्रारंभिक चरण था, जो बाद में छायावाद और प्रगतिवाद में और सशक्त रूप में उभरा।

छायावाद और नारीवादी चेतना का उदय :–

छायावादी युग (20वीं सदी की शुरुआत) में नारीवादी चेतना ने काव्यात्मक और भावनात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त की। महादेवी वर्मा इस युग की प्रमुख कवयित्री थीं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नारी की आंतरिक भावनाओं और स्वतंत्रता की खोज को व्यक्त किया। उनकी कविता नीहार और यामा में नारी की संवेदनशीलता और आध्यात्मिक गहराई को चित्रित किया गया। श्रृंखला की कड़ियाँ में महादेवी ने नारी शिक्षा और स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया, जो पितृसत्तात्मक बंधनों से मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस युग में साहित्यकारों ने नारी की भावनाओं को व्यक्त करने के साथ–साथ उनकी सामाजिक स्थिति पर भी प्रश्न उठाए। महादेवी की रचनाएँ नारीवादी चेतना को साहित्यिक और सामाजिक स्तर पर सशक्त करने में महत्वपूर्ण थीं। इस काल ने नारीवाद को एक नया आयाम दिया, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म–अभिव्यक्ति पर केंद्रित था।

प्रगतिवाद और नई कहानी में नारी मुक्ति :–

प्रगतिवादी युग (1930–1950) और नई कहानी आंदोलन (1950–1970) में नारीवादी चेतना ने सामाजिक परिवर्तन और मुक्ति के मुद्दों को केंद्र में रखा। इस युग में लेखकों ने नारी को सामाजिक और आर्थिक शोषण से मुक्त करने की वकालत की। अमृता प्रीतम ने पिंजर में विभाजन के दौरान स्त्रियों के शारीरिक और मानसिक शोषण को चित्रित किया, जो पितृसत्ता और सामाजिक हिंसा की क्रूरता को उजागर करता है। उनकी आत्मकथा रसीदी टिकट में नारी की यौनिकता और स्वायत्तता की खोज को बेबाकी से प्रस्तुत किया गया। मन्नू भंडारी ने आपका बंटी में आधुनिक नारी की पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन की खोज को दर्शाया। उनकी नायिका रेखा एक शिक्षित, स्वतंत्र स्त्री है, जो तलाक के बाद भी अपने बच्चे और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती है। उषा प्रियंवदा की रुकोगी नहीं राधिका में नारी की आत्मनिर्भरता और सामाजिक अपेक्षाओं के

बीच टकराव को उजागर किया गया। प्रगतिवादी साहित्य ने नारी को सामाजिक परिवर्तन के केंद्र में रखा, जबकि नई कहानी ने व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक आयामों पर ध्यान केंद्रित किया।

समकालीन नारीवादी साहित्य और दलित विमर्श :–

समकालीन हिंदी साहित्य (1980–वर्तमान) में नारीवादी लेखन ने नए आयाम हासिल किए। ममता कालिया और मृदुला गर्ग ने नारी की आधुनिक चुनौतियों, जैसे करियर, विवाह, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, को अपनी रचनाओं में उठाया। ममता कालिया की दौड़ में मध्यमवर्गीय नारी की महत्वाकांक्षाएँ और सामाजिक दबावों का चित्रण है। मृदुला गर्ग की कितनी कैदें में नारी की स्वायत्तता और करियर की खोज को दर्शाया गया। दलित नारीवाद ने हिंदी साहित्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। सूरजपाल चौहान और कुसुम मेघवाल जैसी लेखिकाओं ने दलित स्त्रियों के दोहरे शोषण – जाति और लिंग – को अपनी रचनाओं में उजागर किया। सूरजपाल की कहानियाँ दलित नारी की आवाज को समाज के सामने लाती हैं, जो पितृसत्ता और जातिवाद दोनों से जूझती है। कुसुम मेघवाल की रचनाएँ सामाजिक समरसता और समानता की माँग करती हैं। डिजिटल युग में ब्लॉग्स और सोशल मीडिया ने नारीवादी लेखन को नया मंच प्रदान किया, जिससे समकालीन विमर्श को व्यापकता मिली। दलित नारीवादी लेखन ने न केवल लैंगिक असमानता, बल्कि सामाजिक और आर्थिक असमानता को भी चुनौती दी, जिससे हिंदी साहित्य और समृद्ध हुआ।

नारीवादी थीम्स और सामाजिक प्रभाव :–

हिंदी साहित्य में नारीवादी थीम्स ने पितृसत्ता, लैंगिक असमानता, और सामाजिक बंधनों के खिलाफ नारी की आवाज को सशक्त किया। पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष मीरा की कविताओं से लेकर अमृता प्रीतम की रचनाओं तक दिखाई देता है। लैंगिक असमानता और शिक्षा पर महादेवी वर्मा ने जोर दिया, जिन्होंने नारी शिक्षा को स्वतंत्रता का आधार माना। विवाह और पारिवारिक भूमिकाएँ मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा की रचनाओं में केंद्रीय थीम रही हैं। यौनिकता को अमृता प्रीतम और चित्रा मुद्गल ने बेबाकी से उजागर किया। दलित नारीवाद ने कुसुम मेघवाल की कहानियों के माध्यम से जाति और लिंग आधारित शोषण को सामने लाया। ये थीम्स हिंदी साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाती हैं। हिंदी साहित्य ने नारीवादी चेतना को समाज में फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महादेवी वर्मा और अमृता प्रीतम की रचनाओं ने सामाजिक सुधारों को प्रेरित किया, जबकि समकालीन लेखन ने डिजिटल मंचों के माध्यम से नारीवादी विचारों को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाया।

चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाएँ :–

हिंदी साहित्य में नारीवादी लेखन को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। परंपरागत सामाजिक मान्यताएँ और पितृसत्तात्मक प्रतिरोध ने नारीवादी लेखन को सीमित करने की कोशिश की। दलित और आदिवासी नारीवादी लेखन को मुख्यधारा में स्वीकार्यता प्राप्त करने में कठिनाई हुई। डिजिटल युग में सोशल मीडिया पर नारीवादी चर्चाएँ बढ़ी हैं, किंतु ट्रोलिंग और आलोचना एक बड़ी चुनौती है। फिर भी, हिंदी साहित्य ने नारीवाद को सशक्त करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। भविष्य में, दलित, आदिवासी, और अन्य हाशिए के समुदायों की आवाजों को मुख्यधारा में लाने की आवश्यकता है। सोशल मीडिया और ब्लॉग्स के माध्यम से नारीवादी लेखन को नई पीढ़ी तक पहुँचाया जा सकता है। हिंदी साहित्य में नारीवादी विमर्श को और समृद्ध करने के लिए शिक्षा और जागरूकता के प्रयासों को बढ़ावा देना होगा।

नारीवाद का वैश्विक संदर्भ और हिंदी साहित्य :-

हिंदी साहित्य में नारीवाद का विकास वैश्विक नारीवादी आंदोलनों से भी प्रभावित रहा है। पश्चिमी नारीवादी विचारधाराएँ, जैसे सिमोन द बोउअवपत की द सेकेंड सेक्स में व्यक्त नारी की द्वितीयक स्थिति की अवधारणा, हिंदी साहित्य में परोक्ष रूप से देखी जा सकती है। अमृता प्रीतम और ममता कालिया जैसे लेखकों ने वैश्विक नारीवादी विचारों को भारतीय संदर्भ में ढाला। हिंदी साहित्य ने नारी की स्थानीय और सांस्कृतिक चुनौतियों, जैसे दहेज, बाल–विवाह, और जातिगत शोषण, को वैश्विक नारीवादी विमर्श के साथ जोड़ा। उदाहरण के लिए, दलित नारीवादी लेखन ने वैश्विक स्तर पर उत्पीड़ित समुदायों के नारीवादी विमर्श से प्रेरणा ली, जैसे ब्लैक फेमिनिज्म। हिंदी साहित्य ने नारीवाद को केवल पश्चिमी ढांचे तक सीमित नहीं रखा, बल्कि भारतीय सामाजिक संरचना के संदर्भ में इसे परिभाषित किया। यह वैश्विक और स्थानीय नारीवाद का एक अनूठा मिश्रण है।

निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य में नारीवाद का विकास एक सतत और समृद्ध प्रक्रिया रही है। भक्ति काल की मीरा से लेकर समकालीन दलित लेखिकाओं तक, हिंदी साहित्य ने नारी की आवाज को सशक्त किया। महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, मन्नू भंडारी, और ममता कालिया ने नारी की आंतरिक और बाह्य चुनौतियों को उजागर कर सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित किया। दलित नारीवाद ने जाति और लिंग आधारित शोषण की आलोचना कर साहित्य को नया आयाम दिया। हिंदी साहित्य ने नारीवादी चेतना को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। भविष्य में, हाशिए के समुदायों की आवाजों को मुख्यधारा में लाने और डिजिटल मंचों के उपयोग से नारीवादी विमर्श को और समृद्ध किया जा सकता है। यह शोध पत्र दर्शाता है कि हिंदी साहित्य नारीवाद को न केवल प्रतिबिंबित करता है, बल्कि उसे सामाजिक बदलाव का उत्प्रेरक भी बनाता है। हिंदी साहित्य का यह योगदान नारीवादी आंदोलन को वैश्विक और स्थानीय स्तर पर सशक्त करने में महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :-

1. शुक्ल, रामचंद्र. (2002). हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
2. कालिया, ममता. (1990). स्त्री उपन्यास और नारी अस्मिता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. वर्मा, महादेवी. (1943). श्रृंखला की कड़ियाँ. इलाहाबाद : साहित्य भवन।
4. प्रीतम, अमृता. (1976). रसीदी टिकट. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
5. "हिंदी साहित्य में नारीवाद." हंस पत्रिका, 2020।

Address : House no 64 main gali no 12 dabar enclave Rawta mor near Rao tula hospital south west Delhi 110073

ईमेल : dolly6433@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 91-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी जीवन की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण

रीता मौर्य

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

शोध सार :-

सेवासदन उपन्यास में प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं को यथार्थवादी ढंग से दिखाया है जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्रेमचन्द के समय में था। नारी का जीवन स्तर समाज में विभिन्न क्षेत्रों में अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है जिसका मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास सेवासदन में किया है।

सेवासदन में प्रेमचन्द ने नारी की पराधीनता दहेज प्रथा की समस्या, वेश्या जीवन और मध्यम वर्ग की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास किया है। सेवासदन में प्रेमचन्द ने मानव मन के अनेक आवरणों को खोला है। 'सेवासदन' उपन्यास में प्रेमचन्द ने समाज के धर्माचार्यों, मठाधीशों, धनपतियों, सुधारकों के आडम्बर, दंभ, ढोंग, पाखण्ड, चरित्रहीनता दहेज प्रथा, बेमेल विवाह पुलिस की घूसखोरी, वेश्यागमन, मनुष्य के दोहरे चरित्र आदि सामाजिक बुराइयों का चित्रण किया है।

प्रेमचन्द की नारी भावना की खूब चर्चा हुई है लेकिन इस नारी भावना के पीछे छुपे दृष्टिकोण में प्रेमचन्द का नारी मनोविज्ञान बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसे नजदीक से देखने में शायद कम ही लोगों ने कोशिश की हो। मनोविज्ञान की शुरूआत प्रेमचन्द की कहानियों से उपन्यासों से शुरू हो जाती है। प्रेमचन्द की नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण के बारे में अक्सर कहा जाता है कि प्रेमचन्द नारी को छूट देते है लेकिन एक हद तक। जहाँ नारी थोड़ी आगे बढ़ी तो झट से उसकी डोर खींच लेते हैं। नारी को एक आदर्श पैमाने पर रखते हैं। इन सभी बातों से बढ़कर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रेमचन्द नारी मन को कहाँ तक पकड़ पाते है और कितने सफल हुए हैं– उनकी महत्ता इस बात पर निर्भर करती है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास में सुमन, जाह्नवी, सुभद्रा, शान्ता, गंगाजली, भोली, भामा, आदि स्त्री पात्रों की मनोदशा, मनोव्यथा, मनोभावना को बड़ी बारीकी से पकड़ा है। ऐसा लगता है प्रेमचन्द नारी मन को टोह आये हो।

'सेवासदन' की सुमन कभी विद्रोहिणी, कभी स्वार्थी, गर्वीली, कभी त्याग–ममता की छवि, कभी असहाय, कभी शक्तिशाली बन जाती है। सुभद्रा कभी नीरस कभी प्रेमभरी शान्ता कभी शान्त, कभी इच्छाओं से भरी जाह्नवी कभी लड़ाकू, कभी प्रेम ममतामयी, भोली कभी भली कभी स्वार्थी गंगाजली कभी हतोत्साहित, कभी उत्साह भरी। भामा कभी क्रोध कभी क्षमा ये सभी मनोभाव 'सेवासदन' के स्त्री पात्रों में किया। व्यक्ति को उसकी सम्पूर्ण विकृतियों, विसंगतियों एवं मनोविकारों के साथ साहित्य में प्रस्तुत किये जाने लगा। 'सेवासदन' के स्त्री

पात्रों की बात करें तो सर्वप्रथम सुमन के मनोविज्ञान की बात करेंगे क्योंकि यह 'सेवासदन' का केन्द्रिय पात्र है।

सुमन की इच्छायें एवं आकांक्षायें बहुत ऊँची हैं। वह बहुत गर्वीली स्त्री है। अपने पिता के घर में वह ठाठ से रहती है। दारोगा कृष्णचन्द्र उसके पिता अपनी दोनों बेटी सुमन और शान्ता की भी इच्छाएं पूरी करते। सुमन जो चीज पसन्द कर लेती उसे लेती और शान्ता को जो मिलता वह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती। सुमन का जीवन शुरू से अन्त तक उतार–चढ़ाव देखता है इसके पीछे छिपा नारी मनोविज्ञान ही है जो कभी दृढ़ और कभी द्वन्द भरा चलता रहता है। संघर्ष उसके जीवन में जीवन पर्यन्त चलता रहता है। पिता के घर रहते हुए सुमन के जीवन में ऐसा मोड़ आता है उसके पिता कृष्णचन्द्र रिश्वत के आरोप में जेल चले जाते हैं। इसके बाद सुमन के मामा सुमन के लिए लड़का ढूंढते हैं तथा एक दोहाजू वर से सुमन का विवाह कर देते हैं। उसका नाम गजाधर था।

सुमन बहुत सुन्दर थी गला सुरीला था, लेकिन सुमन को सम्मान नहीं मिला। उसका पति गजाधर उसके चरित्र पर मिथ्या दोष लगाता है और उसे घर से निकाल देता है। गजाधर–चल छोकरी, मुझे न चरा। ऐसे–ऐसे कितने भले आदमियों को देख चुका हूं। वह देवता हैं, उन्हीं के पास जा। यह झोपड़ी तेरे रहने योग्य नहीं है तेरे हौंसले बढ़ रहे हैं। अब तेरा गुजर यहां न होगा। सुमन स्वाभिमानी थी। सुमन अपने पति के पैरों पर न गिरती है, न गिड़गिड़ाती है उसके स्वर में भारत का नवजाग्रत नारीत्व उत्तर देता है। हाँ यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहता मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूंगी, वही पेट पाल लूंगी। सुमन का यही नारी मनोविज्ञान ही दृढ़ बनाता है। सुमन गृहस्थी चलाने में निपुण नहीं है। वह एक महीने की धनराशि बीस दिन में खतम कर देती है। सुमन बिना सोचे समझे खर्च करती है और उसका पति कृपण व्यक्ति है। दोनों का स्वभाव अलग–अलग है। सुमन अपनी सुन्दरता से अपने पति को आकर्षित करती है, लेकिन गृह प्रबन्ध में कुशल नहीं है इसलिए दोनों में झगड़े होते रहते हैं। दहेज–प्रथा अनमेल विवाह ही वेश्यावृत्ति की ओर नहीं ले जाते हैं बल्कि उपर्युक्त शिक्षा का अभाव और प्रतिकूल परिवेश भी इसके लिए उत्तरदायी हैं। मध्य वर्ग की झूठी मर्यादाएँ भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं हैं। इस मर्यादा को प्रेमचन्द निरन्तर तोड़ते रहे। सुमन बचपन से ही आराम चीजों की शौकीन है, चंचल है और गजाधर अनुभवी है। गजाधर का दो विवाह हुआ है उम्र से सुमन से दुगुना है। वह गृहस्थ जीवन में निपुण है इसीलिए दोनों में अलगाव हो जाता है। सुमन सहनशील नहीं है धन की प्यास है जो सन्तुष्टि गजाधर में नहीं मिल पाती वह सदन में खोजती है। नवयौवना है लेकिन विवाहित होने के कारण और ठोकर लगने के कारण सम्भलकर चलती है। यहाँ भी सुमन के मन में द्वन्द चलता है। सुमन दालमण्डी छोड़कर जब विधवाश्रम में रहती है तब सदन से मिलने के लिए व्याकुल रहती है इसके पीछे नारी मनोदशा ही है जो लगाव महसूस करती है। सदन के आने का समय महसूस हुआ। सुमन आज उससे मिलने के लिए बहुत उत्साहित थी। आज सुमन का और सदन का अन्तिम मिलन होगा। आज यह प्रेम का अभिनय समाप्त हो जायेगा। फिर सदन के दर्शन नहीं होंगे। वह मोहिनी मूर्ति दोबारा देखने को न मिलेगी। वह प्रेम से भरी बातें सुनसे में न आयेगी। जीवन नीरस हो जायेगा। यह प्रेम सच्चा था। भगवान मुझे यह वियोग सहने की शक्ति दे। इस समय सदन मिलने न आये तो अच्छा है, उससे न मिलने में ही कल्याण है। कौन जाने चरणों में अवश्य ही आश्रय पाऊँगी पर आज अपने विवाह की या पुनर्विवाह की बातें सुनकर उसका अनुरक्त हृदय काँप उठा। उसने निःसंकोच होकर जान्हवी से विनय की कि मुझे पति के घर भेज दो। यही तक उसकी सामर्थ्य थी।

इसके सिवा वह और क्या करती? पर जान्हवी की निर्दयतापूर्ण उपेक्षा देखकर उसका धैर्य हाथ से जाता रहा। मन की चंचलता बढ़ने लगी रात को जब सब सो गये तो उसने पद्म सिंह को एक विनय पत्र लिखना शुरू किया यह उसका अन्तिम साधन था पद्मसिंह ने उसकी प्रार्थना सुन ली।

यहाँ उपन्यास हमें यह सोचने को मजबूर कर देती है कि सुमन को वेश्या बनाने के लिए आखिर जिम्मेदार कौन है? क्या वह समाज जहाँ पर वह जन्मी और उसने अपने यौवन की दहलीज पर पाँव रखा। पद्मसिंह इस समस्या के लिए उत्तरदायी मध्यवर्गीय समाज को मानते हैं। उनके कथनानुसार लोग वेश्याओं को बुलाते हैं, उन्हें धन देकर उनके सुख विलास की सामग्री जुटाते और उन्हें ठाठ–बाट से जीवन व्यतीत करने योग्य बनाते हैं, वे उस कसाई से कम पाप के भागी नहीं हैं जो बकरे की गर्दन पर छुरी चलाता। सैकड़ों स्त्रियाँ जो हर रोज बाजार में झरोखे में बैठीं दिखाई देती हैं जिन्होंने अपनी लज्जा और सतीत्व को भ्रष्ट कर दिया है, उनके जीवन का सर्वनाश करने वाले हमीं लोग है। उपन्यास का एक अन्य पात्र अनिरूद्ध सिंह इसका दोष शिक्षित मध्यवर्ग को ही मानती है। हमारे शिक्षित भाइयों की बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौक में चहल–पहल है, चकलों में रौनक है? वह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है। वेश्या रूप से सुमन को जीवन के कटु यथार्थ का आभास होता है। उसका सामना समाज के खोखलेपन और झूठे दिखावेपन से होता है। वह यह भली–भांति देख लेती है कि– जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मन लाल के ठाकुर द्वारे में झूला देखने गई थी सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर नहीं जाने दिया लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ा था मानो मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।

विट्ठलदास सुमन से मिलने जाते हैं और उसे समझाने का प्रयास करते हैं कि वह जो कुछ कर रही है वह ठीक नहीं है, उसकी वजह से हिन्दू जाति का सिर नीचा कर दिया है। इस पर सुमन उन्हें इस प्रकार उत्तर देती है– आप ऐसा समझते होंगे, और तो कोई ऐसा नहीं समझता अभी कई सज्जन यहाँ से मुजरा सुनकर गये हैं, सभी हिन्दू थे, लेकिन किसी का सिर नीचा नहीं मालूम होता था। वह मेरे यहाँ आने से बहुत प्रसन्न थे। फिर इस मण्डी में मैं ही एक ब्राम्हणी नहीं हूं दो चार का नाम तो मैं अभी ले सकती हूँ, जो बहुत ऊँचे कुल की हैं, पर जब बिरादरी में अपना निर्वाह किसी तरह न देखा तो विवश होकर यहाँ चली आयी। जब हिन्दू जाति को खुद ही लाज नहीं है तो फिर हम जैसी अबलायें उसकी रक्षा कहाँ तक कर सकती हैं। भारतीय समाज में नारी के आत्मसम्मान के लिए कोई स्थान नहीं है, उसके जीवन से तो वेश्याओं का जीवन बेहतर है। सुमन यह सोचकर वेश्या बन जाती है, लेकिन सुमन का चरित्र वेश्या के रूप में प्रामाणिक नहीं है।

सुमन के जीवन के सन्दर्भ में इस आर्थिक उत्पीड़न के साथ–साथ दहेज की समस्या भी सामने आती है। ऐसे समाज में जहाँ नारी पराधीन है और वेश्या स्वाधीन है, पुरूष अपनी पत्नी को पीटता है, वेश्या की पूजा करता है, वहाँ किसी औरत का वेश्या बन जाना मुश्किल नहीं है। दरअसल प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में उन परिस्थितियों का वर्णन किया है, जिनके कारण स्वाभिमानी नारी या तो आत्महत्या करने पर उतारू होती हैं या वेश्या बनने के लिए तैयार हो जाती हैं। सुमन की कथा के सहारे प्रेमचन्द इस बात की जांच करना चाहते हैं।

सुमन की इस कथा के साथ–साथ प्रेमचन्द ने समाज के अन्य वर्गों का चित्रण भी किया है। आधुनिक साहित्य में सर्वप्रथम नारी की मुक्ति का सवाल ही मुखर रूप में सामने आया था और प्रेमचन्द से पूर्व भी रचनाकारों की दृष्टि इस ओर गयी थी, लेकिन प्रेमचन्द का यथार्थवाद और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि, उन लोगों

के पास नहीं थी 'सेवासदन' की सफलता इस बात में है कि समस्या को केन्द्र बनाकर भी इसमें साहित्यिक सरसता को बचाये रखा गया है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :-

1. International Journal of Multidisciplinary Research and Development https://www.allsubject journal.com
2. https://sahityacinemasety. com
3. 'सेवासदन'– प्रेमचन्द– लोक भारती प्रकाशन, पेपर बैक संस्करण : 2022
4. डॉ0 बच्चन सिंह– हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।
5. प्रेमचन्द– रामवृक्ष जाट– सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2021

मो0नं0– 8004251060

E.mail- ritumaurya1060@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
July 2025

ISSN : 2395-7115
Page No. : 95-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Women in Classical and Mythological Texts

GURMEET KAUR

RESEARCH SCHOLAR, POLITICAL SCIENCE (SOS), IGNOU, NEW DELHI.

Abstract :

This paper explores the evolving portrayal of women in literature from the early Vedic period to contemporary times, examining the deep interplay between literary texts and societal constructs. Anchored in the assertion that literature reflects and shapes cultural norms, the study analyzes how women's identities have been framed, glorified, subjugated, and ultimately reimagined across different historical epochs.In classical and mythological texts such as the Rig Veda, Ramayana, and Mahabharata, women were initially depicted as enlightened and autonomous beings, with figures like Gargi and Maitreyi symbolizing intellectual parity. However, the later Vedic era marked a shift toward patriarchal ideologies, institutionalized through texts like the Manusmriti and Kautilya's Arthashastra, which marginalized women and confined them to domestic roles. This decline continued into the medieval period, with regressive practices such as Sati, child marriage, and Purdah system gaining prominence, all of which were mirrored in literary and historical narratives.

The study further contrasts these traditional representations with the rise of gender-empowerment literature in both Indian and Western contexts. Writers such as Mahadevi Verma, Amrita Pritam, Kamala Das, and Mridula Garg challenged patriarchal constructs and introduced new voices of female autonomy, desire, and resistance. Victorian literature's ambivalence towards women is critiqued through characters who embody both submission and rebellion, yet often conform to male-centric resolutions. Contemporary fiction, especially by writers like Anita Desai, Shashi Deshpande, and Shobha De, portrays complex, conflicted, yet resilient women navigating societal expectations and personal identities. These narratives not only reflect the changing roles of women but also participate in reshaping them.Through literary analysis, historical interpretation, and feminist critique, this paper demonstrates that literature is not merely a passive mirror but a dynamic force that documents, legitimizes, and occasionally disrupts the gendered power structures of society.

KEY WORDS

These can be used for indexing, abstracts, or academic reference.

- Women in Literature
- Patriarchy and Texts
- Vedic Women
- Classical Indian Literature
- Feminist Literature
- Gender Representation
- Mythological Narratives
- Sita and Draupadi
- Literary Stereotypes
- Women Empowerment
- Matriarchal Society
- Partition Poetry

HISTORICAL PERSPECTIVE :

Literature is often regarded as a mirror of society, capturing its nuances, transformations, and contradictions. Author Jaishree Misra, in her historical novel Rani, observes that "if literature is truly doing its job as a mirror to society, then of course the portrayal of women in books has changed with the times" [1]In the context of Indian society, this assertion holds significant weight, as the portrayal of women in Indian literature has undergone dramatic shifts across eras—from the empowering depictions in early Vedic texts to the restrictive roles shaped by patriarchal institutions in later classical literature. During the Vedic period, women occupied an equal and in many cases elevated position in comparison to men. They were intellectually active, spiritually enlightened, and involved in the authorship of sacred texts. The Rig Veda and Upanishads mention women sages such as Gargi, Maitreyi, and Lopamudra. These women engaged in philosophical debates with male scholars, indicating a society where gender did not restrict intellectual expression. According to historian A.L. Basham, "Women of the Vedic age were allowed to take part in public sacrifices and some were even composers of hymns. This was a golden period of female independence in Indian history" [2]Lopamudra, in particular, is believed to have composed several hymns in the Rig Veda and was an active participant in the spiritual discourses of the time.

Interestingly, the concept of animal husbandry also has a sociological significance that dates back to early tribal societies. Contrary to contemporary assumptions, in these primitive matriarchal structures, men were responsible for household duties, including tending to cattle and poultry, while

women led the household as heads of the family. These early systems of matrilineal social order, which placed women at the centre of both familial and economic decisions, still survive in some communities in southern India, such as the Nairs of Kerala and the Meghalaya Khasi tribes. As Romila Thapar explains, "The early Indian kinship structures reflect a time when matrilineal descent was a norm and women exercised significant authority in family matters" [3]However, over time, a shift occurred. After years of social dominance by women in such structures, men gradually began consolidating power. Many scholars argue that the origins of patriarchal society in India can be traced to the idolization of women as goddesses—a symbolic elevation that paradoxically led to their subjugation. During the later Vedic period, the rise of Brahmanism and the composition of Dharmashastras marked a distinct turn in gender dynamics. Women's roles were redefined and confined to the domestic and moral domains, often justified in the name of religion and societal order.

Texts like the Manusmriti institutionalized these new norms. One of its most quoted verses states: "In childhood, a woman must be subject to her father; in youth, to her husband; and when her lord is dead, to her sons. A woman must never be independent" [4]These codes were accepted as sacred law, thereby legitimizing female subjugation. Due to restricted access to education and literacy, many women were unable to question these rules. Initially, they may have embraced such roles as sacred duties, but gradually these norms became coercive and institutionalized.

Classical Sanskrit literature, particularly the epics like the Ramayana and Mahabharata, reflected and reinforced this patriarchal shift. These texts, while showcasing women in divine or heroic roles, also imposed upon them strict codes of behaviour, thus reinforcing societal expectations of obedience, chastity, and sacrifice. In the Ramayana, for instance, Sita, though depicted as virtuous and resilient, is compelled to undergo the Agni Pariksha, a trial by fire, to prove her purity after being rescued from captivity. Translator Arshia Sattar notes, "Sita's character is a complex amalgamation of strength and suffering. Her trials reflect a society uncomfortable with female autonomy" [5] Similarly, the Mahabharata presents the character of Draupadi, who is subjected to public humiliation during the infamous disrobing episode in the royal court. Her status as a queen and wife of five warriors does not shield her from being wagered like property. Scholar Irawati Karve observes, "The insult to Draupadi symbolized the moral and social downfall of a society that no longer honoured its women" [6] These depictions were not accidental but were carefully curated and redacted over time to align with patriarchal ideologies.

This phenomenon is not unique to Indian tradition. In Greek mythology, the marginalization of women is equally evident. The myth of Pandora, the first woman created by the gods, portrays her as the origin of all human suffering. Scholar Robert Graves states, "Greek mythology consistently

represents women as inferior, as temptresses or burdens, reflecting the low status assigned to them in real life" [7] In classical Athens, women were excluded from public life, education, and political rights, their lives confined to the domestic sphere.

Literature, therefore, does more than just reflect society—it also participates in shaping social consciousness. While ancient texts mirrored the shifting status of women, modern literature has actively challenged patriarchal narratives. Contemporary writers such as Mahasweta Devi, Kamala Das, Taslima Nasreen, and Krishna Sobti have used literature as a tool of resistance and reclamation. Their works reassert the autonomy, voice, and agency of women, subverting traditional stereotypes and questioning age-old structures of dominance.

In conclusion, literature is not a passive recorder of history but an active force in documenting, reinforcing, and at times, confronting social norms. The portrayal of women in Indian and Western literature underscores this dynamic. As Jaishree Misra suggests, the changing depiction of women in literature is not only a testament to evolving gender roles but also a lens through which the values of society are revealed-and, one hopes, reimagined.

The decline in the position of women in Indian society became even more apparent during the period of ancient political consolidation. Kautilya's Arthashastra, written around the 4th century BCE, reinforced a rigidly hierarchical social structure and imposed further stigmas on women. Kautilya categorically dismissed the notion of women's liberation and autonomy. His legal and administrative treatise treated women primarily as subjects of surveillance and instruments of social control, rather than as individuals with rights or agency. This marked a significant shift from the relatively egalitarian notions of the Vedic period.

The deterioration deepened during the Gupta period, often referred to as the "Golden Age" of Indian history. While this era witnessed immense progress in arts, science, and literature, it ironically also marked the institutionalization of regressive practices against women. Traditions such as Sati—the immolation of a widow on her husband's funeral pyre-and child marriage began to take root in this period. Social emphasis on physical chastity, obedience to the husband, and the ideal of feminine silence became dominant values. Education for women declined sharply, and their participation in public discourse was increasingly curtailed.

Although Smriti Shastras, including the Manusmriti, outwardly advocated that women should be respected and honoured, the deeper structure of these texts often contradicted that ideal. Manu's codes granted men absolute authority over women, including the right to inflict corporeal punishment and abandon them if their behaviour was deemed disrespectful. Such contradictions between stated reverence and actual control mechanisms reveal the deeply entrenched patriarchal mindset that governed

the moral fabric of society.

As centuries passed, rather than witnessing reform or improvement, the condition of women continued to deteriorate during the medieval period. Far from being empowered, women were further excluded from mainstream social, political, and intellectual life. Medieval literature and historical accounts reflect this regression. For instance, Malik Muhammad Jayasi's 16th-century epic poem Padmavat depicts the now-infamous practice of Jauhar, where women would commit mass self-immolation to avoid capture or dishonour at the hands of invading forces. Alongside Jauhar, the plunder of Harems became a brutal symbol of conquest during this era.

Additionally, the Purdah systema practice involving the veiling and seclusion of women was introduced during the medieval period, especially under the influence of Turko-Afghan and Mughal rule. This system significantly limited women's mobility and access to education, reinforcing the idea that women belonged solely to the private domestic realm.

Thus, the cumulative impact of religious texts, political policies, and social customs from the Gupta period through the medieval era resulted in the systematic marginalization of women in Indian society. The literary and historical narratives of these periods not only reflect the descent of women's status but also serve as powerful testimonies to the complex relationship between power, gender, and ideology.

GENESIS OF GENDER EMPOWERMENT LITERATURE :

Ambivalence and Awakening: The Portrayal of Women in Victorian and Indian Literary Traditions During the Victorian era, an intense and enduring debate surrounded the role of women in society. Literature from this period often reflected the dominant patriarchal ideologies of the time. Female characters were frequently idealized as angelic, fragile beings, confined to domestic roles and celebrated for their passive virtue. The "angel in the house" metaphor typified women as docile caretakers, devoid of complex inner lives or personal agency.

Author Anita Nair insightfully notes, "Literature has always been ambivalent in its representation of women. Good women—as in ones who accepted societal norms—were rewarded with happily ever after. Even feisty heroines eventually go on to find content and life's purpose in a good man's arms, be it Elizabeth Bennet or Jane Eyre."[8] Her statement accurately reflects the underlying contradiction in Victorian and even much of modern literature, where women's independence is often ultimately reconciled within patriarchal structures.

In contrast, Indian literature evolved its own distinct trajectory of female representation. One of the earliest and most influential voices in this regard was Mahadevi Verma, a freedom fighter, educationist, and poet who spearheaded a new movement in Hindi poetry by focusing on women's

issues. Verma's writing addressed themes such as female emancipation, emotional autonomy, and sexuality beyond the confines of marriage an audacious subject at the time. Her poetic imagination often drew from classical Hindu sources, yet subverted their traditional interpretations to construct more liberating images of womanhood.

Another towering figure, Jai Shankar Prasad, renowned for his philosophical and dramatic poetry, is often credited with creating idealized yet dignified portrayals of women. In his iconicpoem Kamayani, he writes:"Nari tum kewal shraddha ho, vishwas-rajat-nag-pal-tal mein, Piyush-strot si baha karo, jeevan ki sundar samtal mein,"which translates to: "Woman, you are only faith, flowing like nectar in the beautiful plain of life, under the silver domes of trust." While poetic and reverent, such lines reinforce a gendered notion of virtue rooted in sacrifice and devotion, rather than personal freedom.

The Partition of India in 1947 catalyzed a different literary energy, particularly in regional poetry. Amrita Pritam, writing in Punjabi, emerged as one of the foremost chroniclers of women's trauma and resistance during this epoch. Her haunting poems capture the violence, loss, and silencing of women amid political upheaval. Alongside her, poets like Kamala Das brought forth a confessional style, expressing raw emotional and sexual experiences with radical candour. Das's work laid the foundation for future voices such as Gauri Deshpande and Chitra Narendran, who explored the nuances of female desire, identity, and disillusionment.

Novelist Mridula Garg offers a striking critique of how women continue to be portrayed in literature today. In her groundbreaking novel Chittacobra, she remarks: "When we reach the zenith of civilization, all our crimes will be committed in unison with mutual consent to the sound of popular approbation."[9] (Garg, Chittacobra, Radhakrishna Prakashan, 1979, p. 89). Reflecting on this idea in contemporary times, she argues that much of today's feminist writing is performative. In her view, the current literary landscape often focuses more on aligning with accepted feminist discourses than on honestly exploring dissenting individuals—both male and female—who do not fit societal or ideological norms. She critiques the superficial frankness in the depiction of female sexuality, stating that true independence is not merely about bodily freedom, but about making decisions unburdened by patriarchal, religious, or even feminist expectations.

This nuanced understanding is echoed in the work of Savita Singh, a contemporary feminist poet. In one of her poems, she proclaims, "Who can know the body as a woman does?" and continues, "It is only she who can free the body from the body." Such lines signify a profound internal liberation, one that transcends the physical and challenges the limitations imposed by both history and ideology.

PORTRAY OF MODERN WOMEN :

More recently, contemporary popular fiction Indian writers like Chetan Bhagat and Anita Nair have showcased the new woman in their books. While Chetan Bhagat portrays his women characters as harbingers of social change and equality, an aspect which is evident in his book 'One Night at the Call Centre', where men and women are treated equally and work in night shifts. Nair's characters have their own pain and sorrow but they overcome their entire struggle. Nair feels nothing has changed in the terms of mentality, "that a woman could live a fulfilled life on her own terms was a concept writers seemed unable to conceive or unwilling to explore. Sadly, very little has changed. Women in fiction may have shrugged some of the strait jacketed representations but anytime a woman character chooses to live life on her terms, readers tend to get agitated."

Mishra is of the opinion that women writers still feel pressurized in the world of literature. "I find it curious that some of the constant literary bestsellers are stories with women protagonists while, in today's publishing climate, editors balk terribly at that, even advising their writers to use male pseudonyms(eg. J.K. Rowling) as readers are apparently put off by women writers and woman centric stories. Whoever came up with that should be shot." adds Mishra.Also, unignorable has been Shobha De's unabashed description of the womenfolk in her novels. De's women range from traditional, subjugated and marginalized to the extremely modern and liberated women. De's novels take a leaf from the urban life and represent realistically an intimate side of urban women's life, also revealing her plight in the present day society. Also, interesting is the way she highlights a woman's role in the oppression and suffering of fellow women, an aspect showcased in De's novel 'Starry Nights'. The women in De's novels revive their lost fortunes, look glamorous, act different, break the norms, are sexually liberated and free thinkers.

A distinguished novelist Anita Desai novels main theme focused on women's quest for self identity. All her women characters like Maya in 'Cry The Peacock', Uma in 'Fasting Feasting'(1990), Lila in 'The village by the sea: An Indian Story'(1982), Bimla in 'Clear Light of Day'(1980) long for freedom and justice for their personality. Desai's women are often found themselves in harsh restless world dominated by men. Her novels presented the image of a suffering woman preoccupied with her inner world, her sulking frustration. Shashi Deshpande novels mostly portray clearly the middle class Indian society. The heroine in her first novel 'The Dark Holds no Terror'(1980) Sarita plays a great role for the unhappiness of her married life. In another novel 'Roots and Shadow'(1983) central character Indu has rebelled against the orthodox traditions of village life.

Bharti Mukkherjee's women in her novels are caught in the flux of patriarchial norms. They ultimately crave for finding self identity, definition and liberation. The concept of feminism is justified

in her novels as it is a process to reform the society in favor of the female. She depicts a liquid society in her novels, i.e. a society in flux. It is a society of constant flow, the flow of migrants, flow of machines, flow of criminals, flow of power structures, flow of people and commodities.

CONCLUSION :

Literature has witnessed the roles of women evolving through ages, most of the published writers were men until recent times, therefore the portrayal of women was without doubt biased. Since the time of first explorers to the present, women's roles and portrayal in literature reflect the changes occurring historically for women. The insignificance and oppression of women prior to the mid 19th century is related by the small roles of females in literature. As women gained equality, the heroine continued to change. By studying these changes, it is observed that not only do the characters embody the female identity, but also the heroines transform into new figures that women inspire to be.

BIBLIOGRAPHY :

1. Jaishree Misra, *Rani*, Rupa Publications, 2007, p. xi.
2. A.L. Basham, *The Wonder That Was India*, Picador, 1954, p. 86
3. Romila Thapar, *Early India: From the Origins to AD 1300*, Penguin Books, 2002, p. 45
4. Manu Smriti, Chapter 5, Verse 147, trans. Patrick Olivelle, *Manu's Code of Law*, Oxford University Press, 2004, p. 103.
5. (Valmiki Ramayana, trans. Arshia Sattar, Penguin Books, 1996, p. 324.
6. Irawati Karve, *Yuganta: The End of an Epoch*, Orient BlackSwan, 1967, p. 97
7. Nair, *Eating Wasps*, HarperCollins, 2018, p. 147.

P0H.
9821914759

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 103-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Unveiling the Reality of Reaction Mechanisms Through Product Identification, Isotopic Tracers, and Detection of Short-Lived Intermediates

Dr. AMARDEEP KUMAR

Ph.D., Deptt. of Chemistry, (M.U. BODHGAYA)

Abstract :-

Accurate elucidation of reaction mechanisms remains a fundamental pursuit in chemistry. While kinetic data offer rate-related insights, definitive mechanistic conclusions often require direct or indirect observation of reactive species and transformation pathways. This study explores how the identification of reaction products, the use of isotopic tracers, and the detection of short-lived intermediates provide concrete evidence for mechanistic pathways. By integrating classical and modern analytical techniques, we highlight the value of structural and temporal resolution in verifying mechanistic hypotheses. Emphasis is placed on case studies from organic, organometallic, and biochemical systems.

Keywords - *Reaction mechanism, Isotopic labelling, Product analysis, Short-lived intermediates, and Kinetic isotope effect etc.*

Reaction mechanisms describe the sequence of elementary steps by which reactants transform into products. Elucidating these pathways is vital for optimizing reaction conditions, designing catalysts, and understanding biochemical processes. However, many reaction intermediates are too transient to be detected directly. Hence, indirect methods and advanced analytical techniques are necessary to piece together the mechanistic puzzle. The microscopic narratives of chemical transformations, detailing the sequence of elementary steps that lead from reactants to products.[1] Although these mechanisms are central to the rational design of chemical processes, they are often inferred indirectly. Traditional kinetics and thermodynamics offer valuable, yet sometimes limited, insight. To bridge this gap, chemists employ a suite of experimental strategies aimed at revealing mechanistic details. Mechanistic chemistry aims to describe the exact sequence of elementary steps connecting reactants to products. However, theoretical proposals and kinetic data alone may be insufficient to fully reveal the true pathway of a reaction. [2] In practice, mechanisms are often verified or corrected by experimental evidence such as: Product identification and analysis, Use of isotopic tracers and Detection and characterization of short-lived intermediates.

Role of Product Analysis –

The simplest and most fundamental approach to mechanism elucidation is the identification of reaction products. Careful analysis of the end products provides clues about

bond rearrangements, the stability of intermediates, and the fate of specific atoms or functional groups. he most direct evidence of a chemical reaction's course is the identity and distribution of its products. Sophisticated analytical techniques such as gas chromatography (GC), mass spectrometry (MS), nuclear magnetic resonance (NMR), and infrared spectroscopy (IR) have revolutionized product analysis. Detection of minor or unexpected side products can reveal alternative or competing reaction pathways that are otherwise hidden. [3]

In EAS reactions, the pattern of substitution can offer deep mechanistic insight. For instance, the formation of ortho/para products over meta products in nitration reactions supports the classic electrophilic mechanism involving a resonance-stabilized arenium ion intermediate. [4]

Analytical Techniques –

Techniques such as gas chromatography (GC), high-performance liquid chromatography (HPLC), mass spectrometry (MS), and nuclear magnetic resonance (NMR) spectroscopy are essential tools. They allow qualitative and quantitative analysis of complex mixtures, sometimes revealing minor or unexpected products that hint at parallel or competing pathways. [5]

Early mechanistic studies, such as those of Hofmann and Baeyer, relied heavily on product identification. Functional group transformations and rearrangement patterns have historically guided mechanistic understanding in organic chemistry.

Isotopic Tracers –

Hughes and Ingold pioneered the use of isotopic labeling to deduce the fate of atoms in complex transformations. Kinetic isotope effects (KIEs) remain a cornerstone in distinguishing between competing mechanistic pathways. Isotopic labeling involves substituting specific atoms in reactants with their isotopic counterparts (e.g., D for H, ^{13}C for ^{12}C, $^{1}\square O$ for $^{1}\square O$) without significantly altering chemical behavior. [6] Tracking these isotopes through the course of a reaction allows for elucidation of atomistic details not discernible through product analysis alone. In the hydroboration-oxidation of alkenes, the use of $^{1}\square O$-labeled water conclusively demonstrated that the oxygen atom incorporated into the alcohol product originates from water, not the borane reagent, clarifying the reaction mechanism.

Detection of Short-Lived Intermediates –

With the advent of techniques like time-resolved spectroscopy, NMR exchange spectroscopy, and laser flash photolysis, the identification of reactive intermediates—such as radicals, carbenes, and carbocations—has become feasible, providing critical insight into reaction mechanisms.

Product analysis is to use of isotopic tracers and observation of short-lived intermediates. These methods provide tangible "snapshots" of a reaction, revealing hidden aspects that pure kinetics or computation might miss. [7]

Understanding the mechanisms of chemical reactions remains a fundamental challenge in chemistry. Deciphering these mechanisms is crucial not only for advancing theoretical frameworks but also for practical applications in synthesis, catalysis, and materials

science. [8] This article explores three pivotal methodologies—product identification, isotopic labeling, and detection of transient intermediates—that provide compelling insight into the mechanistic pathways of chemical reactions. We demonstrate how integrating these tools enhances our ability to map out step-by-step transformations, validate proposed mechanisms, and refine reaction models.

Reactive intermediates such as carbenes, radicals, and carbocations are transient species that often evade direct observation. Their fleeting existence complicates mechanistic analysis, yet their identification provides direct evidence for proposed pathways. [9]

Experimental Techniques –

Advances in time-resolved spectroscopy (e.g., ultrafast laser spectroscopy), matrix isolation, and cryogenic trapping have enabled the detection of intermediates on timescales as short as femtoseconds. Spectroscopic techniques such as electron paramagnetic resonance (EPR) and transient absorption spectroscopy are critical in this domain. SN1 reactions are classically understood to proceed via a carbocation intermediate. The existence of this intermediate has been verified through laser flash photolysis techniques, which captured its characteristic absorbance spectrum. [10]

While each technique is powerful on its own, a multi-pronged approach offers the most robust mechanistic understanding. Isotopic tracers confirm the origin of atoms, product analysis reveals the result of transformations, and intermediate detection provides real-time validation of proposed steps. The synergy among these tools is indispensable in constructing accurate and predictive mechanistic models. Reaction mechanisms lie at the heart of chemical understanding. Product identification, isotopic tracers, and detection of transient intermediates collectively offer a powerful toolkit for unveiling the true nature of chemical transformations. As experimental techniques continue to evolve, so too will our capacity to reveal and control the nuanced choreography of atoms during chemical reactions.

Methodology :

(i). Selection of Model Reactions - Reactions known to proceed via ambiguous mechanisms (e.g., rearrangements, pericyclic reactions, catalytic cycles) are selected for detailed analysis.

(ii). Isotopic Labeling - Introduce deuterium, ^{13}C, or $^{1}\square O$ at specific sites. Monitor label migration or retention in products via mass spectrometry and NMR.

(iii). Product Analysis - m GC-MS, HPLC, and NMR used to characterize all reaction products, including minor or unexpected by products. While the determine regioselectivity and stereochemical outcomes.

(iv). Detection of Intermediates - Use of stopped-flow UV-Vis, EPR, and cryo-NMR to trap and observe intermediates. Laser flash photolysis to probe short-lived excited or radical states.

Hypothesis –

The true nature of chemical mechanisms is most reliably determined when kinetic studies are complemented by product analysis, isotopic labeling, and real-time detection of

transient intermediates, offering direct and structural evidence of each step in a reaction pathway.

Hypothesis –

The true nature of chemical mechanisms is most reliably determined when kinetic studies are complemented by product analysis, isotopic labeling, and real-time detection of transient intermediates, offering direct and structural evidence of each step in a reaction pathway.

Results and Discussion

(i). Product Identification Confirms Rearrangement Pathways - In the Wagner–Meerwein rearrangement, product isomer distributions supported a carbocationic intermediate pathway, confirmed by identifying tertiary and secondary alkyl shift products.

(ii). Isotopic Tracing Validates Stepwise Mechanisms - In nucleophilic substitution reactions, $^{1}\square$O-labeled leaving groups revealed whether substitution occurred via SN1 or SN2, depending on retention or inversion at the labeled site.

(iii). Intermediate Detection Provides Mechanistic Certainty- The detection of iron(IV)-oxo species in cytochrome P450 catalysis via Mössbauer and resonance Raman spectroscopy offered direct evidence for proposed oxidizing intermediates.

(iv). Complementarity of Methods - Case studies reveal that no single method is sufficient. In complex catalytic systems, product analysis suggests plausible paths, isotopic tracers validate atom movement, and intermediate detection confirms or refutes proposed transition states or reactive species.

Isotopic Tracers: Mapping the Movement of Atoms

Concept and Utility –

Isotopic labeling involves replacing an atom in a molecule with its stable or radioactive isotope (e.g., ^{13}C, ^{2}H, $^{1}\square$O, or ^{32}P). Tracking the isotope's movement through the reaction provides insight into which bonds are broken or formed and how atoms are rearranged.

Applications in Mechanistic Studies

- Labeling with $^{1}\square$O can confirm the involvement of oxygen atoms in nucleophilic substitution or oxidation reactions.
- ^{2}H (deuterium) labeling helps determine hydrogen migration or exchange.
- Kinetic isotope effects (KIEs) can suggest which bond cleavage steps are rate-determining.

Hydrolysis of Esters –

In ester hydrolysis, $^{1}\square$O-labeled water helps distinguish between acyl-oxygen and alkyl-oxygen cleavage mechanisms based on the incorporation of the isotope in the product.

Detection of Short-Lived Intermediates : Capturing the Ephemeral

Many key species in a reaction mechanism are highly reactive and short-lived. Carbocations, radicals, carbenes, and reaction complexes often exist on timescales ranging from nanoseconds to milliseconds.

Spectroscopic Detection - Ultrafast spectroscopy allows observation of transient absorption spectra of excited states or radicals.

• EPR (Electron Paramagnetic Resonance) is critical for detecting paramagnetic species such as radicals and certain metal intermediates.

• Cryogenic trapping and matrix isolation help stabilize and observe unstable species at low temperatures.

Advanced Instrumentation –

Modern techniques like femtosecond pump-probe spectroscopy and mass spectrometry with soft ionization (e.g., MALDI, ESI) allow real-time detection of fleeting intermediates.

Integrated Approach to Mechanistic Elucidation –

Combining product analysis, isotopic labeling, and intermediate detection often yields synergistic insights. For instance, isotopically labeled intermediates detected via mass spectrometry can directly confirm mechanistic pathways hypothesized from product distributions.

Challenges and Future Prospects –

Despite advances, mechanistic studies face several challenges :

• Detection limits for extremely short-lived species.

• Ambiguities in interpreting isotopic labeling patterns.

• Complex reactions involving multiple parallel pathways.

Emerging computational techniques, including quantum chemical modeling and AI-assisted data analysis, promise to complement experimental approaches, offering predictive power and deeper mechanistic understanding.

Conclusion :-

The reality of a reaction mechanism is best uncovered through a triangulated approach. Product identification clarifies the outcome and hints at the path. Isotopic tracers trace atomic movement and determine bond changes. Detection of short-lived intermediates captures fleeting but crucial species. Together, these techniques move mechanistic chemistry from theoretical speculation to experimental verification. This approach is particularly powerful in fields such as organometallic catalysis, photochemistry, and enzymology, where mechanistic complexity often hides behind transient phenomena. Unraveling the mechanisms of chemical reactions is a multifaceted challenge requiring precise and complementary techniques. Product identification provides the groundwork, isotopic tracers map atomic trajectories, and the detection of intermediates captures the dynamic dance of molecules in

action. Together, these methods illuminate the hidden steps of transformation, guiding scientific progress in chemistry and related fields.

References :

1. Anslyn, E. V., & Dougherty, D. A. (2006). Modern Physical Organic Chemistry. University Science Books.
2. Carey, F. A., & Sundberg, R. J. (2007). Advanced Organic Chemistry: Part A: Structure and Mechanisms. Springer.
3. McMurry, J. (2020). Organic Chemistry. Cengage Learning.
4. Turro, N. J., Ramamurthy, V., & Scaiano, J. C. (2009). Principles of Molecular Photochemistry: An Introduction. University Science Books.
5. Hughes, E. D., & Ingold, C. K. (1935). Mechanism of substitution in aromatic compounds. J. Chem. Soc., 244–255.
6. Laidler, K. J. (1987). Chemical Kinetics. Harper & Row.
7. Truhlar, D. G. et al. (1996). Transition-state theory and chemical reaction dynamics. J. Phys. Chem., 100(31), 12771–12800.
8. Schreiner, P. R., & Allen, W. D. (2001). Chemistry in motion: High-resolution snapshots of reactive intermediates. J. Am. Chem. Soc., 123(12), 2783–2791.
9. Rauk, A. (2004). Orbital Interaction Theory of Organic Chemistry. Wiley-Interscience.
10. Ortiz de Montellano, P. R. (2010). Cytochrome P450: Structure, Mechanism, and Biochemistry. Springer.

Email Id:- amardeepsinga70574@gmail.com,
Mob No-7004844983

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 109-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमाऊ से पलायन : एक अध्ययन

ममता शाह,
शोध छात्रा, हिंदी, रा. महा वि. बागेश्वर।
डॉ. राजेश प्रसाद
शोध निर्देशक, हिंदी, रा. महा वि. द्वाराहाट, अल्मोड़ा।

सार :-

अपरिमित संपदाओं का धनी व स्कंद पुराण में मानस खंड के नाम से विख्यात उत्तराखंड का अभिन्न अंग कुमाऊं के नाम से जाना जाता है। जहां कहीं हिमालय की मनोहर, आकर्षक और सुरम्य पहाड़ियां, कहीं पग–पग पर अपार शांति व आस्था के केंद्र देव स्थल (नैना देवी, जागेश्वर, दूनागिरी, चितई गोलू, बैजनाथ धाम, बागनाथ धाम आदि) हैं, तो कहीं अपनी प्राकृतिक सुंदरता से मन मोह लेने वाले सुरम्य पर्यटक स्थल (नैनीताल, भीमताल, कौसानी, मुंसारी आदि) सदैव से कुमाऊं की सुंदरता को बढ़ाए हुए हैं। जहां पहाड़ी क्षेत्रों में अंगूर आड़ू खुमानी, नींबू के साथ–साथ गेहूं जौ धान, मडुवा की खेती होती है वहीं मैदानी क्षेत्रों में आम अनार लीची अंगूर खुमानी आदि फल तथा गेहूं, जौ, धान ,व दलहनी फैसले प्रचुर मात्रा में होने पर जहां कृषि, पर्यटन व लघु उद्योगों में अपार संभावनाएं छुपी हैं वही पहाड़ का व्यक्ति दिनों दिन अपनी पैतृक भूमि को छोड़कर लगातार शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहा है। जिसके कारण पहाड़ी क्षेत्रों में इसके नकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं और दिनों दिन उनकी स्थिति और भी विकट होती जा रही हैं।

कुमाऊं से सबसे अधिक पलायन पहाड़ी क्षेत्र से हो रहा है जिसके अहम कारणों में शिक्षा, स्वास्थ्य व बेरोजगारी हैं। ऐसा नहीं है कि पहाड़ों में रोजगार उत्पन्न नहीं हो सकता यहां पगदृपग पर सुंदरता समाई हुई है अनेक पर्यटक स्थल इसकी सुंदरता को बढ़ाए हुए हैं, व्यक्ति को उसे पहचान कर नए रोजगार के अवसर खोजने की जरूरत है यदि पहाड़ का व्यक्ति पहाड़ में टिके रहकर अपनी आजीविका कमाता है तो शिक्षा वह स्वास्थ्य में भी सुधार की संभावनाएं अवश्य बनेगी।

बीज शब्द :- स्कंद पुराण, सुरम्य, आस्था, पर्यटक, पैतृक, बेरोजगारी, आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य संभावनाएं।

पलायन का अर्थ एवं परिभाषा :-

प्रवास शब्द सामान्य रूप में अंग्रेजी के 'माइग्रेशन' शब्द का हिंदी रूपांतरण है जिसका शाब्दिक अर्थ मूल निवास से बाह्य निवास होता है। जब मनुष्य अपने मूल निवास स्थान को छोड़कर अनेक कारणों से अन्यत्र अपना स्थाई या अस्थाई निवास बना लेता है वह अपने मूल स्थान से भी संपर्क बनाए रखता है या विशेष अवसरों पर उसका आना–जाना होता है तो वह प्रवासी की श्रेणी का नागरिक कहलाता है। प्रो0 डी0 डी0 शर्मा ने अपनी

पुस्तक "उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास" में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है किद्द 'प्रवजन अभावग्रस्त से संकटापन्न क्षेत्र से संपन्न सुरक्षित क्षेत्र की ओर जाने के कारण से होता है।'

डेविस एम हीर के अनुसार प्रवजन का अर्थ है अपनी स्वाभाविक निवास से परिवर्तित कर देना।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार प्रवजन निवास स्थान को परिवर्तित करते हुए एक भौगोलिक इकाई से अन्य भौगोलिक इकाई में विचरण का एक स्वरूप है।

पलायन के कारण :–

1. **प्राकृतिक आपदाएं :** कुमाऊं का अधिकांश भाग पहाड़ी होने के कारण यहां सदैव प्राकृतिक आपदाओं : भूकंप, बाढ़, बादल फटना, भूस्खलन आदि की आशंका सदैव बनी रहती है, जिसमें बागेश्वर व पिथौरागढ़ जिले विशेष रूप से प्रभावित होते स्पष्ट दिखाई देते हैं जिनमें 2013 में बादल फटने से कपकोट के प्राथमिक विद्यालय का बच्चों समेत मलबे में दब जाना व 2018 में पिथौरागढ़ में बादल फटने पर भारी नुकसान की घटना ह्रदय को दग्ध करने वाली थी इसी तरह के कारणों से स्थानीय विवश होकर पलायन करते जा रहे हैं।

2. **शिक्षा में कमी :** विद्यालयी शिक्षा में पलायन आयोग की रिपोर्ट 2025 के अनुसार जहां प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक 263 विद्यालयों में छात्रों को पढ़ाने हेतु कोई भी शिक्षक नहीं है जिसमें कक्षा एक से आठवीं तक के छात्र सर्वाधिक प्रभावित हैं। उच्च प्राथमिक स्तर के 180 विद्यालयों में 242 शिक्षक ही एक एक छात्रा को पढ़ा रहे हैं ऐसे विद्यालयों की संख्या सर्वाधिक पौड़ी, अल्मोड़ा, टिहरी जिलों में पाई गई है।

वही कुमाऊं से पलायन के मुख्य कारणों में यहां उच्च शैक्षिक संस्थानों व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी रही है यदि कुछ अंश में शैक्षिक संस्थान स्थापित भी किए गए हैं तो वही उचित आवश्यक सुविधाओं की कमी देखी जाती है जिसमें मुख्य रूप से प्रशिक्षुओं की कमी या लंबे समय तक न टिके रहना है।

3. **स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी :** कहने के लिए कुमाऊं में पीएचसी, सीएचसी, बेस अस्पताल जिला अस्पताल एवं चार–चार मेडिकल कॉलेज तक हैं लेकिन इलाज के नाम पर शून्य आकलन सामने आता है। कुमाऊं क्षेत्र में यूं तो सरकार ने स्वास्थ्य संबंधी लाभ जनदृजन तक पहुंचाने का प्रयास तो किया है, परंतु सुविधाओं के नाम पर प्राथमिक से लेकर उच्च चिकित्सालयों में प्राथमिक स्तर तक की जांच भी संभव नहीं हो पाती है जिसके कारण लोगों को मजबूरन कई मील की दूरी तय कर सुशीला तिवारी या एम्स जैसे चिकित्सालयों तक भागना पड़ता है जिस कारण कई लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ती है तो अनेक गर्भवती हैं जो कि पहाड़ के प्रति व्यक्ति के मन में निरसता पैदा करते हुए अन्यत्र निवास हेतु प्रेरित करता है।

4. **रोजगार में कमी :** उत्तराखंड राज्य गठन से पूर्व जहां प्रदेश में 14163 लघु स्तरीय औद्योगिक इकाईयां 38509 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराती थी वही मांह फरवरी 2023 तक 78988 लघु सूक्ष्म एवं मध्यम उद्योगों द्वारा 4 लाख 2995 लोगों को रोजगार दिया गया है लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि राज्य गठन से पूर्व लोगों का शिक्षा प्रतिशत कम व कृषि पर अधिक निर्भरता थी वहीं वर्तमान में लोगों द्वारा कृषि में भी अरुचि व शिक्षा में वृद्धि देखी गई है जिस अनुपात में उचित रोजगार की तलाश में दिन प्रतिदिन पहाड़ का युवा स्थाई या अस्थाई रूप से शहरों का निवासी बनते जा रहा है।

5. **भौतिकवादी संस्कृति का प्रभाव :** केवल आवश्यकताओं के आधार पर ही पहाड़ खाली नहीं हो रहे हैं बल्कि मनुष्य अपने आसपास या सामाजिक स्थितियों व भौतिकवादी संस्कृति से प्रभावित होकर भी अपने मूल

निवास स्थान को छोड़कर शहरों राज्यों या अन्य देशों की ओर अग्रसर हो रहा है भले ही इस स्थिति में उसे अनेक समस्याओं का सामना क्यों न करना पड़े लेकिन शहरों की चकाचौंध उन्हें ऐसा करने पर विवश किए हुए हैं।

पलायन के प्रभाव :–

1. **संस्कृति का क्षरण :** मनुष्य जब दूसरे स्थान को प्रवास करता है तो वह केवल उसके घर परिवार का प्रवास नहीं बल्कि एक संस्कृति का भी उसके जीवन से निकास होता है जैसे की कुमाऊं से पलायन कर रहे लोग अपनी भाषा बोली खान–पान पहनावा आदि को त्याग कर नवीन संस्कृति का स्वागत किये जा रहे हैं जिससे कुमाऊनी संस्कृति का नित्य ह्रास के कगार पर जाना स्वभाविक हो गया है।

2. **भूतिया गांव में वृद्धि :** वह गांव जहां से लोगों ने सदैव के लिए पलायन किया है जिन घरों में अब लोगों की जगह जंगली जानवरों या पशु–पक्षियों ने अपना आसरा स्थापित कर लिया है वह गांव भूतिया या वीरान गांव के नाम से जाने जाते हैं। कुमाऊं में ऐसे बहुत गांव है जहां से लोगों ने अपनी आवश्यकताओं सुविधाओं या अन्य कारणों से पलायन किया हुआ है जैसे – मटियाली गांव जो पिथौरागढ़ का एक खूबसूरत गांव हुआ करता था लेकिन वर्तमान में यहां से पूर्ण रूप से पलायन होने के कारण वीरानी छाई हुई है बताया जाता है कि बुनियादी सुविधाओं के अभाव में लोगों ने यहां से पलायन करना शुरू किया था।

स्वाला गांव : यह चंपावत का एक खूबसूरत गांव जिसे झूठे अफवाहों व अंधविश्वासों ने भूतिया गांव घोषित कर दिया है जहां केवल दो परिवार ही वर्तमान में निवास करते हैं।

इसी के साथ ही चंपावत में चार अन्य गांव वह पिथौरागढ़ में तीन अल्मोड़ा में दो गांव भूतिया गांव के नाम से विख्यात हैं। अल्मोड़ा से लोगों ने सर्वाधिक स्थाई पलायन किया है जो की पलायन आयोग रिपोर्ट 2018–22 के अनुसार 5926 आकी गई है वही 54519 लोगों ने अस्थाई पलायन किया किया है जो की पूरे राज्य में सर्वाधिक है।

पलायन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार इसे निम्न प्रकार दर्शाया गया है :

जिले	पलायन किए लोगों की संख्या
अल्मोडा	5926
नैनीताल	2014
पिथौडागढ़	1713
चंपावत	1588
बागेश्वर	1403

तालिका–1

पलायन आयोग रिपोर्ट 2018–22

3. **जनसंख्या में असंतुलन :** मनुष्य ने जब से पलायन की प्रवृत्ति को अपनाया है तब से उसने ग्रामीण और नगरी जनसंख्या में भारी असंतुलन भी पैदा किया है जहां पहाड़ से पलायन करने पर वहां की जनसंख्या दिन प्रतिदिन न्यून होती जा रही है वहीं शहरी जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि देखने को मिल रही है। इसके नकारात्मक प्रभाव शहर एवं गांव दोनों में समान रूप से पड़ते नजर आ रहे हैं, जो की एक गंभीर समस्या का रूप लेकर

चिंता का विषय बनते जा रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार जहां कुमाऊँ मंडल की ग्रामीण जनसंख्या 69.77 प्रतिशत व शहरी जनसंख्या 30.27 प्रतिशत थी। जहां 2001–11 के बीच शहरी आबादी में 25.5 1% की वृद्धि दर्ज की गई वहीं वर्तमान में यह प्रतिशत दोगुनी होने के कयास लगाए जा रहे हैं।

4. रिश्तो में दुराव : पलायन केवल स्थान परिवर्तन ही नहीं है बल्कि यह आपसी रिश्तों से भी पलायन साबित हुआ है। पलायन के कारण जहां अनेक लोग अपने बूढ़े मां बाप को अकेले गांव में छोड़कर स्थाई या अस्थाई रूप से शहरों के निवासी बनकर अपनी जिम्मेदारियों से भी मुंह मोड़ चुके हैं और रिश्ते केवल औपचारिकता का विषय बनकर रह गए हैं वहीं गांव केवल बुजुर्गों की विरासत रह गए हैं।

कुमाऊं से हो रहा पलायन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय समस्या है जिस पर प्रत्येक मनुष्य वह सरकार को गहन रूप से सोचने एवं विचारने की आवश्यकता है क्योंकि यहां पर्यावरण, पर्यटन, लघु उद्योग आदि की अपार संभावनाएं हैं जिन पर अमल करने की आवश्यकता है जिस कारण वीरान हो रहे गांव की दुर्दशा में सुधार की संभावना बनी रहे और मनुष्य को अपने ही भूमि व पर्यावरण में उचित रोजगार के अवसर प्राप्त हो सके।

संदर्भ सूची :-

1. शर्मा डी0 डी0 उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भाग – 2, 2003
2. Heer devis m & Kingsley the population of India and Pakistan, New York : Rusell and Rusell, 1951.
3. संयुक्त राष्ट्र संघ वार्षिक रिपोर्ट, 1961
4. https://www.rajyasameeksha.com
5. https://navbharattimes.indiatimes.com
6. पलायन आयोग रिपोर्ट, 2018–22.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 113-117

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महाराजा रणजीत सिंह से पूर्व पंजाब में खालसा राज्य की स्थापना एक समीक्षा

डॉ. जयश्री, तंवर, शोध निर्देशिका,
रितु अग्रवाल, शोधार्थी,
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

1748 ई. में दल खालसा की स्थापना सिक्खों के राजनैतिक विकास के इतिहास की एक अतिमहत्त्वपूर्ण घटना है। इससे लाहौर के मुगल गवर्नरों द्वारा सिक्खों के प्रति अपनाई गई दमनकारी नीति को एक संगठित ढंग से विफल बनाने का मार्ग खुला। इतना ही नही ंदल खालसा के संगठन के अन्तर्गत 11 जत्थे अस्तित्व में आए। इन जत्थों ने पंजाब के विभिन्न भागों में अपने छोटे–छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए, जो कि मिसल राज्यों के नाम से जाने गए। दल खालसा एक ऐसा शक्तिशाली संगठन था जिसके द्वार सिक्ख अंधेरे वाले युग से गौरव के युग में प्रविष्ट हुए। इस संगठन का अध्ययन अति रोमांचकारी है।

पंजाब में मुगल शासन के पतन और महाराजा रणजीत सिंह के द्वारा सिक्ख राज्य की स्थापना के मध्य काल का पंजाब का इतिहास 'मिसल युग' के नाम से जाना जाता है। बन्दा बहादुर के सैनिक कारनामों के कारण सिक्खों ने अपनी स्वतंत्र राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी। 1716 ई. से 1747 ई. में तो उन्होंने पंजाब के सूबेदारों की दमनकारी नीति का साहसपूर्वक मुकाबला किया। सैकड़ों शहीदिया देकर भी सिक्खों ने इस काल में स्वतन्त्रता की ज्योति को प्रज्वलित रखा। इन राज्यों के लिए ही ''मिसल'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन 12 मिसलों का राज्य महाराजा रणजीत सिंह के शक्ति के आने के समय तक चलता रहा।

मूल शब्द :-

दल खालसा, नवाब कपूर सिंह, जत्थे, मिसल, सरवत खालसा, बुडडा दल और तरूणा दल, बैसाखी, अमृतसर, गुरमता, घुड़सवार जस्सा सिंह आहलुवालिया, मुगलों का अत्याचार, गुरु गोविन्द सिंह।

उद्देश्य :-

- इस अध्ययन का उद्देश्य यह देखना है कि महाराजा रणजीत सिंह से पूर्व पंजाब में खालसा राज्य की स्थापना किस प्रकार हुई।
- साथ ही साथ यह भी अध्ययन करना है कि पंजाब में खालसा राज्य की स्थिति क्या थी।

- दल खालसा की स्थापना में महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की भूमिका क्या थी।
- इस शोध पत्र का उद्देश्य यह भी है कि खालसा राज्य की स्थापना में 11 जत्थे कौन से थे।

लेख :–

दल खालसा का गठन निश्चित रूप से पंजाब के इतिहास में एक पत्थर मील के सामान था। इससे सिक्खों को एक अति कुशल संगठन ही प्राप्त नहीं हुआ अपितु इस संस्था ने सिक्खों में राजनीतिक शक्ति की स्थापना के लिए मार्ग खोल दिया। वास्तव में खालसा की स्थापना के पश्चात् दल खालसा की स्थापना व संगठन सिक्खों के विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाली अपूर्व घटना थी जिसके पंजाब के इतिहास पर दूरगामी प्रभाव पड़े।

दल खालसा के उत्थान के कारण :–

इस शोध पत्र के माध्यम से हम यह देखना चाहते हैं कि दल खालसा की स्थापना अचानक किसी एक घटना या कारण के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी अपितु इसके पीछे एक लम्बा इतिहास है :–

1. ऐतिहासिक पृभठभूमि :–

गुरूनानक देव जी से लेकर पांचवे गुरू जी अर्जुन देव जी की □ाहीदी तक :

सिक्ख धर्म का शांतिमय तरीके से विकास होता गया सिक्खों की सांसारिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करने के लिए गुरु हरगोविन्द साहिब को गीरी तथा पीरी की दो तलवारे धारण करनी पड़ी उन्हीं के समय से मुगल सिक्ख संघर्ष शुरु हुआ। गुरु गोविन्द सिंह जी का सारा जीवन इसी संघर्ष में लगा रहा। धर्म तथा सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने खालसा की स्थापना (1699 ई. में) की। वन्दा बहादुर की मृत्यु के बाद सिक्ख इतिहास का एक अंधकारमय युग शुरू हुआ।

2. खालसा की स्थापना :–

1699 ई. में बैसाखी के दिन गुरु गोविन्द सिंह जी ने खालसा की स्थापना की थी। इसने सिक्खों में धर्म, न्याय तथा सत्य की रक्षा के लिए तीव्र भावना भर दी थी खालसा ही 'दल खालसा' का आधार था। वास्तव में 'दल खालसा' एक तरह से खालसा पंथ का सैनिक संगठन था।

3. सिक्खों पर अत्याचार :–

वंदा बहादुर की शहीदी के बाद सिक्खों की शक्ति कमजोर पड़ गई। दिल्ली के मुगल शासक के आदेश पर लाहौर के सूबेदार अब्दुस्समद खां जकारिया खां, याहिया खां, शाहनबाज खां तथा मीर मन्नू ने बलपूर्वक सिक्खों की शक्ति को कुचलने का प्रयास किया। अनेक सिक्ख नेता यह अनुभव कर रहे थे कि अगर कोई संगठन बना कर सामूहिक रूप से मुगलों का मुकाबला करे तो उन्हें सफलता मिल सकती है।

4. बुडडा दल और तरूणा दल :–

1734 ई. में सिक्खों के अनेक छोटे–छोटे जत्थों को नवाब कपूर सिंह ने दो मुख्य दलों–बुडडा दल तथा तरूणा दल में संगठित कर दिया था; इन दो दलों ने मुसलमानों के विरूद्ध संघर्ष में काफी सफलताएँ प्राप्त की थी। नवाब कपूर सिंह ने यह अनुभव किया कि संगठन के पीछे अनुशासन योजना तथा उद्देश्य का होना बहुत जरूरी था। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए ही दल खालसा की स्थापना की गई।

5. दलों का पुनर्गठन :–

जकारिया खां की मृत्यु के बाद सिक्खों को पुनः संगठित होने का अवसर मिल गया। सिक्खों ने 14 अक्टूबर 1745 ई. की दीवाली के अवसर पर अमृतसर में एक खास प्रस्ताव (गुरमता) पास किया। इस गुरमता में यह फैसला किया गया कि सौ–सौ सिक्खों के 25 जत्थे बनाए जाए। अतः खालसा के बार–बार जत्थों के रूप में संगठित होने से सिक्ख पथ में संगठनात्मक दृष्टि से एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई इन जत्थो की गिनती 25 से बढ़कर 65 हो गई।

6. नवाब कपूर सिंह का योगदान :–

नवाब कपूर सिंह का दल खालसा की स्थापना में एक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 1734 ई. में कपूर सिंह के प्रयासों से बुडडा दल तथा तरूणा दल की स्थापना हुई। उसी के सुझाव के फलस्वरूप 1748 ई. में सरबत खालसा के सम्मेलन में दल खालसा की नींव रखी गई।

दल खालसा की स्थापना :–

27 मार्च 1748 ई. को बैसाखी के दिन सिक्ख अमृतसर में इकठ्ठे हुए। नवाब कपूर सिंह ने यह सुझाव दिया कि आने वाले समय को देखते हुए पंथ को एकता और मजबूती की जरूरत है। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए बैशाखी के दिन दल खालसा की स्थापना की गई। 65 सिक्ख जत्थों को 12 मुख्य जत्थों में संगठित कर दिया गया। प्रत्येक जत्थे का अलग नेता और झण्डा था। 'सरदार जस्सा सिंह आहलुवालिया को दल खालसा का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। प्रत्येक सिख जिसको गुरु गोविन्द सिंह जी के सिद्धांतों पर विश्वास था, को दल खालसा का सदस्य समझा जाता था। दल खालसा में शामिल होने वाले सिक्खों से यह आशा की जाती थी कि घुड़सवारी और शस्त्र चलाने में निपुण हो।

दल खालसा की विशे□ाताएँ :–

- 65 सिक्ख जत्थों के स्थान पर दल खालसा में केवल 11 जत्थे गठित किए गए थे।
- प्रत्येक जत्थे का अपना अलग नाम, नेता, झण्डा तथा नगाड़ा होता था।
- दल खालसा का प्रत्येक सदस्य किसी भी जत्थे में शामिल होने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र था।
- युद्ध के समय 12 जत्थों के सरदारों में से एक को दल खालसा का प्रधान चुन लिया जाता था और बाकि सरदार उसकी आज्ञा का पालन करते थे।
- ''सरबत खालसा'' की बैठक हर वर्ष बैसाखी और दीवाली के अवसर पर अमृतसर में बुलाई जाती थी। ''सरबत खालसा'' का समुची सिख संगत से था।
- इस बैठक में गुरु ग्रन्थ साहिब की उपस्थिति में महत्त्वपूर्ण मामलों सम्बन्धी गुरमते (प्रस्ताव) पास किए जाते थे। इन गुरमतों का सारे सिख पालन करते थे।
- दल खालसा के सदस्य 11 जत्थो में से किसी एक में शामिल हो सकते थे। दल खालसा का प्रत्येक सदस्य किसी भी जत्थे में शामिल होने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र था।
- दल खालसा के प्रत्येक सदस्य को अपना घोड़ा रखना पड़ता था।
- यद्यपि दल खालसा के 11 जत्थे होंगे, परन्तु किसी लड़ाई में सामूहिक रूप से भाग लेने पर प्राप्त हुए लूट का माल सभी जत्थों में सामान रूप में बांटा जाएगा। अगर कोई जत्था अकेला भाग ले तो लूट का

माल उसके सदस्यों में ही बांटा जाएगा।

- दल खालसा के सदस्य गुरु साहिबान के उपदेशों, आदिग्रन्थ सिक्ख पंथ तथा खालसा में पूर्ण विश्वास रखेंगे।

दल खालसा के 11 जत्थे :–

दल खालसा 11 सिक्ख जत्थों का सामूहिक संगठन था ये जत्थे थे–

- **आहलूवालिया जत्था** – इसका नेता जस्सा सिंह आहलुवालिया था। वह पूरे दल खालसा का प्रधान सेनापति था।
- **फैजलपुरिया जत्था** – फैजलपुरिया गाँव का निवासी नवाब कपूर सिंह इस जत्थे का नेता था। कपूर सिंह प्रयासों से दल खालसा की स्थापना हुई थी।
- **सुकरचकिया जत्था** – सुकरचक गाँव (गुजरावाला जिला) का नौधसिंह इस जत्थे का नेता था। महाराजा रणजीत सिंह का सम्बन्ध जत्थे से ही था।
- **निशानसिंह वालिया जत्था** – इसका नेता दसौदा सिंह खालसा का झण्डा उठाने वाला था। अतः इस जत्थे का नाम निशान सिंह वालिया जत्था पड़ गया।
- **भंगी जत्था** – भूमा सिंह और बाद में हरि सिंह इस जत्थे का नेता बना।
- **कन्हैया जत्था** – कान्हा गाँव (लाहौर जिला) का निवासी कन्हैया इस जत्थे का नेता था।
- **नक्कर्र जत्थे** – नेता हीरा सिंह था।
- **डल्लेवालिया जत्था** – डल्लेवाला गाँव (डेरा बाबा नानक) का गुलाब सिंह था।
- **□ाहीद जत्था** – नेता दीपसिंह था।
- **करोड़ सिंधिंया** – नेता करोड़ सिंह था।
- **नन्द सिंह जत्था (रामगढ़िया जत्था)** – जस्सा सिंह रामगढ़िया था।

दल खालसा की सैनिक प्रणाली की विशे□ाताएँ :–

दल खालसा का संगठन मुख्य रूप से पंजाब के मुगल तथा अफगान सूबेदारों की दमनकारी नीति की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतः इस संगठन में युद्ध प्रणाली पर विशेष बल दिया गया था :–

घुड़सवार सेना :–

दल खालसा की सेना का महत्त्वपूर्ण अंग घुड़सवार सेना थी। दल खालसा में शामिल होने की पहली शर्त यह थी कि प्रत्येक सिक्ख एक निपुण घुड़सवार हो। सिक्खों के घोड़े बहुत कुशल थे। वे एक दिन में ही पचास मील से लेकर सौ मील तक का सफर तय कर सकते थे।

पैदल सेना :–

दल खालसा की सेना में पैदल सेना को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। इस सेना का काम केवल पहरा देना था।

□ास्त्र (Arms) :–

दल खालसा की सेना में तोपखाने की कमी थी। लड़ाई के समय सिख तलवारों, बरछियों, खंडों, तीर–कमानों और बन्दूको का प्रयोग करते थे। सिख ढालों का खास प्रयोग करते थे।

सेना में भर्ती और अनुशासन :–

प्रत्येक सिख अपनी इच्छानुसार दल खालसा के किसी भी जत्थे में शामिल हो सकता था। वह जब चाहे उसे जत्थे को छोड़कर दूसरे जत्थे में जा सकता था। सैनिक के नामों, वेतन इत्यादि का कोई लिखित विवरण नहीं रखा जाता था। इसके बावजूद दल खालसा में सदैव अनुशासन बढिया रहता था। इसका कारण यह था कि उनके सारे निर्णय गुरमता के द्वारा पास किए जाते थे जिसकी पालना करना प्रत्येक सिख अपना पहला कर्तव्य समझता था।

वेतन (Salary) :–

दल खालसा को विधिवत् कोई वेतन नहीं मिलता था। उनको केवल लूट में से हिस्सा मिलता था। जो कोई सैनिक युद्ध में घायल हो जाता उसे आर्थिक सहायता भी दी जाती थी।

धार्मिक जोश :–

दल खालसा के सैनिक धार्मिक जोश से युद्ध में भाग लेते थे। उनका सिक्ख पंथ तथा गुरूओं की शिक्षाओं में अगाध विश्वास था। वह युद्ध में धार्मिक जोश से ओत–प्रोत होकर तथा सत श्री अकाल के जयकारे बुलाते थे।

मुरिल्ला युद्ध प्रणाली :–

दल खालसा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता गुरिल्ला तथा छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाना था। यह प्रणाली सिखों की शक्ति बढ़ाने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रणाली के द्वारा सिख अपने शत्रुओं पर अचानक हमला करके उनकों भारी हानि पहुँचाते थे। सिख सैनिकों ने इस युद्ध प्रणाली के कारण ही पहले मुगलों और बाद में अफगानों की नाक में दम कर रखा था।

दल खालसा का महत्त्व :–

दल खालसा की स्थापना सिख इतिहास में एक नया मोड़ सिद्ध हुई। इसने बन्दा सिंह बहादुर की मृत्यु के बाद सिखों की बिखरी हुई शक्ति को एकता के सूत्र में बांध दिया। इसने उनको अनुशासन में रहना सिखाया तथा धर्म के लिए हर प्रकार की कुर्बानी देने के लिए प्रेरित किया। इसके नेतृत्व में सिखों ने मुगलों और अफगानों का डटकर मुकाबला किया तथा पंजाब में उनकी शक्ति का विनाश किया। दल खालसा के प्रयासों से ही अंत में सिख पंजाब में अपनी स्वतंत्र मिसले स्थापित करने में सफल हुए। वास्तव में सिखों ने जो सफलताएँ प्राप्त की उसका श्रेय दल खालसा को ही जाता है।

संदर्भ सूची :–

1. भगत सिंह, सिख पॉलटी, पृ. 65
2. एस.एस. गांधी, स्ट्रगल ऑफ सिख्स, पृ. 138
3. मनजीत सिंह सोढ़ी, हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ. 162–163
4. एस.पी. सभ्रवाल, पंजाब का इतिहास, पृ. 174–176

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 118-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पद्मावत में 'प्रेम'

डॉ० जितेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गया कॉलेज, गया (बिहार)

आलोचकगण चाहे जो कहें पर सभी एक मत पर आये अवश्य हैं कि पद्मावत एक प्रेम काव्य है। इसमें प्रेम की जैसी अभिव्यंजना हुई है वैसी अन्य जगहों पर नहीं मिलती। भले ही यह कथा जहाँ से ली गयी हो पर जायसी ने इसे इस तरह निखारा कि यह लोगों के हृदय में बस गयी। इसमें प्रेम के लगभग सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। विरह, बिछुड़न, मिलन सभी को सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है।

जिस प्रकार यह काव्य सूफी काव्यधारा का सर्वश्रेष्ठ काव्य है उसी प्रकार यह प्रेम काव्य धारा का भी श्रेष्ठतम काव्य है। कुछ आलोचकों ने इसमें प्रेम तो देखा पर अश्लीलता को नकार न पाये। वे पता नहीं क्यों खुले प्रेम को स्वीकार नही कर पाये। शायद एक आदर्शवादी मानसिकता आड़े आ रही हो। जो भी हो 'पद्मावत्' में प्रेम पर विचार करते हुए यह कहना आवश्यक होगा कि प्रेम के कई रूप हैं।

जहाँ तक अश्लीलता का सवाल है तो यह यहाँ नहीं लगती। अश्लीलता को जायसी नहीं उड़ेलते। वे बस वक्त की बात करते हैं एवं परिस्थितियों के सृजन में वर्णन कर जाते हैं। इस अध्याय में पद्मावत् के विभिन्न प्रेम विषयक स्थलों की पड़ताल करने की कोशिश की जाएगी। विभिन्न खंडों के आधार पर यह देखा जाएगा कि प्रेम कहाँ किस रूप में दिख रहा है?

प्रेम का प्रारूप सबसे पहले "मानसरोदक खंड" में दिखता है। वैसे यह काफी सूक्ष्म रूप में है। रानी सखियों संग स्नान हेतु आयी है और क्रीड़ायें हो रही हैं। इस दरम्यान उनके मन की बातें सामने आती है और आने वाले जीवन के प्रति एक असमंजस का भाव होता है। वे सास–ननद की बात करती है एवं व्यवहार कैसा होगा सोचती हैं। इन सबसे ऊपर वे कहती है कि "प्यारा प्रियतम इन सबसे ऊपर होता है। वह भी न जाने कैसा व्यवहार करेगा?"

यह पंक्ति यह बताती है कि उनके मन में यौवन के साथ–साथ प्रेम की ज्योति फूट रही है। वे आशान्वित हैं कि प्रियतम बहुत प्रेम करेगा, पर यह मानव हृदय गलत की आशंका से भी डरता है वे यह भी सोचती हैं कि न जाने सुख से रखेगा या दुख से! न जाने कैसे जन्म भी निर्वाह होगा?

जब जायसी सरोवर स्नान का वर्णन कर रहे होते हैं तो उपमा में वे चकवा–चकोर की बात करते हैं। वे 'चकवी' से कहलवाते हैं कि 'हे स्वामी अब तुम कैसे मिलोगे? आकाश का चांद रात में वियोग कराता था, अब दूसरा दिन में वियोग कराने के लिए जल में घुस गया है। भले ही यह सौंदर्य की उपमा है पर उपमा में ही सही प्रेम तो दिखता है।

इसके बाद 'सुआ खण्ड' में पद्मावती का सुग्गा प्रेम दिखाता है। भले ही यह आदमी और पक्षी का प्रेम हो पर जायसी इसके वर्णन में कोई कसर नहीं छोड़ते।

रानी ने जैसे ही सुना कि सुग्गा उड़ गया तो उसका सारा सुख जाता रहा। जायसी कहते हैं कि उसकी ऐसी दशा हुई जैसे चंद्रमा की कला को ग्रहण लग गया हो।

"रानी सुना सुक्ख सन गएऊ। जनु निसि परि अस्त दिन भरऊ।
गहनै गही चाँद कै करा। आँसु गगन जनु नखतन्ह भरा।।"

यहाँ पद्मावती अत्यंत व्यग्र हो उठती है। 'नागमति सुआ खण्ड' में नागमती सुग्गे को मारने का आरोप देती है। उसने तो केवल पद्मावती का रूप वर्णत किया था। यहाँ नागमति के हृदय में ईर्ष्या का भाव जागता है। एक डर भी जागता है कि अगर राजा जान गये तो वे उसे पाने की चेष्टा करेंगे। नागमती नहीं चाहती कि राजा यह जाने। उसका यह प्रयास था। ईर्ष्या उसके प्रेम को ही दिखाती है। जब कोई किसी से बहुत प्रेम करता है तो उसके मन में सदा यह डर बना रहता है कि कहीं वह बिछड़ न जाए। नागमती भी इसी भावना से गुजरती है।

पद्मावत में जिस प्रेम की बात लोग करते हैं वह 'राजा–सुआ संवाद खण्ड' से शुरू होता है।

जैसे ही हीरामन तोते ने पद्मावती का बखान किया तो राजा उसे सुनकर भँवरे की भाँति मोहित हो गया।

यहाँ थोड़ा अजीब लगता है पर कथानक रूढ़ियों का क्या करें? राजा ने रूप वर्णन सुना तो वह बेचैन हो उठा। रत्नसेन अनुराग से भर गया। पद्मावती का चित्र उसके चित्त पर स्थायी रूप से चित्रित हो गया। राजा कहता है कि– "वह मेरे चित्त में स्थायी रूप से चित्रित हो गयी है। मानों सूर्य के समान मेरे मन में बस गयी है। उसने हृदय को प्रकाश से भर दिया है। प्रेमी प्रेमिका के नव सम्बन्ध के कारण यद्यपि मैं सूर्य हूँ और वह चाँद है किन्तु मैं ही उसकी छाया हो रहा हूँ?"

इस तरह की बाते रत्नसेन के हृदय की दशा कहती है। जायसी ने भले ही अतिश्योक्ति का काफी प्रयोग किया है पर वह केवल भाव बनाने के लिए। उपमायें ही उनकी ताकत है–

तुइँ सुरंग मूरति वह कही। चित मह लागि चित्त होई रही।।
जनु होइ सुरज आईमन बसी। सब घट पूरि हिएँ परगसी।।
अब हो सुरज चाँद वह छाया। जल बिनु मीन रकत बिनु काया।।

राजा एंव सुग्गे में प्रेम विषयक विचार–विमर्श होता है। सुग्गा राजा की व्यग्रता दिखकर उसे समझाता है– हे राजा, प्रेम की बात सुनकर मन को भुलावे में न डालो। प्रेम के फन्दे में जो पड़ा वह न छूटा। अनेक ने प्राण दे दिए पर वह फन्दा नहीं टूटा।

पेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन प्रेम सिर देर तौ छाजा।
पेम फाँद जो परा न छूटा। जिउ दीन्ह कहु फाँद न छूटा।।

राजा इस पर कहते हैं कि ऐसे निराशा के वचन मत कह। भले ही प्रेम का दुखदाई खेल कठिन है, पर जो प्रेम का खेल खेल लेता है, वह तीनों लोकों में तर जाता है। जिसने प्रेम के मार्ग में सिर नहीं दिया वह किस लिए पृथ्वी पर आया। अब जब मैंने प्रेम के पथ में कदम बढ़ा दिया है तो उससे मेरे पाँव मत डिगा। तभी तक दुख है जब तक प्रीतम से भेंट नहीं हुई। जब भेंट हो जाएगी तो जन्म–जन्म का दुख मिट जाएगा।

राजै जीन्ह उम भरि सांसा। अैस बोल जनि बोलु निरासा।।
भले हि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेई खेला।।
जेइ नहि सीस पेम पँथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे को आबा।।
अब मैं पेम पंथ सिर भेला। पाँव न ठेलु राखु के चैला।।

इसके उपरांत 'नख शिख' खण्ड में राजा जैसे–जैसे वर्णन सुनते जाते हैं– प्रेम और परवान चढ़ता जाता है। यह वर्णन सुनते हीं राजा मूर्च्छित हो जाता है।

'प्रेम खण्ड' में जायसी ने इसका सविस्तार वर्णन किया है। वे कहते हैं कि प्रेम के घाव का दुख कोई नहीं जानता, जिसे घाव लगता है वही जानता है। राजा इस कदर अचेत हो गया कि सारे कुटुम्ब, वैद्य लोग आ गये। वे कहने लगे इसका यहाँ उपचार नहीं। जिस प्रकार लक्षमण का शक्ति बान लगने पर उपचार कठिन था वही हाल यहाँ है। संजीवनी बूटी लाएगा कौन?

राजा को जैसे ही होश आया वह इस प्रकार जगा जैसे कोई बावला सोकर जगा हो। उसे देखकर ये लग रहा था कि जैसे कोई बहुत बड़ा आघात लगा है। बावलों की तरह रोने लगा। पद्मावती के रूप का ऐसा झटका लगा था कि वह सुध–बुध खो बैठा था। सब अस्त–व्यस्त हो गया था।

थोड़ा संभलने के पश्चात् जब वह पद्मावती के लिए चलने को उद्धत हुआ तो सुग्गे ने कहा– हे राजा मन में विचारो। प्रीति करना कठिन काम है। तुम उस परिस्थिति से कैसे पार पाओगे ? वहाँ प्रवेश करना कठिन है।

राजा का दशा ऐसी हो गयी थी कि वह प्रेम में चित्त लगाये वह पलक भी न झापता था। उसके नेत्रों से मोती और मूँगे झड़ रहे थे। आँसू रुकने का नाम ही न ले रहे थे। उसकी ऐसी दशा थी मानो कोई गुड़ खा लेने पर गूँगा हो गया हो।

नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूँगा। जस गुर खाई रहा होई गूँगा।।

आचार्य शुक्ल की बात याद आती है कि **'बिना परिचय के प्रेम नहीं होता।'**[1]

'जोगी खण्ड' में जायसी कहते हैं कि जब वह जोगी वेश धारण कर चलने को उद्धत हुआ तो ज्योतिषियों ने कहा कि आज गमन मत करो। वे शुभ दिन पर प्रस्थान करने की बात कहते हैं पर इस प्रेम व्याकुल हृदय को क्या शुरू क्या आरम्भ।

वह तो बस प्रियतमा को पा लेना चाहता है। माता–पुत्र प्रेम में व्याकुल हो समझाने लगती है पर वह नहीं मानता। यहाँ माता के वचनों में 'माता कौशल्या' के वे वचन दिखते हैं जब सीता वन को जा रही थी। माता का वात्सल्य यहाँ है जिसे जायसी अनदेखा नहीं करते। नागमती संदेश खंड में श्रवण कुमार के संदर्भ से जुड़कर यह और भी मार्मिक बन गया है।

सबसे महत्वपूर्ण अध्याय प्रारंभ होता है 'नागमती' के विलाप से। अगर पति परदेश जा रहा है तब तो थोड़ा संतोष है कि लौटकर मेरे पास ही आयेगा। पर दूसरी स्त्री के लिए जा रहा है तो एक स्त्री रोयेगी नहीं तो क्या करेगी? इस पर वह कैसे संतोष करे? उसका पति पता नहीं क्या करेगा। यहाँ यह विलाप मन को झकझोर देता है। वह हर तरह से समझाने का प्रयास करती है। साथ ही पुरुष मन की चंचलता पर भी बात करती है। राजा प्रेम में इस कदर अंधा हो गया था कि वह पीछे मुड़कर धीरज भी न बंधाता था।

मार्ग में राजा के ध्यान में उसका परिवार आता भी न था। वह केवल 'पद्मावती' का स्मरण करता चल रहा था। यहाँ वह अपने परमात्मा से मिलने जा रहा है पर माता स्त्री, बंधु–बांधव छोड़कर जाना भी पुरुष का धर्म नहीं। प्रजा को निःसहाय छोड़कर जाना राजा का धर्म नहीं। पर रत्नसेन को तो जैसे कुछ सूझता ही न था।

'मोहित खण्ड' में जब परिस्थितियाँ विकट हो जाती हैं तो राजा कहते हैं कि जिसने प्रेम किया, उसकी कुशल क्षेम कहाँ। अगर कुशल होना होता तो जन्म ही न होता।

जायसी की एक बात खटकती है कि वे बीच–बीच में आध्यात्मिक उपदेश देने लगते हैं।

'सात समुद्र खण्ड' में जायसी कहते हैं कि दधि समुद्र देखकर मन दग्ध हो गया। पर जो प्रेम का लुभाया हुआ है वह दाह सह लेता है। वह जीव धन्य है जो प्रेम से दग्ध हुआ हो। जिसके जी में प्रेम है उसके लिए आग चन्दन की भाँति शीतल होती है। पर जो प्रेम से सूने हैं वे आग से डरकर भागते हैं। जो कोई प्रेम की आग में जलता है उसका दुख व्यर्थ नहीं जाता।

दधि समुद्र देखत मन डहा। प्रेम क लुबुध दगध पै सहा।
पेम सों दाधा धनि वह जीऊ। दही माहिं मधि काढै घीऊ।।
जे हि जियँ पेम चंदन तेहि आगी। पेम विहुन फिरहिं डरि भागी।
पेम की आगि जरै जौं कोई। ताकर दुख न अँबिरथा होई।।

'मंडप गमन खण्ड' में राजा विरह में बावला होकर वियोगी बन गया है। वह केवल पद्मावती का नाम जपता है। जायसी कहते हैं कि मनुष्य प्रेम द्वारा स्वर्ग के योग्य बना है नहीं तो इसमें है हीं क्या। केवल एक मुट्ठी राख है। प्रेम में विरह और रस दोनों हैं जैसे मोम के छत्ते में शहद अमृत और बर्रे दोनों रहते हैं।

रत्नसेन तपस्वी बनकर सिंहचर्म पर बैठ गया है। रात भर जागते रहने से उसके नेत्र लाल हो गये हैं मानो चकित चकोर चंद्रमा की ओर टकटकी लगाये हो। राजा हाथों से कुंडल पकड़कर पृथ्वी पर मस्तक टेकता है और सोचता है कि जहाँ उस प्रियतम का पैर पड़ता हो वहाँ मेरा यह शरीर पाँवड़ा होकर बिछ जाए।

चारों दिशाओं में मन उसे खोजता फिरता है। कभी–कभी तो सोचता कि धूल बनकर हवा के साथ उड़ता हुआ उस स्थान पर पहुँचूँ जहाँ वह प्राणाधार है।

चारिहुँ चक्र फिरै मन खोजत डँड न रहै थिरमार।
होइ के भसम पवन संग धावौं जहाँ सो पान आधार।।

राजा रत्नसेन के इस विरह का इतना प्रभाव पड़ा कि पद्मावती पर उसका असर होने लगा।

'पद्मावती वियोग खण्ड' में इस पर विस्तृत चर्चा है। पर यह अत्यंत अस्वाभाविक लगता है। यह तो जादू हुआ। इस तरह की बातें ही थोड़ा मन उचटाती है।

पद्मावती विरह का अनुभव करने लगी है। रात होने पर उसे नींद नहीं आती मानो शैय्या पर काँटे हों। गहरी विरह व्यथा शरीर को जला रही थी।

पद्मावती तेहि जोग सँजोगाँ। परि-पेम बस गेह बियोगाँ।
नींद न परै रैनि जौ धावा। सेज के बाँछ जानु कोई लावा।।

जायसी कहते हैं कि पद्मावती विरह में जलते वन में गिर गयी थी। जहाँ वह दृष्टि फेंकती वह वन अगम्य और असूझ जान पड़ता था। कहती कौन उसे मुझ से मिलकर शरीर की जलन बुझाएगा ?

यहाँ जायसी ने कुछ ज्यादा कर दिया है। माना कि रत्नसेन का प्रेम अत्यंत गहरा है पर इस तरह का प्रभाव असम्भव है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लाख कथानक रूढ़ियों की बात कहते हैं पर यहाँ रूढ़ियों में भी रूढ़ियाँ आ रही है।

प्रेम की पीड़ा से उसका हृदय पीला पड़ गया था। दासियाँ–सखियाँ पूछने लगी थीं कि चेहरे का रंग मलिन क्यों पड़ता जा रहा है। कुल मिलाकर पद्मावती कामाग्नि की ज्वाला में जल रही थी। यह खण्ड पद्मावत् में सबसे अविश्वसनीय है।

'पद्मावती सुआ भेंट खण्ड' में थोड़ी विश्वसनीयता लौट आती है। जब रानी कामाग्नि ज्वाला में जल रही होती हैं तभी सूआ लौटता है। सारी बातें होती हैं और जब वह सारी बात बताता है तो रानी अचंभित रह जाती है। जैसे ही सुए ने सारी बात बतायी एवं रत्नसेन का हाल कहा तो पद्मावती और व्यग्र हो उठी।

जैसे सूर्य के दर्शन से हीरे में विशेष चमक उठती है वैसे ही रत्नसेन का आगमन सुनकर उसमें विरह और तीव्र हो गया। और उस पर काम का आक्रमण हुआ।

जस सूरज देखत होइ ओपा। तस भा विरह काम दल कोपा।
पै सुनि जोगी केर बखानू। पद्मावति मन भा अभिमान।।

इधर बात बताकर सूआ पुनः राजा के पास आता है और सारी बातें कहीं। बातों ने विरह को शांत तो न ही किया और ज्वाला पैदा कर दी।

'बसंत खंड' में रानी पद्मावती देवता से इच्छित वर पाने की आराधना करती है। पहली बार यहीं भेंट होती है पर प्रेम की अत्यधिकता जैसे यहाँ कटार का काम जाती है, बेचारा बेहोश हो जाता है। राजा बेहोश हो जाता है एवं पद्मावती सीने पर संदेश लिखकर चली जाती है।

जब राजा होश में आते हैं तो बड़े ही व्याकुल हो उठते हैं। जायसी कहते हैं कि– रत्नसेन सोचने लगा किसने इस बसंत को उजाड़ दिया? वह चाँद चला गया और तारों को लेकर अस्त हो गया। अब उसके बिना मेरा जीवन अंधेरा कुँआ हो गया।

केइँ यह बसत बसंत उजारा। गा सो चाँद अँथवा लै तारा।
अन तेहि बिन जग अँधकूपा। वह सुख छाँह जरौ हौ धूपा।।

जैसे जल से बिछुड़ने से मछली घोर दुख पाती है वैसे ही राजा को मिलन जल से खींचकर विरह की अग्नि में डाल दिया गया था। जो चंदन के अंक उसके हृदय पर लिखे गये थे वे ही उस आग से जलने के दाग बन गये थे। उसे अब वसंत भी वीरान लगने लगा था।

यहाँ पर स्वाभाविकता लगती है। 'पार्वती महेश खण्ड' में राजा का विरह और गहराता जाता है। वह धाड़ मारकर रोता जाता है। वह ऐसा रोया कि जैसे आकाश से मेघ घनघोर बरसते हैं और धरती को भरकर सर्वत्र जल रूप में बहने लगते हैं।

इस खण्ड में उसका भगवान शंकर के समक्ष रोना श्रेयस्कर रहा। उसे भगवान ने सिंहलगढ़ का हाल बताया एवं गुटका दिया। आगे के खण्डों में ऐसी–ऐसी घटनायें होती हैं जो थोड़ी असहज लगती हैं। राजा का सीधे तौर पर कहना कि वह राजकुमारी के लिए विरह तप में जल रहा है एवं उसी के लिए जोगी हुआ है।

किसी तरह भगवान महेश एवं हीरमन ने सारी बातें कहीं। तब जाकर राजा गंधर्व सेन माना और रत्नसेन

पद्मावती का विवाह संपन्न हुआ।

'पद्मावती' रत्नसेन भेंट खण्ड' में भी जब रत्नसेन पद्मावती को देखता है तो सुध–बुध खोने लगता है। दो–तीन बार किसी का यों बेहोश होना काफी अजीब लगता है। जो जायसी कह रहे हैं, उसी पर ध्यान देना होगा। पद्मावती से विवाह के पश्चात् भी वह जल रहा है। कारण है मिलन में बिलम्ब।

जैसे ही वह होश में आता है एक बेचैनी उसे घेर लेती है। वह रानी को पकड़ लेता है, अब बस उसे आगोश में भर लेना चाहता है। वह उसके साथ चुहल भी करती है। प्रेम का यह स्वरूप बड़ा मनमोहक है।

राजा अपने दिल की बात करता है। हे प्रिय जिसके शरीर में प्रेम है वह दुगुना जलता है। मैं तेरे प्रेम में पान की तरह पीला हो गया हूँ।

जेहि तन नेह दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेहु पियर या पानु।।

राजा रानी से कहता है कि तुमने न जाने कौन सी मोहिनी डाली की जो व्यथा तुम्हें भी वहीं मुझमें उत्पन्न हो गयी।

जायसी कहते हैं कि परस्पर सत्यभाव प्रकट करके दोनों में कंठालिंगन हुआ, मानो सोने में सुहागा मिला हो। वह उस भौंरे की भाँति आनन्द में बेसुध हो गया जो कली बेधकर उसके भीतर प्रवेश करता है।

करि सत याउ भएउ कैडलागु। जनु कंचन मो मिला सोहागु।
करी बेधि जनु भवर भुलाना। हना राहु अर्जुन ने बाना।
ताएँग जानुँ कीर नख देई। अधर आबु रस जानहु लेई।
कौतुक देलि करहिं दुख केसा। कुदहि कुरूलाहि जनु सर हंसा।

जायसी इन पलों का जो वर्णन करते हैं वह अतुलनीय है। भले ही अन्य आलोचक इसमें अश्लीलता देखते हैं पर इसे प्रेम की पराकाष्ठा रूप में देखना ज्यादा सही होगा।

राजा रानी प्रेम में गहरे गोते लगा रहे हैं एवं सब भूलकर एक दूसरे में खोये हैं। इधर राजा भोग–विलास में डूबे हैं उधर रानी नागमती अपार विरह ज्वाला में जल रही है उसके बिरह के कारण सारी धरती व्याकुल हो रही है।

प्रिय के वियोग में उसका जी बावला हो गया। वह पपीहे की तरह 'पिउ–पिउ' रटने लगी। काम उसे अधिक–अधिक सताने लगा। वह सुग्गा प्रियतम के नाम से उसका प्राण ही हर ले गया। उसे ऐसा विरह वाण लगा था कि वह हिल–डुल भी न सकती थी। रक्त के पसीजने से उसकी चोली भींग गयी थी।

पिउ बियोग उस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ-पिऊ।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिऊ लै सो गाउ पिय नामा।
बिरह बान जस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि तन चोली।

मदन की सताई यह बाला अब हार गयी थी और प्राण छोड़ देना चाहती थी। जायसी इसकी पराकाष्ठा बताते हुए उपमा देते हैं कि उसके मुँह से बिरह की आह निकली। उस हाँक से अग्नि उत्पन्न हुई। उससे शरीर में जो हंस या जीव था उसके पंख जल गये। अतएव वह उड़ न सका और शरीर मं ही रह गया।

आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हाँक।

हँस जो रहा सरीर यहँ पाँख जरे तन थाक।।

जायसी यहाँ विरह की ज्वाला दिखाते हैं एवं ऋतु वर्णन द्वारा विस्तार देते हैं। जैसे– असाढ़ में मेघों से भरा आकाश उसे और जलाते हैं। उसके लिए बिना पिया के इन बूंदों का क्या महत्व। सावन में घनघोर वर्षा के बीच वह बावली हो रही है। जहाँ देखती है संसार जल में डूबा है और उसकी नाव खेवक के बिना ठहरी हुई है। भादो में यह अत्यंत दुःसह और भारी है। अंधियारी रात कैसे बिताये, प्रियतम तो दूर जा बसे हैं। विरह काल रूप में प्राण को गसे हुए हैं। आश्विन मास में संसार का जल घटने लगा है। स्वाति की बड़े भी चातक को मिल गयीं पर प्रियतम नहीं आया। कार्तिक मास में शरद के चंद्रमा की उजाली छायी हुई है जगत शीतल है पर वह विरह में जल रही है। अगहन में दिन घट गया है और रात बड़ी हो गई है। अब तो उसका विरह इतना बढ़ गया है कि दिन भी रात लगने लगा है। पता नहीं वह निर्मोही कब आयेगा। पूस के महीने में जाड़े के कारण शरीर थर–थर काँपता है पर विरह के बढ़ने से शीत और दारूण हो गया है। वह काँप–काँप कर मरी जा रही है। उसका सेज मानो बर्फ में डूबा है। माघ का महीना आ गया है। शरीर थर–थर काँप रहा है। कहती है कि प्रियतम अब बर्दास्त नहीं होता– सूर्य के समान आकर तपा। आपके बिना अब जाड़ा दूर नहीं होगा।

फागुन में उसका शरीर पीले पत्ते जैसा हो गया है। विरह में यह पत्ता टिक न पायेगा। पवन लगता है अब झाड़ कर ही मानेगा। चैत में बसन्त की धमार होती है कोयल अपनी बोली से विरह के वाण मार रही है। बैशाख का महीना और तपन पैदा कर रहा है। हे प्रिय, वज्राग्नि जल रही है अब तो छाँह कर दो।

इस तरह वह हर एक मौसम से संबंधित पीड़ा कहती है। वह इस कदर व्याकुल हो चुकी है कि वह वनों में फिर–फिर कर रोती रही पर कोई न मिला। एक पति मिला जिसे देखकर वह अपना संदेश कहती है। यहाँ पर प्रेम का वह व्यग्र रूप दिखता है कि वह एकदम हताश हो गयी है उसे अब कुछ न दिख रहा है। अब वह क्या करे। तब संदेशा भेजती है।

सुग्गा राजा से कहता है संदेश में कि उसके विरह के दुख के ताप के कारण मैंने जंगल में रहना छोड़ दिया, समुद्र तट पर चला गया पर वहाँ भी चैन न मिला।

विरह के दुख में वह ऐसा जला कि धुँआ उठने से मेघ काले हो गये हैं। राहु के जलने पर केतु भी जल गया। सूर्य जल गया और चाँद जलकर आधा हा गया है।

सारी बात सुनकर नागमती के प्रति उसके भाव जाग उठते हैं। वह व्याकुल हो उठता है।

वह अब वापस चलने को उद्धत होता है। रास्ते में भी बिछड़ने एवं मिलने का प्रसंग है पर उतना प्रभावी नहीं।

मनोहारी क्षण तब आता है जब रत्नसेन चित्तौड़ वापस आता है और रात में नागमती के पास जाता है और वह मुँह फेरकर बैठ जाती है। सामने होकर राजा से आँख न मिलाती थी। उसने कहा कि ग्रीष्म में जलते हुए तो छोड़ गये तो अब क्या।

जब तूने दूसरे से प्रेम कर ही लिया तो मुझसे क्या परिहास करता है। ऐसी बाते स्वाभाविक प्रेम को दर्शाती है। इसके अतिरिक्त और भी प्रेम प्रसंग है पर इनके बाद इतनी गहराई किसी में नहीं।

हाँ एक मनोरंजक प्रेम प्रसंग और है 'नागमती पद्मावती विवाद खण्ड में' इसमें दोनों एक दूसरे से ईर्ष्या करती है एवं दोनों चाहती है कि पति उनके पास रहे एवं इसके लिए पहले वे पति के सामने एक दूसरे की

बुराई भी करती है और एक जगह पर तो झगड़े एवं मारपीट की नौबत आ जाती है। उकसे पश्चात् 'पद्मावती नागमती विलाप खण्ड में' उसका प्रेम दिखता है। इसके अलावा युद्ध पश्चात् 'बंधन मोक्ष, पद्मावती मिलन खण्ड' में भी प्रेम का एक रूप दिखता है।

ये सारे प्रेम प्रसंग अपने आप में पूर्ण है एवं जायसी की कलपनाशीलता एवं चिंतनशीलता दिखलाते हैं।

प्रेम ने स्वरूप दिग्दर्शन जायसी ने स्थान–स्थान पर किया है। कहीं तो यह स्वरूप लौकिक ही दिखता है पर कहीं लोकबंधन से परे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि रत्नसेन पद्मावती का प्रेम विषय से सम की ओर प्रकृत हुआ है जिसमें एक पक्ष की कष्ट साधना, दूसरे पक्ष में पहले दया और फिर तुल्य प्रेम की प्रतिष्ठा करती है। प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनंदमयी और निर्मल हो जाती है। जो बातें पहले नहीं सूझती थी वे सूझने लगती है। चारों ओर सौंदर्य का विकास दिखाई पड़ने लगता है। प्रेम का क्षीर समुद्र अपार और अगाध है। जो इस समुद्र को पार करते हैं उनकी सुगमता में प्रभाव से 'जीव' संज्ञा को त्याग शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।[2]

प्रेम की कुछ विशेषताओं का वर्णन जायसी ने हीरामन तोते के मुँह से भी कराया है। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होने पर फिर जा नहीं सकता। पहले उत्पन्न होते और बढ़ते समय तो उसमें सुख ही दिखता है पर बढ़ चुकने पर भारी दुख का सामना करना पड़ता है। प्रेम बढ़ जाने पर और किसी भाव के लिए स्वतंत्र स्थान नहीं छोड़ता।

आचार्य शुक्ल कहते हैं कि पद्मावती और नागमती के विवाह में जो 'असूया' का भाव प्रकट होता है वह स्त्री स्वभाव चित्रण की दृष्टि से है। वह प्रेम के लौकिक स्वरूप के अंतर्गत है। पर जायसी की दृष्टि इस लौकिक प्रेम से आगे बढ़ी हुई है। वे प्रेम का विशुद्ध रूप दिखाना चाहता है जो भगवद् प्रेम में परिणत हो सके। इसी से वे प्रेम की और भी दूरारूप भावना करके रत्नसेन के मूँह से विवाद शांति का तत्वभरा उपदेश दिलवाते हैं।[3]

बात जो भी हो प्रेम को जायसी इस विस्तार एवं सूक्ष्मता से निरूपित करते हैं कि मन पुलकित हो उठता है।

संदर्भ :–

1. सभी काव्यांश, पदमावत, सं० वासुदेव शरण अग्रवाल।
2. जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
2. वही।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 126-140

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THERMODYNAMICS OF BLACK HOLES : THE ORETICAL DEVELOPMENTS AND INFORMATION PARADOX

Prashant Bhagwanrao Bunde

Dr. Namdev Pawar, Guide

The English High School and Junior College, Near Dist Yavatmal, MAHARASHTRA.

Abstract :

One of the most significant and puzzling and fecund fields of modern physics is the thermodynamics of black holes: a paradigm that has emerged through the meeting of general relativity with quantum field theory. These mysterious gravitational objects, which were thought to be empty darkness, have exposed highly thermodynamic features such as temperature, entropy, and evaporation. Black holes have been reinterpreted in a thermodynamic picture by the work of Bekenstein and Hawking, who found that classical views of event horizons and conservation laws are no longer valid. As a theoretical possibility, the Hawking radiation led to the introduction of a quantum mechanical instability of black hole spacetimes, unleashing an avalanche of discussions about the process of black hole evaporation, the fate of information, and the final geometry of spacetime.

The information paradox that ensued because of the firewall hypothesis is what ardently raises debate even today. At the same time, the development of string theory and holography (especially in the realization of the Anti-de Sitter/Conformal Field Theory correspondence) has provided possible solutions as well by subsuming black hole entropy and unitarity into more encompassing theories. Thermodynamic basis, Hawking radiation, the entropy-area law, information paradox, and holographic advancement are discussed in a very systematic and critical way in this paper. The paper has helped to prove that the role of a black hole as an astrophysical object is just one of its dimensions because it can also be used to obtain a tool to unite quantum mechanics and gravity.

Keywords *: Dynamics of black holes, Hawking radiation, Bekenstein entropy, Information paradox, Holography, Firewall problem*

1. Introduction :

Black holes have transformed from containing zero information to living thermodynamic systems, due to the early skepticism of Jacob Bekenstein and Stephen Hawking. Bekenstein conjectured that black holes have an entropy that scales with the area of their event horizon, consistent with the Generalised Second Law of thermodynamics. Hawking's discovery of black hole radiation supported this perception, and it was found that black holes have finite temperature and could evaporate (Auffinger, 2023). This created the black hole information paradox: if the information entering a black hole is destroyed, this creates a problem with the unitarity of quantum mechanics.

To answer this, other theories such as the firewall hypothesis surfaced, where the possible structure of a violent horizon is proposed, which goes against the assumption that spacetime is smooth as stated by general relativity. In the meantime, string theory, and particularly the holographic principle via the AdS/CFT correspondence, promises to provide useful frameworks. These hypothesize the dynamics of quantum field theory of spacetime boundary as the determinant of black hole entropy, as well as the

retrieval of information, shedding light on the microstructure of spacetime and entropy (Singh, 2024).

The paper discusses the thermodynamic basis of black holes, Hawking radiation, the information paradox, and contemporary approaches to quantum gravity. Black holes, consequently, are not only pieces of astrophysics but essential theoretical subject matter, providing critical insight into the interplay of entropy, information, and the very physical nature of spaces and times.

2. Black Hole Thermodynamics: Foundations and Formalism :

Although in the early derivations of general relativity, the thermodynamic nature of black holes was not obvious. Classical, mass-, charge-, and angular momentum-defined black holes were supposed to be terminal and featureless entities, the famous no-hair black holes. But a study of the mechanical properties of black holes, especially that undertaken by Bardeen, Carter, and Hawking, showed startling similarities to those same laws of thermodynamics, thus leading to a shift in paradigm in gravitational theory (Ong, 2022).

The First Law of Black Hole Mechanics is pretty like the First Law of Thermodynamics. Experiencing a stationary, axisymmetric black hole, the change of mass M of the black hole can be expressed in terms of the variations in surface gravity κ, angular momentum J, and electric charge Q as follows :

$$dM=\frac{\kappa}{8\pi}dA+\Omega dJ+\Phi dQ$$

In this case, A is the area of the event horizon, Omega is the angular velocity, and Phi is the electrostatic potential at the horizon. This formalism parallels a thermodynamic identity of $dU-TdS-PdV+\mu dN$, where the $\kappa/2\pi$ is interpreted as temperature, and A is defined as entropy, which sets the stage for thermodynamic interpretation.

Hawking invented the Second Law of Black Hole Mechanics: the area of the event horizon of a classical black hole would never shrink with time. This law makes us remember the classical Second Law of Thermodynamics, but this hypothesizes that

the entropy of any closed system can never reduce (Zivieri, 2023). The analogy is more than skin deep; it implies that the event horizon carries some sort of entropy, albeit of a microscopically small origin, until quantum effects were added.

This thermodynamic analogy was realised concretely in the Bekenstein-Hawking Entropy, written S_{BH}. Bekenstein conjectured that the entropy of a black hole is proportional to the event horizon area rather than the volume, as in other thermodynamic systems. This was confirmed by the derivation by Hawking, which gave the formula:

$$S_{BH}=\frac{kA}{4\hbar G}$$

In which k is the Newtonian constant of gravitation, with k being the Boltzmann constant, $\hbar$ Is the reduced Planck constant, and G is the Newtonian constant of gravitation. This finding implies that the entropy of black holes is not extensive in the volume but in the area and seems to indicate that gravitational degrees of freedom are holographic in character (Nojiri et al. 2022).

The Third Law of Black Hole Mechanics suggests that surface gravity κ of a black hole is indisputably nonzero (as opposed to possible in any physical way), so that, analogous to the thermodynamic Third Law, such a point can never be attained. This law is, however, conjectural since there is no rigorous microscopic definition of black hole thermodynamics (Perez, 2023).

Hawking provided the last part of the thermodynamic analogy when he showed that black holes emit thermal particles because of the quantum properties of the vacuum at the location of the horizon. The existence of a Killing horizon allows one to perform a semi-classical calculation where virtual pairs of particles and antiparticles are torn apart by the tidal forces, with one particle being dragged away to infinity and the other one being absorbed by the black hole. The Hawking Temperature that it yields is:

$$T_H=\frac{\hbar\kappa}{2\pi k}$$

The discovery did not just show that the black holes indeed emit radiation, but also suggested that it has real thermal properties and will eventually evaporate, losing their mass and horizon area. The thermodynamic identity turns out to be precise, and entropy and temperature acquire definite physical meaning (Strasberg & Winter, 2021).

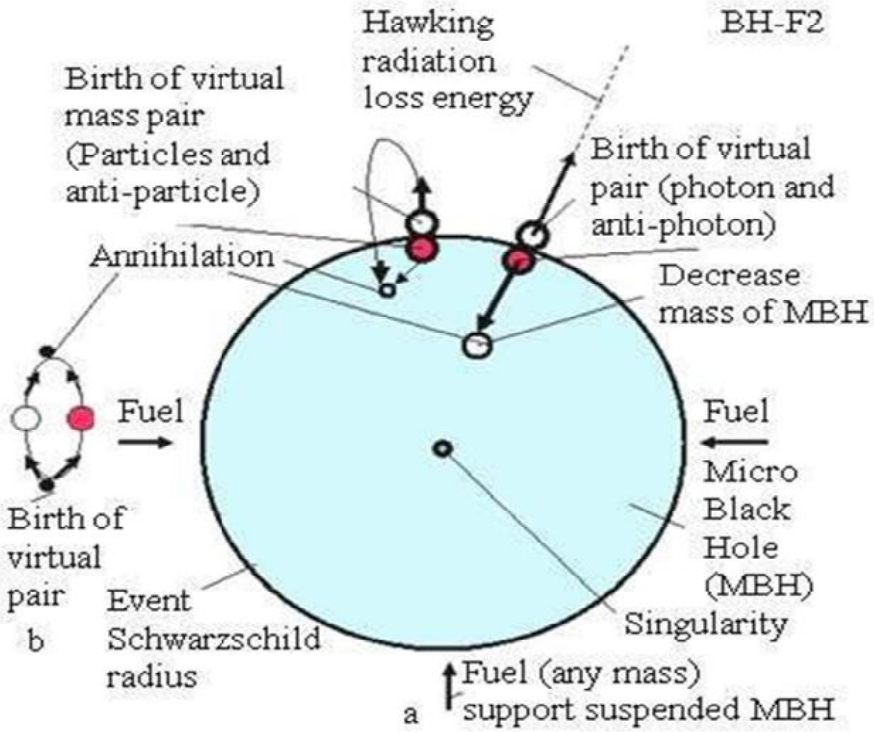

Figure 2.1 : Hawking Radiation Diagram showing virtual particles

(Source: Bolonkin, 2009)

The subsequent incorporation of temperature and entropy in black hole physics converted the event horizon to a thermodynamic membrane. A black hole with mass M has a finite temperature T ~ 1/M, so that smaller black holes have higher temperatures and evaporate faster, making it an unstable system. This development contravenes the classical area theorem, which demanded that the quantum mechanical processes should take over at the later stages of evaporation, a regime that has not yet been captured in a comprehensive treatment of quantum gravity.

Besides its theoretical implications, the subject of black hole thermodynamics poses profound philosophical and physical questions about the origin of entropy.

Entropy in traditional systems finds a foundation in the statistical mechanics of microscopic entities (Sethna, 2021). There is no known microstructure in general relativity when it comes to black holes. S_{BH} origin, therefore, is not within the classical theory, and hence it has given rise to various attempts at deriving it using quantum statistics.

These attempts have also seen attempts based on string theory, loop quantum gravity, and AdS/CFT holography, where each attempted to determine the quantum degrees of freedom that would explain the horizon's entropy. This very impressive outcome that some extremal black holes of string theory not only agree with the Bekenstein-Hawking entropy but do so to all orders strongly lends credence to the speculation that black hole entropy is of statistical origin (Crowther, 2025).

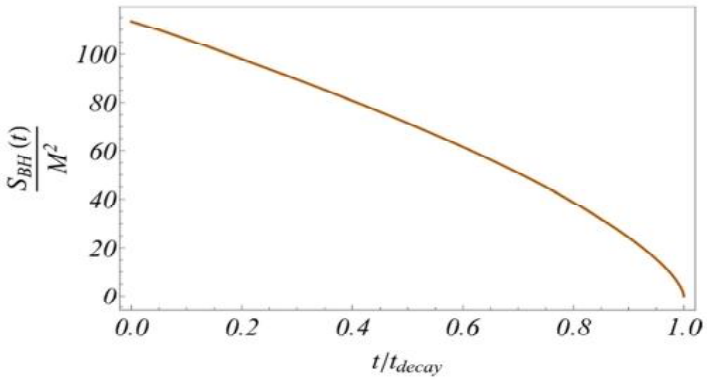

Figure 2.2: Bekenstein-Hawking entropy Area

(Source: Arévalo et al. 2024)

Generalised Second Law (GSL) is also another concept that has arisen out of the developments. It states that the external entropy of a black hole and the Bekenstein-Hawking entropy never decrease. This generalisation is thermodynamically consistent where black holes are involved, and is a foundation of efforts to extend thermodynamic reasoning to quantum gravity.

The ascendants and formalism of the black holes thermodynamics is, hence, one of the strongest achievements of theoretical physics that gathered the field of gravitational dynamics, quantum field theory, and thermodynamic concepts, which could be explained, in a coherent manner, and hence predicted.

3. Hawking Radiation and Quantum Field Insights :

The IIawking radiation is a landmark outcome in theoretical physics, which proves that black holes generate thermal radiation as quantum effects close to the event horizon. Hawking showed, by examining a massless scalar field in the curved spacetime of a gravitational collapse to a black hole, that the random quantum fluctuations of the vacuum cause emission of observable particles (Dulani, 2024). This is interpreted as thermal radiation by a distant observer, and is a consequence not only of a non-trivial relationship between the asymptotic states (in-vacuum and out-vacuum states) related by a Bogo Liubov transformation. Those particles are of the Planckian spectrum, and the temperature corresponds to the surface gravity of the black hole, which connects quantum field theory and general relativity by means of the quantum effects of curved spacetime.

The temperature related to the radiation is described using the symbol $TH=\hbar\kappa/(2\pi kBc)$ with kappa representing the surface gravity at the event horizon. This identification gives physical meaning to the earlier abstract concept of the surface gravity and ensures that surface gravity is a thermodynamic variable (Shankaranarayanan & Johnson, 2022). The radiation emission is completely thermal, meaning that all the modes are monochromatic and thus they contain none of the information about the matter that made up the black hole in the first place. When the mass of the black hole is small, the intensity of radiation is large, and the process of black hole evaporation becomes uncontrollable (runaway process) that causes the mass of the black hole to decrease until it finally disappears in the semi-classical approach.

The practical and conceptual implications of this phenomenon are present. On the one hand, Hawking radiation solved the problem that the thermodynamic interpretation of black holes lacked the necessary variable, namely, the temperature. Conversely, the Thermodynamic character of the radiation has created acute conflict with the principles of quantum mechanics, especially the demand of unitary evolution (Taschetto, 2024). There seems to be no infalling matter, since one cannot identify a mechanism where the information (of the infalling matter) is encoded into the emitted

radiation. This causes the process to seem to violate the concept of information conservation. It is through this conflict that the black hole information paradox appears, and that is what will be discussed in the next section in detail.

Subsequent developments of the Hawking effect have examined quantum particle production in other spacetimes, quantum field modes near cosmological horizons, and the issue of back-reaction. It is not yet clear that such technical advances have changed the bottom line: the radiated entity is still a black hole that radiates as a black body at a temperature determined by its gravitational characteristics (Almeida, 2021). This profound sense of insight has motivated the aim to reconcile it with quantum theory and statistical mechanics, leading to the emergence of quantum gravity and holographic dualities.

4. The Information Paradox and Firewall Hypothesis :

The black hole information paradox has become one of the most serious inconsistencies of the quantum description of gravity with the semi-classical one. The radiation given off by a black hole is not only thermal but also uncorrelated with the original state of the matter that fell into it (according to Hawking's calculation). The mass of the black hole shrinks as it evaporates into radiation; thus, when the evaporation is complete, there is only radiation with no memory of the original structure (Flanagan, 2021). This result implies that pure quantum states will transform into mixed ones, which will mean the non-conservation of quantum mechanics' unitarity and will go against one of its most fundamental principles.

The paradox is deepened under the light that the entropy of the radiation is considered. First, since the black hole radiates, the emission particles' entropy grows, following the thermal emission. But once the so-called Page time, at which half the entropy of the black hole has been lost to Hawking radiation, is past, subsequent production of uncorrelated quanta also leads to an excess of total entropy versus the Bekenstein-Hawking entropy by black hole evaporation, which exceeds the Bekenstein-Hawking entropy count of the black hole. Unitarity cannot be lost, so eventually correlations will start to appear in the later radiation, resulting in a decrease

in the total entropy and creating the so-called Page curve. This behaviour, however, seems incompatible with the semi-classical treatment where the entropy profile is an ever-steadily increasing one up to the total evaporation.

The firewall hypothesis is one of the radical solutions that have been put forward to this paradox. It implies that the event horizon is not a smooth vacuum surface as first proposed by the general theory of relativity; instead that the event horizon is a high-energy quanta region, a fiery wall that obliterates all infalling observers. The argument was based on a model by Almheiri, Marolf, Polchinski, and Sully (AMPS) who showed that three reasonable assumptions (the evaporation of the unitary unitarity evaporation, the applicability of the effective field theory beyond the stretched horizon, and the equivalence principle) are mutually inconsistent. One of these assumptions must then be discarded, and the firewall scenario occurs when one discards the equivalence principle to maintain unitarity.

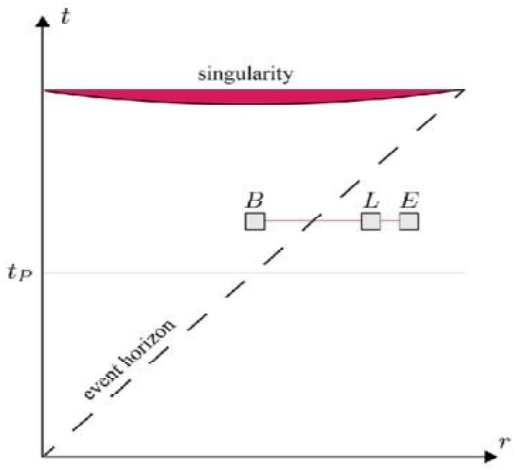

Figure 4.1 : Black Hole Firewall Paradox Diagram

(Source: Cinti & Sanchioni, 2021)

The repercussions of a firewall are far-reaching. It would imply the failure of general relativity in a low-curvature regime, as well as contravening the intuition that an observer to fell into a large enough black hole would not notice anything special at the horizon. Moreover, those high-energy modes at the horizon would complicate the standard semi-classical approach and ensure a reformulation of the relationship between classical spacetimes and quantum field-theoretic vacuums. Despite the

arguments by the firewall paradox being conceptually intriguing, they do not seem to succeed in universal acceptance, and several arguments have been put across to maintain smooth horizons.

Responses to the black hole information paradox are taking up more and more appeal to quantum error correction and holography. Specifically, holographic theories indicate that quantum error-correcting codes encode the interior of black holes in a non-local way, in the Hawking radiation (Kibe et al. 2022). In this view, information is not lost in the sense of being inaccessible, but in a dual sense is hidden behind inaccessible observables, and with suitable extensions to holographic ideas, both unitarity and smooth horizons can be a consequence. AdS/CFT and replica wormhole calculations also replicate the anticipated configuration of the Page curve, therefore raising the possibility of non-perturbative gravitational effects hampering unitarity.

These arguments, however, are limited. These are generally based on asymptotically anti-de Sitter (AdS) manifolds and their special boundary conditions, and, to generalize to realistic, cosmological, or dynamical black holes, is unclear. Moreover, the non-local essence of the holographic coding undermines the standard idea of spacetime locality and causality.

The firewall paradox exemplifies the innermost contradiction of quantum gravity: integrating unitarity, semiclassical geometry, and local quantum fields. It remains an open question whether the answer to this is relying on smooth horizons, changing the theory of quantum mechanics, or even redefining spacetime itself (Capellmann, 2021). Possible future developments are the study of string theory and holography to unlock the microscopic physics of black holes, which could provide a coherent theory describing all modern physics, whose paradox (solved in a consistent theory) will be unified.

5. String Theory and Holographic Perspectives :

The theoretical and algebraic complexity of black-hole thermodynamics and the problem of the information paradox have fuelled the development of new theoretical frameworks that go beyond the semi-classical approximation of gravity.

String theory, among them, has contributed enormously by providing a microscopic explanation to the black-hole entropy and double description of the gravitational dynamics through holography. It is true that these views have succeeded in reproducing established outcomes, but have also provided new mechanisms to understand the fine structure of black holes and the recovery of unitary.

The initial tangible step near the string theory came in the form of counting microstates of extremal and near-extremal black holes in a higher-dimensional supersymmetric landscape. Strominger and Vafa found (in a seminal result) that some five-dimensional black holes could be constructed as bound states of D-branes and strings, and that the degeneracy of the quantum states took the form of the Bekenstein-Hawking entropy formula. This unasserted agreement, finally expressed independently of horizon geometry, suggested that black-hole entropy had a quantum-statistical interpretation as some statistical estimate of underlying quantum states. Such calculations dealt with very idealised systems, but they provided the most satisfactorily rigorous derivation of black-hole entropy that had ever been developed.

The AdS/CFT correspondence, formulated by Maldacena, has made the bridge between gravity and quantum theory even stronger, suggesting a duality between the anti-de Sitter (AdS) spacetime theory of gravity and a conformal field theory (CFT) at its boundary. In the same framework, the bulk AdS space black holes are mapped to thermal states in the boundary CFT. By doing so, the questions about black-hole entropy, entanglement, and unitarity can be reformulated in the language of well-understood problems of quantum field theory into which standard techniques can be applied (Ule, 2025). The holographic principle thus translates gravity issues into boundary calculations that obey quantum unitarity.

These ideas have been generalised in the Ryu-Takayanagi prescription, which gives a relation between the entanglement entropy of a subregion of a boundary and the area of a minimal surface in the bulk AdS geometry. This association has covered a geometric picture of quantum entanglement and permitted the recovery of the Page bit in holographic contexts (Chen et al. 2022). More recent analyses of replica wormholes and island surfaces have demonstrated that the entropy of Hawking

radiation is not necessarily constant in the after-Page time and instead can fall at later times, as is expected given unitary evolution. Such calculations have been seen as evidence that information does not get lost in the process of black-hole evaporation but rather becomes coded in the radiation in a rather non-local and subtle way.

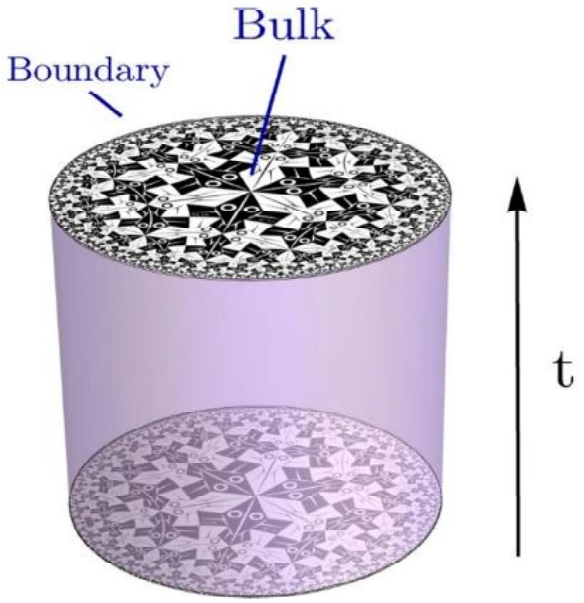

Figure 5.1 : Bulk and Boundary relation with correspondence in the AdS CFT

(Source: Jahn & Eisert, 2021)

Holographic techniques do, however, have significant limitations despite their ability. Most are based upon special asymptotic boundary conditions and very high levels of symmetry, which are not likely to be found among real-world astrophysical black holes. Also, it is not clear how the bulk reconstruction and holography entanglement can be given a physical meaning. However, we still cling to our greatest prospect of the black hole trauma and fixing the information riddle, the string theory, and holography (Polchinski, 2022). Depending on these frameworks, one is to imply that the observed inconsistency between general relativity and quantum mechanics is not essential. Rather, spacetime and geometry may be derivations of more fundamentally unitary quantities that exist in entanglement and information, which may thus be regained by non-perturbative contributions.

6. Conclusion and Future Directions :

General relativity conflicts with thermodynamics and quantum mechanics on a fundamental level, as seen in the study of blackhole thermodynamics. This is because the discovery of black holes as thermodynamic systems, which are provided with temperature and entropy in the form of Hawking radiation and the Bekenstein-Hawking formula, changed classical gravitational knowledge. Nevertheless, the information paradox and the firewall hypothesis indicate that the semi-classical distribution has limitations, suggesting that there is a conflict between the smooth event horizon and unitarity.

To fix these problems, microstate counting and non-local information encoding bring string theory and holography to the rescue. The revival of the Page curve through holographic techniques gives credence to the belief that black holes might retain details, thus questioning the more familiar classic notions of locality.

However, many of these insights have been generated in symmetric, supersymmetric models. It is crucial to extend them to more general contexts asymptotically flat or cosmology spacetimes. A deeper study on the significance of entanglement and the interpretation of holographic observables is vital in building a consistent theoretical explanation of quantum gravity and answering the conundrum of black hole information loss.

References :

1. Auffinger, J. (2023). Primordial black hole constraints with Hawking radiation—A review. Progress in Particle and Nuclear Physics, 131, 104040.https://arxiv.org/pdf/2206.02672
2. Singh, S. (2024). Black hole microstates and entropy. Preprints (October, 2024). https://doi.org/10.20944/preprints202410, 368, v1.https://www.preprints.org/frontend/manuscript/f9ea1a915bc49356ae01e9906d82a308/download_pub
3. Ong, Y. C. (2022). On black hole thermodynamics, singularity, and gravitational entropy. General Relativity and Gravitation, 54(10), 132.https://arxiv.org/pdf/2210.16856
4. Zivieri, R. (2023). Trends in the second law of thermodynamics. Entropy, 25(9), 1321.https://www.mdpi.com/1099-4300/25/9/1321
5. Nojiri, S. I., Odintsov, S. D., & Faraoni, V. (2022). New entropies, black holes, and holographic dark energy. Astrophysics, 65(4), 534-551.https://arxiv.org/pdf/2208.10235
6. Perez, A. (2023). Black Hole Entropy and Planckian Discreteness. arXiv preprint arXiv:2310.19389.https://arxiv.org/pdf/2310.19389
7. Strasberg, P., & Winter, A. (2021). First and second law of quantum thermodynamics: A consistent derivation based on a microscopic definition of entropy. PRX Quantum, 2(3), 030202.https://link.aps.org/pdf/10.1103/PRXQuantum.2.030202
8. Sethna, J. P. (2021). Statistical mechanics: entropy, order parameters, and complexity (Vol. 14). Oxford University Press.https://sethna.lassp.cornell.edu/StatMech/ErrataFirstPrinting.pdf
9. Crowther, K. (2025). Why Do We Want a Theory of Quantum Gravity?. Elements in the Philosophy of Physics.https://arxiv.org/pdf/2505.04858
10. Dulani, S. (2024). Black Hole Paradoxes: A Unified Framework for Information Loss.https://philsci-archive.pitt.edu/24511/7/S.Dulani_Dissertation_Post%20Online.pdf
11. Shankaranarayanan, S., & Johnson, J. P. (2022). Modified theories of gravity: Why, how and what?. General Relativity and Gravitation, 54(5), 44.https://arxiv.org/pdf/2204.06533
12. Taschetto, D. (2024). The Thermodynamic Origins and Dynamical Foundations of Quantum Discontinuity.https://philsci-archive.pitt.edu/23131/1/PhD%20Thesis%20-%20DT.pdf
13. Almeida, C. R. (2021). The thermodynamics of black holes: from Penrose process to Hawking radiation. The European Physical Journal H, 46(1), 20.https://link.springer.com/content/pdf/10.1140/epjh/s13129-021-00022-9.pdf

14. Flanagan, É. É. (2021). Infrared effects in the late stages of black hole evaporation. Journal of High Energy Physics, 2021(7), 1-36.https://link.springer.com/content/pdf/10.1007/JHEP07(2021)137.pdf
15. Kibe, T., Mandayam, P., & Mukhopadhyay, A. (2022). Holographic spacetime, black holes and quantum error correcting codes: a review. The European Physical Journal C, 82(5), 463.https://link.springer.com/content/pdf/10.1140/epjc/s10052-022-10382-1.pdf
16. Capellmann, H. (2021). Space-time in quantum theory. Foundations of Physics, 51(2), 44.https://link.springer.com/content/pdf/10.1007/s10701-021-00441-0.pdf
17. Ule, D. (2025). Quantum Informational Geometrodynamics: A Critical Self-Review and Comparison with Current Fundamental Physics.https://osf.io/v2x47/download
18. Chen, B., Czech, B., & Wang, Z. Z. (2022). Quantum information in holographic duality. Reports on Progress in Physics, 85(4), 046001.https://arxiv.org/pdf/2108.09188
19. Polchinski, J. (2022). Memories of a Theoretical Physicist: A Journey across the Landscape of Strings, Black Holes, and the Multiverse. MIT Press.https://arxiv.org/pdf/1708.09093
20. Bolonkin, A. (2009). Converting of matter to nuclear energy by ab-generator. Am. J. Eng. Applied Sci, 2, 683-693. https://www.researchgate.net/profile/Alexander-Bolonkin/publication/41025203_Converting_of_Matter_to_Nuclear_Energy_by_AB-Generator/links/54debbbf0cf2510fcee4b1b7/Converting-of-Matter-to-Nuclear-Energy-by-AB-Generator.pdf
21. Arévalo, V. A., Andrade, D., & Rojas, C. (2024). Time evolution of the Von Neumann entropy for a Kerr–Taub–NUT black hole. The European Physical Journal C, 84(9), 932. https://link.springer.com/article/10.1140/epjc/s10052-024-13290-8
22. Cinti, E., & Sanchioni, M. (2021). The devil in the (implicit) details: On the amps paradox and its resolution. International Journal of Theoretical Physics, 60(9), 3234-3253. https://link.springer.com/article/10.1007/s10773-021-04901-1
23. Jahn, A., & Eisert, J. (2021). Holographic tensor network models and quantum error correction: a topical review. Quantum Science and Technology, 6(3), 033002. https://iopscience.iop.org/article/10.1088/2058-9565/ac0293/meta

Prashantbunde26@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 141-152

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Underdog Bowling to the Cultural Field in Kukunoor's Iqbal

National Seminar on Sports and Literature : 'The game's afoot…' Sport, Literature and Culture, Indraprastha College for Women, Delhi University

Anas Tabraiz

Zakir Hussain Post-Graduate Evening College, Delhi University.

It is extremely difficult for cinema, steeped in theory, to be acceptable and popular among the masses at the same time. The process of opening up a space for a dreary discussion on the psychology, economics or the politics of a given society is a difficult feat to achieve; especially when the medium promises entertainment and charges the audience for the same. It ought to be commendable in any film therefore to have been able to reach psychological depths with its audience and to have deposited its grave message without rending the diaphanous veil of conscious entertainment. An art form, cinema or print, has to earn its passage through an air of innocuousness that would put the audience's censors off guard. Nagesh Kukunoor's Iqbal, produced by Subhash Ghai's Mukta Searchlight films in 2005, is a film that puts cricket and its mass appeal to such masterly use as would make it qualify for good cinema. The film achieves such metaphorical transcendence that, at times, it becomes difficult to convince the audience that, beneath the story of the deaf-mute hero's rise to fame, there are deeper socio-economic and political issues involved. Kukunoor's film makes effective use of theories of linguistics and psychoanalysis to discuss the participation of some sections of the Indian masses, especially the minorities, in national policies, to facilitate India's participation in the global economy.

In doing this, the film also fulfills the function of subtle propaganda by urging the marginalized sections of the Indian masses, to participate in the national imaginary; to utilize its national resources to earn a place for India in the global community. Read in this context, the story of Iqbal seeks to inspire the new generation of Indians to dream; to imagine a world of better opportunities, and to use national resources towards the realization of their dreams. It also addresses that part of the rural Indian population that has hitherto been indifferent to the dreams and desires that drive modern, urban India. Iqbal's life is presented as a model for his minority community and to rural India at large. He

becomes exemplary for his ability to imagine a community with a hallowed circle of the national elite (represented by the national team), in spite of being born in an oppressively unpromising reality. The film participates in the discourse that urges the deprived, castaway sections of the Indian masses not to forego their stake in the national identity, because of its lack of inclusiveness, and to imagine unconventional ways to deserve membership in the community albeit exclusive. It, therefore, seeks to eventually pull them into an economy of desire and make them participants in a power-game that they otherwise would hardly ever play on their own.

The layout of the film is structurally homologous to the description of a 'little man's' acquisition of language in the Lacanian theory of the Mirror Stage. The child in the mirror stage follows a trajectory of growth that emancipates him from a position of congenital physical powerlessness. The imaginative identification with the mirror image makes the intransigent body subservient to the logic of the mirror and the self-image in it. This is how Lacan traces the growth of natural man, out of a state of essential powerlessness and subjection, into what he terms the 'Symbolic'. Like the congenitally 'disabled' little man in Lacan, Iqbal, the central character of the film, is born deaf-mute. The film shows us how the protagonist overcomes a material, physical shortcoming, by exercising his will to attain 'subjectivity'. He imaginatively participates in an alternative semantic field, where he might overcome physical disabilities and reclaim the ability to assert and articulate himself. It is not only for Iqbal as an individual that the film traces the passage from an essentially voiceless existence to acquiring voice and language but it also shows the way for the region and the community that he belongs to. The film, therefore, addresses not only individuals but also the communities marginalized out of the national image, to rise out of their immediate reality and to participate in the national imaginary for national and individual interests. At a subtler level, the film tries to urge the unassimilated sections of the Indian population, the minorities and remote rural communities, to forge an identification, however false, with the unified mirror image of the nation. The benefits that accrue from such participation in the national, or at a deeper level, the global, imaginary are implied in the deaf-mute hero's emancipation to a version 'speech' on the cricket field.

Iqbal was released in 2005, a period when the minority question was being rethought by the nation, the Gujarat riots in 2002, had raised the question of the sense of belonging and the stake that the minority community had in the 'secular' state. The Sachar Committee was appointed by the prime minister on 9th March, 2005 and its report was submitted in the last week of November, 2006. The Sachar report conclusively proved that the bulk of Indian Muslims suffer from grave deprivation in social, economic and educational opportunities because of lack of access to education, health care and other public services, and to employment. The level of deprivation has increased to such an

extent that in certain sectors Muslims are lagging behind Dalits. That deprivation affects Muslims more than any other Socio-Religious category (SRC) has also been the conclusion of many previous studies like those of C. Ramamanohar Reddy, Imran Ali and Yogendra Sikand, Zoya Hasan and Ritu Menon. The fact that the government felt the need to appoint yet another committee to look into the affairs of the community reflects the growing need in the state to incorporate this second largest majority of India into the nation. In the specific case of Indian Minorities Scholars have pointed out conceptual and political contestations between 'citizens' and 'people' on the one hand and between the dynamics of hegemonic majoritarianism and the consequences of minority marginalization on the other.

Iqbal's father belongs to the minority Muslim community in India. Unlike the other minorities, Muslims have always been a special case in the context of the subcontinent. The prioritization of community interests over the interests of the nation has always kept them in the realm of suspicion in the Indian context. The strength of the religious, community bonding over the pull of the national imaginary has made them merely partial participants in the imaginary narratives of the nation or of globalization. In order to participate and gain from the national imaginary it becomes imperative that the community set aside its religious priorities to participate in a syncretistic, secular society. Such a participation in the syncretistic community would be comparable to the child's identification with his image in the mirror. The problem that the film presents, especially with the character of Iqbal's father, is that of a lack of recognition of the benefits of participation in the national imaginary. This lack of recognition, of the benefits of participation in the nation, infests not only the minorities but also a huge population of relatively remote areas of Indian Territory. The reason for this lack of recognition has been the inability of the various media to reach these remote parts. The tiny television set on which the whole village watches the national team play, in the opening scene of Iqbal, is also a reminder of the failure of the media to reach remote interiors and to bring the nation together. The narrative of the nation needs to make the mirror image accessible to the masses in order for its promise to be recognized. Iqbal's father, therefore, has an argument with his teacher, Mohit, over gambling one's life in an order that bestows its jackpots on the elected few.

The fact that the film consciously uses the Lacanian schema for its theoretical background implies that it seeks to present the protagonist's 'disability' in terms of the failure to identify with the mirror image. In the context of the Lacanian theories of language and psychology, Iqbal's disability with language is structurally similar to his community's disability to participate in the imaginary community of the nation. The growth into the secular, syncretistic society is similar to the Lacanian mirror stage, as diverse subjects 'misrecognize' themselves in the unified image of the nation.

According to Anika Lemaire, "The subject is in effect represented in symbolism by a stand in; a signifier which may be the personal pronoun 'I', the forename which devolves upon the subject."(Lemaire, 68). Every subject of the nation participates in the national imaginary for the liberal space that the nation promises to provide for individual development. Everyone, therefore, is driven by self-interest but keeps this self-interest hidden while performatively participating in the national community. Any objective reality that the subject encounters has to be structurally mediated and transformed to suit the self-interest and the structure that furthers that self-interest. The symbolic space that thus emerges is a circular formation in which the structure provides opportunities to the individual to grow and the individual grows to perpetuate the structure.

The narrative of the nation is the order of signifiers that the self has to 'subject' itself to, in order to attain 'subjectivity'. Emile Benveniste describes the purely linguistic basis of the notion of subjectivity as follows: "The subjectivity we are discussing here is the capacity of the speaker to posit himself as 'subject'. It is defined not by the feeling which everyone experiences of being himself…but as the psychic unity that transcends the totality of the actual experiences it assembles, and that makes the permanence of the consciousness." (Benveniste, 224). The call for participation in the national community is, therefore, a call towards subjection to a system of 'pure signifiers' that shall not have a direct referential relation to the objective world. The 'pure signifiers' will structure a discursive field that shall absorb the shocks of pure objective reality and shall transform it to the point of making it palatable. Through the ensuing discussion I would like to discuss Nagesh Kukunoor's use of the cricketing field as a metaphor for the linguistic field of 'pure signifiers'. The protagonist Iqbal's development into a cricketer, in the above context, would imply his acquisition and learning of the language of 'pure signifiers' and moving into the Lacanian Symbolic. I would also like to argue that Iqbal's recognition of cricket as an order of the signifier and his consequent triumph over his reality is also a call to the incorporation of his community into the Nation for similar benefits.

The most interesting achievement, of the eponymous hero lies in his ability to close his eyes and imagine that he is playing for the country, even as he practices bowling on a humble patch of grass. He shows quixotic acumen in transforming the buffaloes that he looks after into a cheering audience at the cricket stadium. This young Indian does not let the distance, between his goal and his reality, deter him in any way. We come to know a little later that he has made for himself a small hut on whose walls he sticks images of Indian cricketers of international fame. This hut serves to project Iqbal's mind; the inner space to which he often goes to restore his belief in his aspirations. The hut represents the initial flicker of subjective space, and consequently voice, in the otherwise deaf-mute existence of the hero. It is to be noted that the deaf boy 'hears' an imaginary cheering crowd in a

stadium only in this secret interior space.

Figure 1 Figure 2 Figure 3

It is the desire to bridge the gap, between the power of the self-image and the powerlessness in real life, that gives an air of urgency to Iqbal's quest. He is divided between this cerebral image of himself and the demands of the mundane world around him. His father allows him just another year to live in his illusory world and dream big before Iqbal is eventually old enough to take his place and share his responsibilities. Iqbal is torn between tapping a liberating imagination, that he inherits from his mother, and the unimaginative subjection to the role of the farmer that his father is waiting to pass on to him.

The self-image that drives Iqbal is sustained, verified and reflected back to him by his mother and his sister. The two members of his family support his belief in his aspirations. It is his sister who performs the important role of a go-between between Iqbal and the rest of the world. In an early part of the movie, we find Iqbal hidden behind buffaloes, trying to read the lips of the head trainer (Guruji) who is giving bowling lessons within a fenced-in field of the Kolapad Academy of Cricket.

Figure 4 Figure 5 Figure 6

The scene is well structured in adequately presenting the spatial opposition between the territory bound-in by the fence and the point where Iqbal stands. Iqbal with his 'handicap' is indistinguishable from the cattle that he looks after; the only thing that makes him different is his desire to join the men inside the fence. His sister comes too late from school to join him there. The scene communicates the desire in Iqbal to move ahead by working hard to realize his dream. Kolapad academy is the entry point to the circle of power that Iqbal wishes to master. It is from here that he learns the basics of

significantly using the language of cricket that shall lead him to master the discursive field to negotiate with his social, political and economic reality.

It is Iqbal's sister, Khadija, who tells Guruji about her brother's superior ability at bowling. She shows such belief in her brother's capabilities that Guruji agrees to give Iqbal a chance to stage his talent. At this point, Iqbal is too self-conscious to be able to bowl in front of the other players in the academy. The fact, that his sister has to ask him to imagine that the people who were watching him were buffaloes, implies that the inability was because of the gap between Iqbal's humble reality and his larger-than-life self-image. The problem is eventually solved only by Iqbal's belief in a yet unproved sense of superiority over the others around him. The resolution comes about with a complete faith in the subjective reality of the self-image and by making the world around him subservient to that reality. Iqbal becomes a Lacanian subject in giving precedence to his imagination in the face of a smothering reality. Iqbal's first spell, inside the sacred space of the academy, is his first speech-act. He has to find recognition in the eyes of the master. I would like to quote Shoshana Felman in order to clarify my point: "…the psychoanalytic recognition is radically tied up with language, with the subject's analytic speech-act, and as such, its value is less cognitive than performative: it is, itself, essentially a speech-act, whose symbolic action modifies the subject's history, rather than cerebrally observing or recording it, at last correctly." (Felman, 1026-27). Iqbal could only have made his entry into this realm of language by a primary act of imagination where he inverts and tips the scales on his side. He goes on to bowl accurately as soon as this gap between imagination and reality is eliminated. His superior speed and accuracy give enough reason to Guruji to groom him as a prodigy.

Now that Iqbal enters the Academy, he realizes that physical energy, speed and accuracy are not the only attributes that count to attain the mastery of the discursive field of cricket. Guruji tells him that things are very different when one bowls to an opponent rather than bowling at the wickets on an empty pitch. The conversation between the teacher and his pupil compares the cricket field to the field of language, where various 'players' contend with the others for superiority, backed by their respective self-images. It becomes imperative not only to learn the straightforward but also the cunning ways of combat. The versions of swing, change of pace and other modes of deception become the staple for a bowler to survive on the field without being mastered. Guruji tells him that he will have to use his 'pace' as a weapon. Khadija fails to catch up with Guruji's words and signals 'face' instead of 'pace' to Iqbal. The mistake has been artistically slipped in to alert and inform the viewers to the presence of the theoretical subtext. The intentional play on using one's face as a weapon alludes to the performative aspect of language, where a signifier 'represents a subject for another signifier'. With training from Guruji, Iqbal is on his way to learning the ways to realize his self-image when a minor incident sends him out of the academy and back into the space fit for cattle.

A rich boy, the erstwhile hero of the academy, becomes jealous of Iqbal's rising popularity and has an altercation with him, off the field. Iqbal, who has by now become too confident of his self-image, answers back by bowling a bodyline bowl to this boy and injuring him seriously. The injury is serious enough to cost Iqbal his place in the academy. The influential father of the rich boy is, incidentally, also one of the major patrons of the academy. He asks Guruji to either expel Iqbal or to lose funding. The incident is placed in the film to emphasize the, yet unbridged, gap between Iqbal's reality and his image of himself. It tells us that the subjective image cannot be brought into reality until a reality has been prepared for that image. The self has to negotiate between subjective and objective reality until the time that the reality has been brought to approximate to the subjective image. This incident also teaches Iqbal that there is structural interconnection between different discursive fields. The mastery of one field does not imply the mastery of the whole structure, and in that one field too, he is not a master yet. Property or money has to be accumulated, apart from and through one's intra-discursive talent, in order to be able to hold power outside one's discursive field. The lesson, however, is learnt too late. Iqbal's self-image is as badly damaged as the face of his rich opponent on the field when he is requested by Guruji to leave the academy immediately. The amount of energy that Iqbal had spent in earning his entry into the academy makes him powerless to counter this blow of reality. His self-image begins to dwindle as a result of his being too careless to strike a balance between the world of imagination and reality. The narrative sequence tells us that it was too early for Iqbal to have let the interior world of imagination come out into an open conflict with the bitter reality of the outer world. Furthermore, the false mirror image given by the Imaginary realm does not have power in the face of reality. In order to give power to the mirror image the self has to move from the dualistic Imaginary order to the ternary realm of the 'Symbolic'.

The return of the little hut, where Iqbal had collected the images of his heroes, reinforces its metaphorical value. Iqbal returns to the little hut, shuts himself in, closes his eyes and tries to repair and resurrect his dying image of himself. This time he finds it hard to hear the voice of the cheering crowds. The brief tryst with power, far from initiating him into the circle of power seems to have left him even more powerless than before. The deaf-mute boy suffers; his handicap redoubles as an overdose of reality scuppers even his ability to imagine.

Figure 7

Figure 8

Figure 9

Figures 10

The tragedy seems to have reached its end but only for a tiny string that the writer of the story had left dangling in the early part of the film. Iqbal, before going to the academy, would often rouse a village drunkard by sprinkling water on him, before going back home after finishing his regular practice. He comes upon a little photograph of this same drunkard, while he is burning all the images in his little hut in rage and agitation, after his ouster from the academy. This little photograph becomes a ray of hope that re-illumines the bleak world of Iqbal after his brief encounter with power, at the academy. He picks up the photo and pledges to rebuild his broken fortune with the help of this new teacher, Mohit.

The new teacher, we soon come to know, is too disenchanted, with the constant encounter between imagination and reality, to come back on to the field. Whereas Guruji, the teacher at Kolapad academy, represents the extreme of living in reality by cunningly operating from behind the image, the new drunken master represents the other extreme—that of living in a world of intoxication by totally giving up the race for power in the real world. The two masters represent the Apollonian and the Dionysian versions of the human will. The Apollonian represents the constant subjection of objective reality to mental forms as opposed to the Dionysian victory over reality by being intoxicated with the self-image. Iqbal has had a taste of one extreme, he shall learn now from the other. The fact, that our hero has access to both the above mentioned extremes, leads him to the final attainment of a golden mix of the two.

It is a task, for Iqbal and his sister, to get the old master out of his drunken stupor and to inspire him enough to get back at the real world. The youthful enthusiasm and physical prowess of Iqbal could now be combined with the experience and expertise of this new master to set Iqbal back on his road to power. The drunken man realizes that Iqbal could become a means for him to hit back at the real world and begin his struggle again from where he had left it. At one point, the movie shows an agitated outburst from the teacher where he talks of settling the unfinished business with his (symbolic) father.

It is important now, that Iqbal learn from his own mistakes and those of his new master. For this he has to understand the central difference between the inner and the outer world. The unimpeded beauty of the world of imagination has to be salvaged every moment from the onslaughts of an ugly reality. Iqbal has to learn that objective reality has to be toned down, transformed and adapted to suit the designation of the self-image in the discursive field. He ought to have learnt by now that the uncensored entry and overdose of reality could be seriously detrimental to the world of interiority centered upon, and structured around, one's self-image. The bitter truths of the real world have to be held at bay so that the important business of imagination might be carried on unperturbed. The need

for the ternary order of the symbolic that shall be made of 'pure signifiers' to mediate between the interior image and the external reality of the subject makes way for Iqbal's entry into the 'Symbolic'.

After having learnt the basics of bowling, after having passed the Lacanian Imaginary, Iqbal now has to learn to master the Symbolic. Learning to bowl to a set field, in the film, is similar to the Freudian game of the occult, where the child learns to deal with the mother's absence. This phase of learning is directed at gaining control over and being able to 'effect' a willed reality. By learning to master the spindle in the fort-da game, the child becomes free of the mother and gains autonomy by entering into the ternary order of the symbolic. The child's proficiency at controlling the absence or the presence of the mother is comparable to Iqbal's learning to control the batsman that he bowls to. Peter Brooks describes how the subject begins to control his own reality by performing an act that recalls the Freudian fort-da game—"The sense of beginning…is determined by the sense of an end' (Brooks, 283). "The very possibility of meaning plotted through time depends on the anticipated structuring force of the ending: the interminable would be the meaningless. We read the incidents of narration as 'promises and annunciations' of final coherence: the metaphor reached through the chain of metonymies." (Brooks, 283). The interesting thing about the above quotation is that it beautifully captures the flight, through practicing the 'chain of metonymies' to the transcendental realm of metaphor. It is this flight that captures the essence of the promotion, by practicing the imaginary, to the symbolic realm. Edmond Ortiques describes this passage from the imaginary to the symbolic as follows:

Imagination and desire are the realities of a finite being which can emerge from the contradiction between self and other only by the genesis of a third term, a mediatory 'concept' which by determining each term, orders them into reversible and progressive relations which can be developed in language. The whole problem of symbolization lies here, in this passage from a dual opposition to a ternary relation, a passage from desire to the concept. (Edmond Ortiques, 194)

Frederic Jameson points out that "the acquisition of the Symbolic is rather a precondition for the full mastery of the imaginary as well" (Imaginary and Symbolic in Lacan, 360).

The new master therefore teaches Iqbal to control his opponent's (the batsman's) choice of shots rather than constantly straining to anticipate what the opponent's next action might be. He should learn to bowl in such a way that the opponent has no choice but to hit the ball where the bowler wants him to. It is only when one becomes powerful enough to control the response of his opponent, to such an extent that the choice that the opponent exercises seems to be optimum and free, that the field becomes immune to traumatizing reality. The self-image, and the Symbolic, has to be believed in to the extent of having complete faith in it. It is with such faith that the actions of the other and the

self might emanate from the same source. The teacher teaches him to use his 'heart' and his 'head' interchangeably. The 'productive' confusion of the heart and the head implies that one should support the other to the point of becoming free of external reality. The imagistic world of the mind, rather than directly encountering naked, truthful and detrimental reality of the objective world, learns to imaginatively modify this reality according to the requirements of desire, to avoid trauma. This practice with reality in the imaginary phase helps the subject in its eventual flight into the Symbolic. Once the subject reaches the metaphor by practicing 'the chain of metonymies the subject attains complete freedom from objective reality. This is the effect that the control over the opponent's mind by simulating free choice seeks to achieve. The productive complementary interaction between the heart and mind is the key to attaining 'palintropic' autonomy from the objective world. This episode gives us a formula for reducing objective reality to an image of desirability before it is encountered by the subject's interiority.

The mastery over objective reality is refined in the final stages of Iqbal's training where he finds the secret formula for the 'Chakravyuh' at his master's place. The Charkravyuh is a peculiar formation in the field which is a grade above the art of controlling the choice of shots for the opponent. Not only should the choice of shots be controlled but also the possible outcomes of these shots. This feat can only be achieved when the field, and the opportunities and avenues that the field holds, changes with every bowl according to the desire of the bowler. It is with this final lesson that Iqbal's education of the structure of language becomes complete. He becomes fit to move out into the world of reality with his cherished, although hidden self-image. He can also use his newly acquired art to counter a debilitating reality and to bring about eventual parity between the virtual and the real. The virtual, mental self-image becomes a driving force that helps one to manage one's reality until that reality begins to approximate this image.

According to the logic of the film, it is Iqbal's complete faith in his self-image, and the structure that helps build that self-image, that leads to his salvation from the world of poverty and helplessness that his father inhabits. Iqbal faces his final test in the symbolic field when Guruji tries to use his financial condition to oust Iqbal out of the National team. Guruji offers Iqbal a substantial sum of money to rescue his father's farms and pay of his debts, on the condition that he would let his protégé, Kamal, be selected by the selection board. Iqbal is too hard pressed at this point to refuse the offer. He keeps Guruji's cheque only to tear it off after having made his arrangements. The Logic of the film requires that he does not commit the earlier mistake again. He does not let this blow of objective reality shatter the imaginary world that he had by now made for himself. He finally does use his 'face' as a weapon and goes on to sell his image to media sponsors to get the amount, that he needs to prop

his father, from the market. The end shows Iqbal as a deserving member of the Indian team. He is a common man who has believed in an image that he had projected for himself and has had the physical and the mental ability to achieve it.

To conclude my discussion, I would like to point out that the course that the action of the film suggests is an exact inversion (may one also say, perversion) of the normal course that non-desiring subjects usually take. Whereas the human mind is designed to encounter objective reality, to abstract from it and to reach rational conclusions based on these abstractions, the film lays down a method in which abstractions must precede objective reality. It also implies that the human will and its desire for power should be a part of a combative field where self-centered versions of truth should constantly be working to transform objective reality. According to the logic that the film presents, a relative harmony with reality can only be achieved by turning back from it. The mind rather than being in a state of flux and becoming doubles back upon itself. The film urges its audience to distribute its energies between the inner and the outer world. It urges them to carry on their dreary quest for daily bread while also constantly trying their luck in the field of desire.

Even after fifty five long years of Indian independence and innumerable conflicts on the issue, the majority of the Indian population refuses to be enchanted by national narratives of development. The sheer immensity and remoteness of this corpus of the world population has kept it inaccessible for the narratives of modernity to affect and transform it. In spite of the constant efforts of the global community to find acknowledgment and emulation, India remains incorrigibly immune to the western imaginary. In this paper, I emphasize the importance of Iqbal as a film that uses the two versions of India to structure an argument in favor of more and more public participation in the nation and liberal global arena. While arguing in its favor, the film associates modernity and globalization with power and shows them as holding a promise of greater existential and economic autonomy and freedom. In the final analysis, the film is part of the discourses that figuratively underscore the need to incorporate more and more subjects into the field of language. The film suggest that in order to be a part of the nation as an imagined community, the Indians who lie outside the ambit of desire will have to be transformed into desiring subjects. It is only by entering the realm of the Lacanian Symbolic, even as castrated subjects that they can attain their dreams. This can only be done by negotiating with reality at the level of signs. It is only by negotiating with power, that the relatively powerless can think of mastering their reality.

Iqbal is a forerunner in the series of films like Taare Zameen Par, that project the 'other' in terms of a disability, in terms of language. Their major aim is to make this threatening 'other' outside the narrative of the nation to join the race, to find a place in the culture that represents the masses. It

becomes imperative, in this context, to oust the deaf-mute underdogs out of their indifference, to make them learn to bowl to an ostensibly promising cultural field.

Notes :

1. The discussion on the Sachar Committee report and on the condition of Muslims in India can be read in detail in Maidul Islam's paper, 'Imagining Indian Muslims: Looking Through the Lens of Bollywood Cinema', in the Indian Journal of Human Development, Vol.1, No. 2 (July-December 2007), pp. 403-422.
2. Anika Lemaire, p. 68, cit. J.A. Miller, 'La Suture', Cahiers pour l'Analyse, no. 1.
3. Emile Benveniste, Problems in General Linguistics, Trans. Mary Elizabeth Meek. Coral Gables: University of Miami Press, 1971.
4. Shoshana Felman, 'Beyond Oedipus: The Specimen Story of Psychoanalysis', MLN, 98 (1983).
5. Peter Brooks, 'Freud's Masterplot', Yale French Studies, 55/56 (1977), 280-300
6. Edmond Ortiques, Le Discours et le symbole (Paris: Aubier, 1962), p.194, was quoted in Frederic Jameson's, 'Imaginary and the Symbolic in Lacan: Marxism, Psychoanalytic Criticism and the Problem of the Subject', Yale French Studies, 55/56 (1977), 388-395.

Illustrated Clips :

1. The first set of clips shows Iqbal Outside the Academy, his deaf-mute state is compared to the cattle that he looks after and the fenced in area of the academy is presented as the realm of desire. This is where the deaf boy listens to the sound of cheering crowds.
2. The second set of Illustrations shows Iqbal going into the interior space depicted in the film by the little hut which is an enclosure with images stuck on its wall.
3. The third set is of four images that show Iqbal's return to the hut after his faux pas at the Kolapad Academy. It shows him trying to listen to the crowds again and failing.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 153-157

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण : चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. कुमकुम श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, एमिटी लॉ स्कूल, एमिटी यूनिवर्सिटी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ कैंपस।

सार :–

यह शोध पत्र भारत में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच जटिल अन्तरनिर्भरता का विश्लेषण करता है। पिछले तीन दशकों में भारत ने आर्थिक विकास की तीव्र गति को बनाए रखते हुए ऊर्जा, खनिज तथा जल संसाधनों का तीव्र दोहन किया है, जिसके प्रतिकूल परिणाम पर्यावरणीय क्षरण के रूप में सामने आए हैं। वायु गुणवत्ता में गिरावट, जल स्रोतों का प्रदूषण, जैवविविधता का निरंतर घटाव और जलवायु परिवर्तन की बढ़ती तीव्रता ऐसी चुनौतियाँ हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य इन समस्याओं के मूल कारणों की पहचान कर प्रचलित नीतियों की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करना तथा सतत विकास के लिए व्यवहार्य समाधान प्रस्तुत करना है। अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग करते हुए नीति.प्रभाव विश्लेषण, हितधारक साक्षात्कार तथा केस–स्टडी पद्धति को अपनाया गया है। निष्कर्ष बताते हैं कि समन्वित शासन, सामुदायिक भागीदारी और हरित प्रौद्योगिकी में निवेश से भारत न केवल पर्यावरणीय गिरावट को रोक सकता है, बल्कि समावेशी आर्थिक प्रगति भी सुनिश्चित कर सकता है।

कुंजी शब्द :–

सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, भारत, हरित प्रौद्योगिकी, नीति विश्लेषण।

1. परिचय :–

आज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए में विश्व को जिन महत्वपूर्ण मुद्दों से निपटना है, उनमें पर्यावरण क्षरण और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं। ये न केवल वर्तमान मानव जनसंख्या के लिए खतरा पैदा करते हैं, बल्कि ये गैर–मानव और भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी खतरा हैं। उच्च तापमान वाली लहरें, असामान्य रूप से कम तापमान, तूफान, पारिस्थितिक गड़बड़ी (ग्लेशियर पिंघलना, समुद्र के जल स्तर में वृद्धि, बाढ़, सूखा और जंगल की आग), पुरानी कृषि पद्धतियों को बदलने का दबाव और खराब खाद्य और जल सुरक्षा जैसी आवर्ती मजबूत जलवायु संबंधी घटनाएँ चिंता का विषय बन गई हैं। इन समस्याओं का पर्यावरण की गुणवत्ता और स्थिरता पर

गंभीर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, यह अनुमान लगाया गया है कि प्रजातियों के नुकसान की वर्तमान दर, जिसमें प्राइमेट भी शामिल हैं, जिनसे मानव जाति संबंधित है, प्राकृतिक मानी जाने वाली दर से 100 से 1,000 गुना अधिक है, और यह ग्रहीय सीमा को पार करने की संभावना है जिसमें प्रजातियाँ पारिस्थितिकी तंत्र को लचीलापन प्रदान करती हैं।

सतत विकास की अवधारणा 1987 की ब्रुण्डलैण्ड रिपोर्ट के बाद वैश्विक बहस के केंद्र में रही है। इसका आशय ऐसी विकास प्रक्रिया से है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों की जरूरतों से समझौता न करे। भारत, जो विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश है, आर्थिक वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) की 2023 की रिपोर्ट दर्शाती है कि भारत के आठ महानगरों में पीएम 2.5 का औसत स्तर WHO मानकों से तीन गुना अधिक है। इसी प्रकार केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) के अनुसार 2024 में देश के 351 नदियों में से 279 नदी. खंड 'सेवक मूल्य' श्रेणी से नीचे पाये गये हैं।

2. अध्ययन की आवश्यकता एवं उद्देश्य :–

यद्यपि भारत सरकार ने 2014 में स्वच्छ भारत मिशन, 2015 में पेरिस समझौते की पुष्टि तथा 2021 में नेशनल हाइड्रोजन मिशन जैसी पहलों की घोषणा की है, फिर भी जमीनी स्तर पर पर्यावरणीय संकेतकों में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। इसी वजह से यह अध्ययन आवश्यक हो जाता है, ताकि नीतिगत खामियों की पहचान कर सुव्यवस्थित समाधान सुझाए जा सकें। इस शोध के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं।

– भारत में प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं के कारकों का विश्लेषण करना।
– मौजूदा नीतियों व कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।
– वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं का भारतीय संदर्भ में अनुकूलन करना।
– बहु.हितधारक सहभागिता पर आधारित समाधान प्रस्तावित करना।

3. साहित्य समीक्षा पर्यावरणीय नीति अनुसंधान ने प्रतिबद्धता–क्रियान्वयन अंतर : (Commitment-Implementation Gap) को बार–बार रेखांकित किया है (गुप्ता, 2019)। शांडिल्य (2020) ने अपने अध्ययन में पाया कि राज्यों के बीच ई–कचरा प्रबंधन नियमों को लागू करने में व्यापक असमानता है। मित्तल एवं सिंह (2022) ने हरित वित्त पोषण की अपर्याप्तता को प्रमुख चुनौतियों में शामिल करते हुए सुझाव दिया कि सार्वजनिक–निजी भागीदारी के नए मॉडल विकसित करने होंगे। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्टर्न रिपोर्ट (2006) जलवायु परिवर्तन के आर्थिक प्रभावों पर प्रकाश डालती है, जबकि IPCC (2022) ने जलवायु उपायों की आवश्यकता पर बल दिया है।

4. शोध पद्धति अध्ययन में मिश्रित विधि :–

(Mixed-Methods) दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्राथमिक डाटा के लिए दिल्ली–एनसीआर, मुंबई महानगर क्षेत्र और भोपाल–इंदौर कॉरिडोर से 150 नीति निर्माताओं, उद्योग प्रतिनिधियों और नागरिक समूहों का

लक्षित सैंपल सर्वेक्षण किया गया। साथ ही दस गहन साक्षात्कार और तीन फोकस समूह चर्चाएँ आयोजित की गईं। द्वितीयक डाटा हेतु CPCB, नीति आयोग और UNEP के आधिकारिक रिपोर्टों का विश्लेषण किया गया। सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए वर्णनात्मक आँकड़े, सहसंबंध विश्लेषण और SWOT फ्रेमवर्क का सहारा लिया गया।

5. प्रमुख निष्कर्ष व विश्लेषण (क) नीतिगत विसंगतियाँ :–

- सर्वे के 64% प्रतिभागियों ने माना कि केंद्र और राज्य स्तर की पर्यावरणीय नीतियों में प्राथमिकताओं का अंतर स्पष्ट है, जिससे क्रियान्वयन में विलंब होता है। उदाहरणस्वरूप प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियम 2016 का एक–इंच–तीर प्रतिबंध अधिकांश राज्यों में अभी भी अपेक्षित कठोरता से लागू नहीं हुआ है।
- **वित्तीय बाधाएँ :** 72% उत्तरदाताओं ने हरित प्रौद्योगिकी को अपनाने में प्रारंभिक पूँजीगत व्यय को प्रमुख बाधा बताया। स्वच्छ ऊर्जा उपक्रमों को दी जाने वाली रियायती ऋण योजनाएँ MSME तक प्रभावी रूप से नहीं पहुँच पातीं।
- **जन–सहभागिता की कमी :** केवल 38% नागरिक समूह प्रतिनिधियों ने स्थानीय निकायों की बैठकों में नियमित भागीदारी की सूचना दी। इससे नीति निर्णय प्रक्रिया में जमीनी जरूरतें प्रतिबिंबित नहीं हो पातीं।
- **प्रौद्योगिकी व नवोन्मेष :** अंतरिक्ष आधारित निगरानी (IRS-सैटेलाइट) और रिमोट सेंसिंग डेटा का सीमित उपयोग विशेषकर नगर निकायों में पाया गया, जबकि इसका बढ़ा प्रयोग प्रदूषण स्रोतों की त्वरित पहचान में सहायक हो सकता है।
- **सकारात्मक संकेत :** सौर ऊर्जा क्षमता 2014 के 2.6'GW से बढ़कर 2025 में 74'GW पहुँच चुकी है, जो नवीकरणीय ऊर्जा संक्रमण का आशाजनक संकेत देता है।

6. चुनौतियाँ :–

नीतिगत समन्वय का अभाव : मंत्रालयों के बीच 'साइलो'–दृष्टिकोण।

- वित्तीय एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में जटिलताएँ।

7. शहरीकरण की अनियंत्रित गति से भूमि उपयोग परिवर्तन।
8. कचरा प्रबंधन अवसंरचना की कमी व उदासीन सामाजिक व्यवहार।
9. जल सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव।
10. ग्रामीण–शहरी असमानता के कारण नीति.लाभों का असमान वितरण।
11. समाधान एवं सुझाव • एकीकृत पर्यावरण शासन मंच का गठन, जहाँ ऊर्जा, जल, कृषि और उद्योग मंत्रालयों के प्रतिनिधि एक ही डिजिटल डैशबोर्ड पर डेटा साझा करें।
12. हरित वित्त के लिए 'सतत विकास बांड' जारी कर पूँजी जुटाई जाए, इसमें सामाजिक प्रभाव निवेशकों को आकर्षित करने हेतु कर–प्रोत्साहन दिए जाएँ।
13. पर्यावरण शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप विद्यालय–स्तर पर व्यावहारिक परियोजना–आधारित बनाया जाए, ताकि नागरिकों में प्रारंभ से जागरूकता उत्पन्न हो।

14. अनुपयुक्त अनुसंधान–उद्यमिता क्लस्टर स्थापित कर विश्वविद्यालयों व स्टार्ट–अप्स को हरित प्रौद्योगिकी के सह–निर्माण हेतु प्रोत्साहित किया जाए।
15. स्थानीय निकायों में पंचायत स्तर तक डिजिटल सहभागिता मंच विकसित किए जाएँ, जिन पर नागरिक रियल–टाइम शिकायत दर्ज कर सकें और समाधान की प्रगति ट्रैक कर सकें।
16. नदी कायाकल्प कार्यक्रमों में जैव–प्रौद्योगिकी आधारित नवाचार – जैसे बायो–रेमेडिएशन को प्राथमिकता दी जाए।
17. निष्कर्ष भारत के लिए सतत विकास मात्र पर्यावरणीय अनिवार्यता नहीं, बल्कि सामाजिक–आर्थिक स्थिरता का मूल आधार है।

शोध निष्कर्ष स्पष्ट करते हैं कि यदि नीति, प्रौद्योगिकी और सामुदायिक शक्ति को एकसूत्र में पिरोया जाए तो पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास परस्पर पूरक बन सकते हैं। इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, दीर्घकालिक वित्तीय प्रतिबद्धता और नागरिक–केन्द्रित शासन ढाँचा आवश्यक है। शोध की सीमाओं में क्षेत्रीय आँकड़ो की उपलब्धता शामिल रही। भविष्य के अध्ययनों में पूर्वोत्तर और हिमालयी राज्यों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

अध्ययन की सीमाएँ और भविष्य का शोध यह अध्ययन यद्यपि बहु–आयामी दृष्टिकोण अपनाता है, फिर भी कुछ सीमाएँ विद्यमान हैं। प्राथमिक सर्वेक्षण केवल तीन भू–आंचलों तक सीमित रहा, जिसके कारण प्राप्त निष्कर्षों का सम्पूर्ण भारत पर सामान्यीकरण सावधानीपूर्वक करना होगा। इसके अतिरिक्त, सांख्यिकीय विश्लेषण में कुछ पर्यावरणीय संकेतकों–जैसे भूमिगत जल स्तर।

उपरोक्त शोध पत्र तैयार करने के लिए कुछ विशेष डाटा का सहारा लेना पड़ा और अनुमानित उत्तर के आधार शोध पत्र तैयार किया गया है।

संदर्भ सूची :–

1. गुप्ता, आर. (2019). भारत की पर्यावरणीय नीतियाँ और उनका प्रभाव. नई दिल्ली : पर्यावरण प्रकाशन।
2. शांडिल्य, वी. (2020). "ई–कचरा प्रबंधन में राज्यों के बीच असमानता : एक तुलनात्मक अध्ययन", भारतीय पर्यावरण जर्नल, खंड 12(3), पृष्ठ 54–63।
3. मित्तल, एस. एवं सिंह, पी. (2022). हरित वित्त और सतत विकास : भारत का परिप्रेक्ष्य. नोएडा : नीति संसाधन केंद्र।
4. केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB). (2024). भारत की नदियों की जल गुणवत्ता रिपोर्ट. नई दिल्ली : पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय।
5. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP). (2023). State of Air Quality in Indian Cities. जिनेवा : यूएनईपी प्रकाशन।
6. IPCC (2022). Sixth Assessment Report : Climate Change 2022 – Impacts, Adaptation and

Vulnerability. इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज।

7. स्टर्न, एन. (2006). Stern Review on the Economics of Climate Change. लंदन : हेर मेजेस्टी ट्रेजरी (UK Government Report)।
8. नीति आयोग (NITI Aayog). (2023). भारत का ऊर्जा संक्रमण रोडमैप– नई दिल्ली : नीति आयोग प्रकाशन।
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP). (2020). नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
10. भारत सरकार, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MoEFCC). (2021). राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन दस्तावेज।
11. भारत का संविधान, भाग IV-A, अनुच्छेद 51A(g) – भारत सरकार प्रकाशन विभाग।
12. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986, भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय।
13. राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010।

मो. 9450606600

ईमेल kumkum.srivastava0909@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 158-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचंद्र के कथा–साहित्य में नारी

डॉ० वंदना

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सार :–

हिंदी साहित्य के भिन्न–भिन्न युगों में साहित्यकारों द्वारा नारी को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया है। आदिकाल में उसके दो रूप–त्याग एवं सेवा का तथा उपभोग की सामग्री का, व्यक्त हुए हैं। भक्तिकाल में जहाँ एक ओर नारी को साधना के मार्ग में बाधक माना गया, वहीं दूसरी ओर उसके सती रूप की प्रशंसा की गई। रीतिकाल में वह भोग–विलास का साधन मात्र बनकर रह गई। आधुनिक काल के साहित्यकारों ने उसे पर्याप्त सम्मान दिया तथा उसका वास्तविक रूप में चित्रण किया। प्रेमचंद के साहित्य में नारी–विषयक विस्तृत, आधुनिक व उदार दृष्टिकोण पाया जाता है। उनके कथा–साहित्य में आए नारी–पात्रों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है– 1. समाजगत आर्थिक स्तर–वैषम्य का आधार, 2. प्रवृत्तियों अथवा गुणों पर आश्रित नारी रूप का आधार।

प्रथम आधार पर उनके नारी–पात्रों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। द्वितीय आधार पर उनके नारी–पात्रों को अनेक रूपों में विभक्त किया जा सकता है– प्रेमिका रूप, परिणीता रूप, मातृ रूप, राष्ट्रसेविका रूप, विधवा रूप, कामिनी रूप आदि। इन रूपों के अतिरिक्त प्रेमचंद ने नारियों में वेश्यावृत्ति की समस्या का वर्णन भी अपने उपन्यासों एवं कहानियों में किया है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में नारी के यथार्थ एवं आदर्श से सम्मिश्रित जिस रूप का चित्रण किया है, वह उनके लोकमंगलकारी दृष्टिकोण का परिचायक है।

बीज शब्द :– दृष्टिकोण, प्रखर, आधुनिक, जागरूकता, विषमता, अभिशप्त, परिस्थिति, सामाजिक, सम्मिश्रित, चिंतन।

मूल आलेख :–

हिन्दी साहित्य के भिन्न–भिन्न युगों में साहित्यकारों द्वारा नारी को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया है। आदिकाल के सिद्ध साहित्य में उसके दो रूप :– 1. त्याग एवं सेवा का, 2. उपभोग की सामग्री का, व्यक्त हुए हैं। इन दोनों रूपों में से नारी का द्वितीय रूप अधिक प्रखर रहा इसलिए इस काल में अनेकानेक युद्ध सुंदरी राजकुमारियों के लिए ही हुए। विद्यापति के पदों में नारी के इस स्वरूप का आभास मिलता है। भक्तिकाल में नारी–संबंधी दो दृष्टिकोण प्रचलित रहे। भक्तिकालीन कवियों ने जहाँ एक ओर नारी को साधना के मार्ग में बाधक एवं माया स्वरूपा मानकर उसकी भर्त्सना की है, वहीं दूसरी ओर सती एवं वर्गीय रूप में उसकी प्रशंसा भी की

है। रीतिकाल में नारी कामिनी, विलासिनी, निष्क्रिय तथा मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गई। आधुनिक युग के साहित्यकारों के नारी–सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन परिलक्षित होता है। उन्होंने नारी को उपभोग की वस्तु न मानकर उसे पर्याप्त सम्मान प्रदान किया तथा उसके भीतर क्रांति एवं नवजीवन का संदेश–सा फूँक दिया। वह कामिनी एवं भोग–विलास की वस्तु न रहकर बल, त्याग, साहस, महत्व और प्रेरणा की स्रोत हो गई।

कथा–सम्राट की उपाधि से विभूषित मुंशी प्रेमचंद का रचनाकाल प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य माना जा सकता है। आधुनिक युग का यह कालखण्ड नवजागरण तथा चतुर्मुखी जागरूकता का समय था इसलिए इस काल में धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में अनेक क्रांतियाँ हुईं। साथ ही इन क्षेत्रों में नारी के लिए समान अधिकारों की माँग उठने लगी। शताब्दियों से सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ नारी समाज शिक्षा, स्वतंत्रता व समानता के अधिकार के प्रति सजग हो उठा। प्रेमचंद का साहित्य उनके समस्त युग का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए नारी–विषयक विस्तृत, आधुनिक व उदार दृष्टिकोण उनके रचनाकर्म में सर्वत्र पाया जाता है। किंतु अत्याधुनिक विचारधारा से प्रभावित होने के बावजूद भी न तो उनके नारी पात्र उच्छृंखल आधुनिकता के ही प्रतिनिधि हैं ना ही पुरातन के स्तुतिकार। उनके नारी पात्रों में पुरातन व नवीन का सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है। इसीलिए उनके नारी पात्र साहस, बल, प्रेरणा जैसे गुणों के साथ–साथ त्याग, सेवा, पवित्रता, भक्ति, उदारता, सहिष्णुता तथा निःस्वार्थ बलिदान की भावना से अनुप्रेरित दिखाई देते हैं।

श्री इन्द्रनाथ मदान को लिखे पत्र में प्रेमचंद ने अपने नारी–विषयक उद्‌गार कुछ इस प्रकार प्रकट किए हैं :–

'मेरी नारी का आदर्श एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केंद्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असंतोष प्रकट किए हुए हो और पवित्रता सीजर की पत्नी की भाँति ऐसी हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।'[1]

प्रेमचंद के कथा–साहित्य में आए नारी पात्रों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है :

1. समाजगत आर्थिक स्तर–वैषम्य का आधार।
2. प्रवृत्तियों अथवा गुणों पर आश्रित नारी रूप का आधार।

समाजगत आर्थिक स्तर–वैषम्य के आधार पर उनके नारी पात्रों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :– उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग की नारियों में रानी जाह्नवी देवी, सोफिया, श्रीमती जॉनसेवक, रानी देवप्रिया, रतन, रोहिणी, आनंदी, मनोरमा आदि प्रमुख हैं। लेखक ने समाज एवं प्रत्येक वर्ग की पारिवारिक विषमताओं को इन्हीं नारी पात्रों के द्वारा सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है। सुमन, सुखदा, जालपा, नैना, मालती, सुभागी, रूपा आदि पात्र मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करते हैं। निम्न वर्ग के अंतर्गत धनिया, झुनिया, सकीना, मुन्नी आदि पात्र आते हैं। आभिजात्य वर्ग की नारियों में जाह्नवी देवी अपवाद स्वरूप हैं।

'रंगभूमि' उपन्यास में देश–प्रेम की भावना एवं कर्तव्यनिष्ठा उनके चारित्रिक गुणों के रूप में उभरकर आई हैं। इसी उपन्यास की अन्य आभिजात्य वर्गीय पात्र सोफिया का हृदय क्षमा, दया, करुणा, उदारता, मानवता जैसे गुणों से परिपूर्ण है। 'बड़े घर की बेटी' कहानी की आनंदी भी सहनशीलता और क्षमा जैसे उच्चादर्शों से युक्त दिखाई देती है। जहाँ एक ओर प्रेमचंद ने इस वर्ग की नारियों के आदर्शवादी चरित्र का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर उन्हें विलासिता, ऐन्द्रिकता, शोषण, क्रूरता जैसी प्रवृत्तियों में संलिप्त दिखाया है। उदाहरणार्थ 'कायाकल्प' की

देवप्रिया और 'प्रेमाश्रम' की गायत्री।

मध्यवर्ग अभिशप्त वर्ग के रूप में जाना जाता है। न वह उच्च वर्ग के समान साधन–सम्पन्न है और ना ही किसानों की भाँति नितान्त साधन–विहीन। प्रेमचंद ने नारी–वर्ग की जिन समस्याओं पर प्रकाश डाला है वे अधिकांशतः मध्यमवर्गीय नारियों की अपनी ही समस्याएँ हैं। 'तेंतर' तथा 'नैराश्य' कहानियों में इस वर्ग के स्त्री–पुरुषों द्वारा कन्याओं की बाल्यकाल से ही की जाने वाली उपेक्षा का चित्रण हुआ है।

'उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी–पीकर कोसने, कलमुँही है, कलमुँही! न जाने क्या करने आई है यहाँ।'[2]

बाल–विवाह और उसके दुष्परिणामों को उन्होंने 'नैराश्य लीला' तथा 'धिक्कार' जैसी कहानियों में दिखाया है। 'कुसुम' कहानी तथा 'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय समाज को घुन की तरह खोखला कर रही दहेज जैसी कुप्रथा तथा उसके दुष्परिणामों का यथार्थ वर्णन किया है। इसी प्रकार 'शिकार' कहानी की रानी वसुधा, 'कायाकल्प' उपन्यास की रानी रोहिणी तथा 'गबन' उपन्यास की रतन के माध्यम से उन्होंने कन्या–विक्रय द्वारा आर्थिक अभावों की पूर्ति तथा कन्यादान द्वारा महत्त्वशाली गौरव प्राप्त करने की इस वर्ग की अभिलाषा को प्रकट किया है। मध्यवर्गीय नारी की अधिकारहीनता तथा आर्थिक पराधीनता के चित्र भी प्रेमचंद के कथा–साहित्य में देखे जा सकते हैं।

निम्न वर्ग के अंतर्गत प्रेमचंद के साहित्य में तीन प्रकार की नारियों का उल्लेख मिलता है। पहली वे हैं जो जमींदारों, उनके कारिंदों, पटवारियों तथा साहूकारों के शोषण की शिकार हैं। जैसे 'पूस की रात' कहानी की मुन्नी और 'गोदान' की धनिया। दूसरी नारियाँ भूमिहीन निम्न–वर्ग के श्रमजीवी मजदूरों की पत्नियाँ हैं जो उच्चवर्गीय लोगों की विलास–तृष्णा व अस्पृश्यता की कुत्सित भावना से त्रस्त हैं। जैसे 'सती' कहानी की मुलिया, 'सद्‌गति' कहानी की झुरिया और 'गोदान' उपन्यास की सिलिया व कलिया। तीसरे प्रकार की नारियाँ वे हैं जिनके पति या वे स्वयं मिल में मजदूरी करती हैं। उदाहरणार्थ 'डाभुल का कैदी' कहानी की बिन्नी तथा 'गोदान' की झुनिया। यद्यपि झुनिया के जीवन का अधिकांश भाग क्षुधा और संताप में ही व्यतीत होता है, फिर भी जीवन पर्यंत उसकी यही इच्छा बनी रहती है कि किसी तरह कर्ज और लगान के भार से वह मुक्त हो जाए। इस वर्ग की नारियों में सम्मानजनक एवं सुखमय जीवन जीने की प्रबल आकांक्षा है किन्तु सामाजिक व्यवस्था के कारण वे ऐसा करने में अक्षम रहती हैं। प्रेमचंद के कथा–साहित्य में विषम परिस्थितियों में भी इनका चारित्रिक पतन कहीं नहीं हुआ है।

'सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन–सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्ब नहीं है।'[3]

वस्तुतः इन नारियों की चारित्रिक निष्ठा ही उनके साहित्य की वह अमूल्य निधि है जिसमें भारतीय नारी का आत्मगौरव अंतर्निहित है।

प्रवृत्तियों अथवा गुणों के आधार पर प्रेमचंद के नारी पात्रों को अनेक रूपों में बाँटा जा सकता है :– प्रेमिका रूप, परिणीता रूप, मातृ रूप, राष्ट्रसेविका रूप, विधवा रूप, कामिनी रूप आदि। उनके कथा–साहित्य में नारी के प्रेमिका रूप का वर्णन अत्यंत गरिमापूर्वक हुआ है। प्रेमचंद ने प्रेमी नारियों को प्रेमी पुरुषों की अपेक्षा अधिक

निश्छल, त्यागमय, सहनशील तथा एकनिष्ठ चित्रित किया है। अनेक कहानियों– 'आगा पीछा', 'कायर', 'त्यागी का प्रेम', 'दो कब्रें', 'मिस पद्मा' तथा उपन्यासों– 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'कायाकल्प', 'वरदान', 'रंगभूमि' में जहाँ प्रेमी युवक समाज द्वारा उत्पन्न बाधाओं से भयभीत होकर स्वयं को प्रेम–निर्वाह कर पाने में असमर्थ पाते हैं, वहीं युवतियाँ बड़े से बड़े कष्ट सहकर भी प्राणपण से अपने प्रेम का निर्वाह करती हैं।

'सहसा सकीना ने उसका हाथ पकड़कर रोते हुए कहा– बाबूजी, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। जिन्हें अपनी आबरू प्यारी है, वह अपनी आबरू लेकर चाटें। मैं बे–आबरू ही रहूँगी। अमरकान्त ने हाथ छुड़ा लिया और आहिस्ता से बोला– जिंदा रहेंगे, तो फिर मिलेंगे सकीना! इस वक्त जाने दो। मैं अपने होश में नहीं हूँ।'[4] परिणीता रूप के अंतर्गत प्रेमचंद के उन नारी पात्रों को रखा जा सकता है जिनकी रेखाएँ पत्नी–रूप में अधिक उभरी हैं। इस रूप को पाँच प्रकार से देखा जा सकता है– आदर्श पत्नी रूप, साधारण पत्नी रूप, सपत्नी रूप, तिरस्कृता रूप तथा भाव–परिणीता रूप। प्रेमचंद की दृष्टि में आदर्श पत्नियाँ वे हैं जो सहनशील एवं सतीत्व–शक्ति से आभासित हैं। उनके नारी पात्रों में इन्हीं की संख्या सर्वाधिक है। 'रंगभूमि' की कुल्सुम, 'गबन' की जालपा, 'प्रेमाश्रम' की श्रद्धा, 'दो सखियाँ' की चंदा, 'न्याय' की जैनब आदि नारी पात्रों को इस कोटि में रखा जा सकता है। साधारण पत्नियाँ वे हैं जो स्वार्थों, संकीर्णताओं और अंधविश्वासों से तो युक्त हैं ही तथा जिनके लिए पारिवारिक आधिपत्य पति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसे 'वरदान' की प्रेमवती, 'गबन' की मानकी व जागेश्वरी, 'कौशल' कहानी की माया, 'बूढ़ी काकी' की रूपा। सपत्नी रूप का बहुत कम चित्रण प्रेमचंद के कथा–साहित्य में हुआ है। ये सभी नारियाँ पतिव्रता तो हैं किन्तु ईर्ष्या एवं मान–भावना से ग्रस्त भी हैं। उदाहरणार्थ 'कायाकल्प' की रोहिणी तथा 'सौत' की गोदावरी। तिरस्कृता–चित्रण में प्रेमचंद ने नारी पात्रों को निरीह व परिस्थितियों से जूझने वाले रूप में चित्रित किया है और इस तिरस्कार का कारण कभी पुरुष में खोजा है तो कभी सामाजिक असमानता में। 'निर्मला' उपन्यास की 'निर्मला तथा 'निर्वासन' कहानी की मर्यादा इसी श्रेणी में आती हैं। भाव–परिणीता रूप के अंतर्गत वे नारियाँ आती हैं जिनका विवाह सामाजिक रीति–रिवाजों के अनुसार न होकर पारस्परिक आकर्षण के कारण हो जाता है। इसीलिए उन्हें आजीवन संघर्ष और मानसिक द्वंद्व झेलने पड़ते हैं। जैसे 'कायाकल्प' की लौंगी।

विश्व भर में जितने भी संबंध हैं, उनमें माँ और संतान का संबंध सबसे मधुर एवं पवित्र है। अपनी संतति से जितना प्रेम माँ करती है, उतना कोई अन्य नहीं कर सकता।

प्रेमचंद के अनुसार :–

'माता के प्रेम में बच्चे का हृदय इतना परितुष्ट रहता है कि अनागत की चिंता और बाधाएँ उसे जरा भी भयभीत नहीं करती हैं। उसे अपने अंतःकरण में एक अलौकिक शक्ति का सदैव आभास होता है। उसी से वह समस्त बाधाओं को परास्त कर देता है।'[5]

प्रेमचंद के नारी पात्रों में तीन प्रकार के मातृ–रूप पाए जाते हैं– सहज वत्सल मातृ–रूप, विशिष्ट मातृ–रूप व यथाविश्रुत विमाता–रूप। सहज वत्सलाओं में पुत्रवती माताओं के अतिरिक्त पुत्रहीना विधवाएँ, मातृहृदया सेविकाएँ तथा वे विमाताएँ आती हैं जो दूसरों की संतानों से भी स्वसंतान सदृश प्रेम करती हैं। यथा 'गबन' की जग्गो, 'ईदगाह' की अमीना, 'माता का हृदय' की माधवी, 'बेटों वाली विधवा' की फूलमती।

'फूलमती छाती पीटते हुए बोली– कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते–जी तुम्हें कौन गिरफ्तार

कर सकता है! उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए! जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोंकूँगी!'[6]

विशिष्ट मातृ–रूप के अंतर्गत वे नारियाँ आती हैं जिनकी इच्छा है कि उनके पुत्र उच्छृंखल तथा स्वच्छंद प्रेम–प्रसंगों में न पड़कर कर्त्तव्य, साहस और देश–प्रेम की भावना से पूर्ण हों। इनमें 'रंगभूमि' की जाह्नवी तथा 'धिक्कार' की पुजारिन प्रमुख हैं। विमाता–रूप का चित्रण प्रेमचंद ने अपनी कहानियों व उपन्यासों में यत्र–तत्र ही किया है। उदाहरणार्थ 'गृहदाह' कहानी की देवप्रिया।

राष्ट्रसेविका के रूप में प्रेमचंद के नारी–पात्रों ने सशक्त भूमिका का निर्वाह किया है। उनके द्वारा चित्रित नारियों में कुछ वे हैं जो राष्ट्र के प्रति राग, उत्साह एवं त्याग की भावना तो रखती हैं किन्तु उनका कर्मक्षेत्र घर तक ही सीमित रहता है। प्रेमचंद के अधिकांश नारी–पात्र राष्ट्र–सेवा के लिए गार्हस्थ्य जीवन से बाहर निकलकर सक्रिय योगदान देते हैं। ये पात्र त्याग, कर्तव्य, राष्ट्र–प्रेम तथा बलिदान की भावना से ओत–प्रोत हैं। 'कर्मभूमि' उपन्यास की सुखदा, नैना और 'जेल' कहानी की मृदुला ऐसे ही नारी–पात्र हैं। प्रेमचंद ने अपने कथा–साहित्य में देशभक्त स्त्रियों को अत्यधिक महत्व दिया है। ये नारियाँ केवल स्त्रियों में ही नहीं वरन् आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों में भी देशभक्ति की शक्ति का संचार करती हैं। जन–जागरण उनके इस प्रकार के चित्रण का मुख्य उद्देश्य है।

प्रेमचंद ने अपनी कृतियों में विधवा नारियों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी एवं हृदयविदारक चित्रण किया है। उनके कुछ प्रौढ़ा विधवा नारी–पात्र ऐसे हैं जो आर्थिक रूप से सशक्त हैं तथा जिनके पास जीने के लिए सुसंस्कृत आधार भी उपलब्ध हैं। जैसे 'कर्मभूमि' की रेणुका, 'कायाकल्प' की वागीश्वरी आदि। प्रेमचंद ने ऐसी नवयौवना विधवाओं का भी चित्रण किया है जो जीवन पर्यंत वैधव्य के कठोर दंश को झेलने के साथ–साथ अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का भी सामना करती हैं तथा आजीवन दुःख झेलती हैं। 'नैराश्य लीला' की कैलासकुमारी तथा 'प्रेमाश्रम' की गायत्री ऐसे ही नारी–पात्र हैं। प्रेमचंद विधवा–पुनर्विवाह के प्रबल समर्थक थे इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में कई स्थानों पर विधवा–पुनर्विवाह का भी उल्लेख किया है। 'सुभागी' की सुभागी तथा 'गोदान' की झुनिया के चित्रण में उनके इसी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में नारी के विधवा–रूप के साथ–साथ उसके कामिनी–रूप के भी चित्र उकेरे हैं। 'धर्मसंकट' की कामिनी, 'गोदान' की सरोज व नोहरी और 'लांछन' की देवी ऐसे ही नारी–पात्र हैं।

वेश्यावृत्ति किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व धार्मिक उन्नति में बाधक है। यद्यपि स्त्री के इस श्यामल पक्ष का उत्तरदायी समाज स्वयं है, तथापि पुरुष–प्रधान समाज उसे ही पतिता की श्रेणी में रखता है। वेश्यावृत्ति की निंदा समाज सुधारकों ने ही नहीं वरन् साहित्यकारों ने भी की है। यही कारण है कि प्रेमचंद ने भी अपने साहित्य में इस समस्या की विस्तृत चर्चा की है। उनके कथा–साहित्य में वर्णित वेश्या नारी–पात्रों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– 1. अपरिष्कृत वेश्या नारी–पात्र, 2. परिष्कृत वेश्या नारी–पात्र। अपरिष्कृत वेश्याएँ वे हैं जो जीवन पर्यंत वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश हैं तथा प्रगाढ़ इच्छा होने पर भी इस कुवृत्ति से स्वयं को मुक्त नहीं कर पातीं। उदाहरणतः 'वेश्या' कहानी की माधुरी, 'गबन' उपन्यास की जोहरा तथा 'सेवासदन' उपन्यास की सुमन।

'यदि उस निर्दय मनुष्य ने अपनी बदनामी के भय से मेरी अवहेलना न की होती तो मुझे इस पापकुण्ड

में कूदने का साहस न होता। अगर वह मुझे चार दिन भी पड़ा रहने देते तो कदाचित् मैं अपने घर लौट जाती अथवा वह (गजाधर) ही मुझे मना ले जाते, फिर उसी प्रकार लड़–झगड़कर जीवन के दिन काटने–कटने लगते।'[7]

प्रायः मनुष्य जीवन की अनुकूल परिस्थितियों में आदर्शात्मक मूल्यों को अपनाकर सीधे–सच्चे मार्ग पर चल पाने में समर्थ हो जाता है, पर जैसे ही परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं उसके लिए ऐसा कर पाना कठिन हो जाता है। किंतु प्रेमचंद द्वारा चित्रित परिष्कृत वेश्याएँ विषम परिस्थितियाँ आने पर भी हिम्मत नहीं हारतीं और इसलिए स्वयं को इस दलदल से निकालने में सफल हो पाती हैं। लेखक ने इन नारी–पात्रों में कुलीन स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उदात्त भावों की सृष्टि की है। 'आगा पीछा' कहानी की कोकिला को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। वस्तुतः नारी का चरित्र कैसा भी हो, प्रेमचंद ने उसका चित्रण बड़ी ही संवेदनशीलता एवं सहृदयता से किया है। वे यह स्वीकार नहीं करते कि वेश्यावृत्ति की समस्या से मुक्ति पाना संभव नहीं है। उनके अनुसार नैतिक मूल्यों को अपनाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

संक्षेपतः प्रेमचंद ने अपने कथा–साहित्य में नारी के यथार्थ एवं आदर्श से सम्मिश्रित जिस रूप का चित्रण किया है, वह उनके लोक मंगलकारी दृष्टिकोण का परिचायक है। उनकी नारी–भावना में व्यापकत्व, व्यावहारिकता, मानव–सुलभ चिंतन एवं सहानुभूति आदि गुण विद्यमान हैं। प्रेमचंद के नारी–पात्र मानवीय शाश्वत प्रवृत्तियों से युक्त हैं, उनमें गुणों के साथ–साथ मानव–सुलभ दोष एवं दुर्बलताएँ भी दिखाई देती हैं। इसीलिए वे कहीं भी प्रस्तर मूर्तियों के समान प्रतीत नहीं होतीं। उनके अधिकांश नारी–पात्र वात्सल्य, कर्तव्यनिष्ठा, समर्पण, एकनिष्ठ प्रेम तथा विवेक–बुद्धि से संपन्न हैं। प्रेमचंद की नारी–विषयक अवधारणा का महत्व इस दृष्टि से है कि उसने हिंदी कथा–साहित्य में युगान्तर तो उपस्थित किया ही है, साथ ही भारतीय समाज में नारी की प्रतिष्ठा को स्थायित्व भी प्रदान किया है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ० इंद्रनाथ मदान, प्रेमचंद : एक विवेचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण 2018, पृष्ठ 177
2. मुंशी प्रेमचंद, मानसरोवर भाग–3, सरस्वती प्रेस बनारस, छठवाँ संस्करण 1947, पृष्ठ 107
3. मुंशी प्रेमचंद, गोदान, सरस्वती प्रेस, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण 1961, पृष्ठ 252
4. मुंशी प्रेमचंद, कर्मभूमि, हंस प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 1932, पृष्ठ 129
5. मुंशी प्रेमचंद, कर्मभूमि, हंस प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 1932, पृष्ठ 135
6. मुंशी प्रेमचंद, मानसरोवर भाग–1, सरस्वती प्रेस बनारस, छठवाँ संस्करण 1947, पृष्ठ 76
7. मुंशी प्रेमचंद, सेवासदन, हंस प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण 1919, पृष्ठ 111

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 164-167

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भण्डारी की कहानियों में पारिवारिक विघटन

मीर जाहिदुल इसलाम
सहकारी अध्यापक, हिन्दी विभाग
मध्य कामरूप महाविद्यालय, शुभा।

आधुनिक कालीन गद्य–विधाओं में कहानी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आरंभ में यह विधा परिकथाओं की काल्पनिक दुनिया में आवद्ध थी, पर स्वतंत्रता संग्राम व सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण यह धीरे–धीरे आम इन्सानों से संबन्धित हुई, जो आगे चलकर जनसाधारण के जीवन को चित्रित करने में सशक्त भूमिका में सामने आया।

सन साठ के बाद की कहानी तो अपने परिवेश के बहुत ही जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती है। महत्त्व की बात यह है कि परिवेश के चित्रण में हिन्दी–कहानी वास्तविकताओं से हमारा साक्षात्कार करती चलती है। औद्योगिकरण के कारण गाँव उजड़ रहे थे और नगर महानगर बन रहे थे। महंगाई बढ़ रही थी, युवक बेरोजगारी में पिस रहे थे। इन सब कारणों से पारिवारिक रिश्तों में बदलाव आने लगा। मध्य वर्ग की जिन्दगी बदतर हो गई। इस कारण पारिवारिक सदस्यों में सहनशीलता और आत्मत्याग की भावना समाप्त हो गई है। निजी स्वार्थों के केन्द्र में आ जाने से सन्बन्धों का विघटन बहुत तेजी से होने लगा। तलाक, दाम्पत्य संबंधों में तनाव, स्वच्छन्द यौनाचार, अलगाव जैसी प्रवृत्तियाँ परिवार की विघटनमयी स्थितियों को प्रकट करने लगी। समाज की इस भयावह परिवर्तनमान परिस्थिति के प्रभाव का हिन्दी कहानी लेखिकाओं की कहानियों में किया गया है।

औद्योगिकरण और नगरीकरण ने नारी शिक्षा–दीक्षा को अभूतपूर्ण प्रोत्साहन दिया है। महानगरों में पुरूष के साथ–साथ नारी को भी आजीविका अर्जित करने के लिए विवश होना पड़ा। मध्यवर्ग की महिलाएँ अधिकाधिक शिक्षित होकर जीवन में संघर्ष करने लगी। कुछ महिलाएँ लेखिका के रूप में जीवन यर्थाथ को अपनी कहानियों के माध्यम से प्रतिपादित करने लगा। मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, शिवानी, मालती जोशी, कृष्णा सोवती आदि महिला कहानीकारों में पारिवारिक विघटन के स्वर सुनाई देने लगती है। इस पारिवारिक विघटन अविश्वास, असमानता, दूर्व्यवहार, आर्थिक विषमता एवं आर्थिक सम्पन्नता के कारण उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में मन्नू भण्डारी की कुछ कहानियों में पारिवारिक विघटन की समस्याओं के अभिव्यक्ति को समझने और परखने की कोशिश की गई है।

मन्नू भण्डारी समकालीन कहानीकारों में से एक सशक्त नाम है। उनकी कहानियों में नारी–जीवन के उन अन्तरंग अनुभवों को विशेष रूप से अभिव्यक्ति दी गई है जो उनके नितांत अपने हैं और पुरूष कहानीकारों की रचनाओं में प्रायः नहीं मिलते। वैसे मन्नू भण्डारी ने अपने अन्य समकालीन समर्थ लेखकों की तरह ही लगभग

सभी पहलुओं पर सशक्त कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानी "एखाने आकाश नाई" में पारिवारिक व्यवस्था का जो अभिव्यक्ति की गयी है, वह चाची के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है। चाची चाहती है कि जैसे पहले परिवार में उपेक्षित नारी अपना जीवन व्यतीत कर लेती थी, वैसे ही सब लोग उसे स्वीकार करें, परन्तु उसकी जेठानी उसे बड़ी ही घृणा व संशय की निगाहों से देखती है। पति द्वारा उपेक्षिता नारी सबके द्वारा उपेक्षित की जाती है। यही बात इस कहानी में खोलकर सामने आता है। साथ ही इस कहानी में लेखा की जिठानी संयुक्त परिवार में रहने के कारण हमेशा अपने को कोसती रहती है। उनके व्यवहार से परिवार के सभी सदस्य दुःखी रहती है। लेखा से उसकी सास कहती है – "बहु बड़ी के लक्खन तो तुम देख ही रही हो। उठते–बैठते कोसती है। उसे तो घर के हम सब जहर लगे है। हमें तो भई उससे अब कोई उम्मीद नहीं रही। – हम तो हार गए।"[1] देवर–देवरानी का बाहर रहना, उनका एक तरफ तो आकर्षित करता है और दूसरी तरफ उनके लिए भाभी के मन में कड़वाहट भी भर जाता है। बात–बात पर लेखा को व्यंग में दिया गया उत्तर उनकी इसी भावना को स्पष्ट करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस आधुनिक युग में व्यक्ति संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करते, जिसके फलस्वरूप पारिवारिक विघटन की संभावना होती है।

हमारे परिवार में पहले आर्थिक रूप से कमजोर या बेकार व्यक्ति व उसका परिवार भी पूरा संरक्षण में रहते थे। परन्तु टुटते हुए परिवारों के साथ दूसरों का दुःख बाँट ने की भावना भी समाप्त होती जा रही है। मन्नू भण्डारी की 'सजा' नामक कहानी में इसका चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। आर्थिक विषमता के कारण पारिवारिक सम्बंधों में जो दरार पैदा होती है उसका भी चित्रण मन्नू भण्डारी जी अपनी कहानी में किया है। कभी ये दुरियाँ संबन्धों में, कभी आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों के कारण तो कभी आर्थिक हीनता ही इसका कारण बनती है। "इनकमटैक्स और नींद" में दयाल अपनी भतीजी से अपनी विपन्नता छुपाने और उनकी उन्नति और आधुन्कता की जड़ें खोदने के लिए तरह–तरह के झुठ बोलते है। वे अपने पुत्र से कहते है – "देखो महिमा तुन्हारी बराबरी का बहन है, फिर भी अब जरा बड़ी हो गई है। सो बहुत घूल–मिलकर बातें मत करना जरा.....मेरा मतलब हंसो, बोलो पर यह नहीं कि अपनी सारी–की–सारी बातें बताते रहो या उसकी खोद–खोदकर पूछो। सच बात यह है कि अब हमारे वैसे सम्बन्ध रहे नहीं.....तुम समझ गए होगे.....।"[2] बड़ों का व्यवहार ही जब सम्बन्धों के समाप्त होने का संकेत देता है तो उन बच्चों से जो शुरू से ही अलग हैं, किस तरह के लगाव या पारिवारिक प्रेम की अपेक्षा कैसे की जा सकती है।

आर्थिक सम्पन्नता द्वारा सम्बन्धों के बिगड़ने का उदाहरण मन्नू भण्डारी की "नकली हीरे" कहानी में मिलता है। बड़ी बहन सरन अपनी छोटी बहन को लेने स्टेशन सिर्फ इसलिए नहीं जाती क्योंकि वह एक बहुत बड़े व्यापारी की पत्नी है और उसकी बहन के पति स्कूल मास्टर हैं। वह अपनी सहेली से कहती है– 'भई, कुछ भी हो, अपनी 'प्रेस्टीज' और 'पोजीशन' का कुछ तो ख्याल रखना ही पड़ता है। अब नौकर, ड्रावर सबके सामने वह थर्ड–क्लास से उतरती या सेकिण्ड में से उतरती.....मुझे तो बड़ा ऑकवर्ड लगता....।'[3] उसे अपने और अपने पापा की सम्पन्नता के सामने सभी कुछ हीन नजर आता है। कहती है– "....पर आदमी की 'पोजीशन' भी तो कुछ होती है। कहाँ पापा एक बड़ी स्टेट के 'एक्सप्राइम–मिनिस्टर' और कहाँ एक फटीचर स्कूल मास्टर। 500 रूपये तो यह अपने जेब–खर्च के लिए लेती थी और अब इतने में सारी गृहस्थी चलानी पड़ती होगी।"[4] बहन की साधारण हैण्डलूम की साड़ी उन्हें नौकरों के सामने अपदस्थ करने लगती है। अतः स्पस्ट यह है कि मन्नू

जी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार आर्थिक सम्पन्नता के कारण परिवार विगड़ने लगते है।

स्वभाव की असमानता भी परिवार के सदस्यों को एक–दूसरे के दूर कर देती है। "बांहों का घेरा" कहानी में कम्मी की सास का स्वभाव अपने बड़े बेटे के परिवार में किसी भी सदस्यों से नहीं मिलता, इसलिए वे अपनी छोटे बेटे के परिवार के साथ रहती है। माँ जी अपने बड़े बेटे के परिवार के लिए कहती हैं– "इस घर में लाज शरम तो रह ही नहीं गई है। इस लड़के ने तो सारे घर को ऐसा बिगड़ा है कि–।"[5] इस उदाहरण से यह पता चलता है कि कोई भी एक–दूसरे से खुश नहीं है। माँ जी न सिर्फ बेटे से बल्कि उसके पूरे परिवार से नाराज है और बड़े बेटे का पुरा परिवार माँ जी से। इस का कारण स्वभाव की असमानता ही है।

पारिवारिक दुर्व्यवहार के कारण भी परिवार में विघटन पैदा होता है। "नशा" कहानी में आनन्दी जब विवाह के बाद ससुराल आती है तो दो दिन में ही नयापन उतारकर उसे घर के कामों में लगना पड़ता है। कभी माँ व पिता को याद करके रोने लगती है तो सास उसे बातें सुनाते हैं। भारतीय समाज में यह दृश्य अक्सर ही देखने को मिलते हैं, "संख्या पार" कहानी में प्रमीला की माँ को उसके ससुराल वाले बेच देते हैं और उड़ा देते हैं कि वह भाग गयी। इस बात से प्रमीला के नाना बिना सत्य जाने ही कहते हैं– "दाने–दाने को मुहताज है तो भीख मांगे..... जैसा किया उसका वैसा ही फल मिलना था। मैं उसे इस घर में नहीं आने दूंगा...।"[6] ससुराल वालों का रिश्ता ही बड़ी नाजुक डोर से बंधा होता है उसमें तो अक्सर दुर्व्यवहार की बातें सुनने को मिलती हैं परन्तु बेटी के दुःख में भी उससे दुर्व्यवहार करने वाले पिता कम ही मिलते हैं।

अविश्वास और गलत व्यवहार से भी परिवार के सदस्यों में दूरिया ला देते हैं। "तीन निगाहों की एक तस्वीर" में नैना की माँ अपनी उसी छोटी बहन को जिसे वे बहुत प्यार करती थी, इसलिए त्याज्य समझ लेती है क्योंकि उसके पति ने अविश्वास के कारण उसे घर से निकाल दिया है। असली बात जानने या उसके व्यवहार का कारण समझने की भी कोई जरूरत नहीं महसूस करता। नैना जब मौसी के पास जाने के लिए कहती है तो माँ उत्तर देती है– 'देख, नैना। उस छिन्नाल के घर तू मत जा। वह मत रही है तो मरने दे। मैंने तो सात साल पहले ही उसे मरा समझ लिया था। जिद करके तू वहाँ चली गयी, तो समझ लेना, माँ तेरे लिए मर गयी।'[7] इससे स्पष्ट होता है कि हमारे परिवार में अविश्वास और गलतफहमी के कारण सभी रिश्ते खत्म हो जाते हैं।

उपयुक्त विवेचन के बात हम निष्कर्ष रूप में यही कह सकते है कि मन्नू भण्डारी जी की कहानियों में भारतीय समाज में घटित नारी जीवन की घटनाओं का मार्मिक चित्रण किया है कि किस प्रकार हमारे परिवार में पारिवारिक विघटन होते हैं और जिसका प्रभाव जीवन में बड़े कारूणिक तरीके से पड़ता है। न सिर्फ प्रभाव पड़ता है बल्कि उसका दोषारोपण भी उन्ही पर किया जाता है। समाज नारी की इस पीड़ा को समझने के बजाय उस पर लांछन लगाते हुए अपना हाथ छुड़ाना चाहता है जिसकी चर्चा या विश्लेषण मन्नू भण्डारी के कहानियों में देखने को मिलता है। वैसे तो मन्नू जी की कहानी का उद्देश्य भी नारी की कोमल अधुरी भावनाओं की मार्मिक अभिव्यंजना तथा जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्र में घटित होने वाली विविध घटनाओं का चित्रांकन है।

सन्दर्भ सूची :–

1. मन्नू भण्डारी, मेरी प्रिय कहानियाँ– पृष्ठ–70
2. वही – यही सच है, पृष्ठ–122–123

3. वही – यही सच है, पृष्ठ– 81
4. वही – यही सच है, पृष्ठ– 83
5. वही – यही सच है, पृष्ठ– 110
6. वही – एक प्लेट सैलाव, पृष्ठ– 97
7. वही – तीन निगाहों की एक तस्वीर, पृष्ठ–13

सहायक ग्रन्थ-सूची :-

1. शर्मा, डॉ. मंजु साठोत्तरी महिला कहानीकार (पारिवारिक विघटन के संदर्भ में), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110002, 1992.
2. भण्डारी, मन्नू, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1973
3. भण्डारी, मन्नू, यही सच है, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1972
4. भण्डारी, मन्नू, एक प्लेट सैलाव, दिल्ली, 1968

Mobile No: +919864314756

Email: mirjahidul09@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 168-173

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'फिर उगना' के बहाने आदिवासी चेतना की पुनर्रचना

ज्ञानदीप गौतम

सहायक प्रध्यापक, पूर्णिया कॉलेज, पूर्णिया।

समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य निरंतर विस्तार और पुनराविष्कार की प्रक्रिया में है। पारंपरिक संवेदनाओं और आधुनिक अनुभवों के इस संगम में अब वे स्वर भी तेजी से उभर रहे हैं, जो सदियों तक 'हाशिए' पर बने रहे। इन्हीं स्वरो में एक सशक्त और आत्मविश्वास से भरा नाम है – डॉ. पार्वती तिर्की, जिनका पहला काव्य संग्रह 'फिर उगना' वर्ष 2023 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह न केवल एक साहित्यिक उपलब्धि है, बल्कि एक सांस्कृतिक दस्तावेज भी है, जो आदिवासी जीवन, संवेदना, भाषा और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करता है। 'फिर उगना' केवल कविता संग्रह नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की कथा है – एक ऐसी भाषा और संस्कृति की वापसी है जो बिना किसी कृत्रिमता के अपनी मौलिकता में जीना चाहती है। पार्वती तिर्की, जो स्वयं कुडुख आदिवासी समुदाय से आती हैं, उनकी कविताएँ किसी शहरी बौद्धिक विमर्श का हिस्सा नहीं, बल्कि धरती, जंगल, चिड़ियाँ और स्त्रियों की आत्मा से निकली आवाजें हैं। इन कविताओं में वह प्रकृति नहीं है जिसे शहरी कवि दृष्टव्य के रूप में चित्रित करते हैं, बल्कि वह जीवंत परिवेश है जिसमें जीवन साँस लेता है।

"हाँ!
जीवन...
मृत्यु के बाद जीवन"[1]

यह संग्रह विशेषतः इस कारण भी उल्लेखनीय है कि यह हिंदी कविता को एक नवीन भूगोल और भाषिक–मानसिक चेतना प्रदान करता है। हिंदी साहित्य में अब तक आदिवासी चेतना को आमतौर पर 'विषय' के रूप में देखा गया, न कि 'स्वर' के रूप में। लेकिन पार्वती तिर्की की कविताएँ इस रेखा को तोड़ती हैं। वे हाशिए की लेखिका नहीं, बल्कि केंद्र में खड़ी कवि हैं, जिनकी दृष्टि में 'धरती' और 'देह', 'पेड़' और 'प्रेम', 'चाँद' और 'चेतना' – सब एक साथ सांस लेते हैं। संग्रह का शीर्षक 'फिर उगना' ही अपने भीतर एक दृढ़ जिजीविषा और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का संकेत देता है। यह 'उगना' केवल वनस्पति या मौसम की प्रक्रिया नहीं है – यह पीढ़ियों से दबे हुए स्वरों का फिर से बोलना है। यह उस समाज की चेतना है जिसे इतिहास, राजनीति और साहित्य – तीनों ने उपेक्षित किया, पर जो आज अपने स्वर और शैली में कह रहा है :–

'हम थे, हैं और रहेंगे।'[2]

इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह 'अन्य' की तरह खुद को नहीं प्रस्तुत करता। यहाँ

आदिवासी जीवन को 'अलग' या 'अद्भुत' बना कर दिखाने की प्रवृत्ति नहीं है। ये कविताएँ न तो आत्मदया में डूबी हुई हैं, न विद्रोह की शोरगुल वाली बयानबाजी में। ये कविताएँ अपने आप में संतुलित हैं – संवेदनशील, सघन और सधी हुई। यही संतुलन पार्वती को समकालीन कविता में विशिष्ट बनाता है। 'फिर उगना' की कविताएँ उस मौखिक परंपरा की स्मृतियाँ हैं, जो किताबों में नहीं, गाँवों की मिट्टी, जंगलों की नमी और गीतों की लय में जीवित रहती हैं। इसमें 'खेखेल' जैसी कविताएँ आदिम सृष्टि–कथा को समकालीन चेतना में रूपांतरित करती हैं। यह परंपरा को संग्रहालय में रखने की कविता नहीं है, बल्कि परंपरा को आज के जीवन से जोड़ने वाली सक्रिय काव्यचेतना है। इस संग्रह को 2025 का साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार मिला और यह पुरस्कार केवल एक व्यक्ति को नहीं, बल्कि एक पूरे समुदाय की पहचान, भाषा और संघर्ष को सम्मानित करता है। यह पुरस्कार हिंदी साहित्य के लिए भी एक नई शुरुआत का संकेत है – जहाँ अब विविधता, बहुलता और समावेशन केवल नारे नहीं, बल्कि सर्जना के केन्द्र में हैं। अतः, फिर उगना की प्रस्तावना केवल एक कृति की चर्चा नहीं, बल्कि समकालीन हिंदी कविता के एक नए मोड़ की पहचान है – एक ऐसा मोड़ जहाँ कविता 'केन्द्र' की ओर से नहीं, धरती की नमी से, जंगल की ध्वनि से, और लोकजीवन की साँसों से निकलती है। डॉ. पार्वती तिर्की समकालीन हिंदी कविता में एक ऐसा नाम है जो अपनी गहराई, मौलिकता और सांस्कृतिक जड़ों के कारण विशेष रूप से पहचाना जा रहा है। वे न केवल एक कवयित्री हैं, बल्कि एक संवेदनशील अध्येता, शिक्षिका और आदिवासी समाज की प्रतिनिधि बौद्धिक हस्ती भी हैं। उनका जीवन और साहित्य, दोनों ही स्तरों पर, अपने समुदाय की स्मृति, संघर्ष और चेतना को मुखर करने का कार्य करते हैं।

पार्वती तिर्की का जन्म 16 जनवरी 1994 को हुआ। वे कुड़ुख जनजाति से ताल्लुक रखती हैं, जो झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों में निवास करने वाला एक प्रमुख आदिवासी समुदाय है। कुड़ुख भाषा और संस्कृति की परंपरा में पली–बढ़ी पार्वती ने बचपन से ही लोकगीतों, कहानियों और परंपराओं से गहरा जुड़ाव महसूस किया। यह जुड़ाव उनके साहित्य की जड़ों में बसा हुआ है। उन्होंने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर किया और इसके बाद पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उनका शोधकार्य और अकादमिक झुकाव भी हमेशा हाशिए के विमर्शों, विशेषकर आदिवासी साहित्य और संस्कृति की ओर रहा है। वर्तमान में वे हिंदी प्रध्यापक के रूप में कार्यरत हैं और राँची के निकटवर्ती क्षेत्र में शिक्षण के साथ–साथ रचनात्मक लेखन में भी संलग्न हैं। उनका पहला काव्य संग्रह 'फिर उगना' वर्ष 2023 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जो शीघ्र ही हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में देखा जाने लगा। इस संग्रह के लिए उन्हें 2025 में साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार से सम्मानित किया गया – यह केवल व्यक्तिगत सम्मान नहीं था, बल्कि एक सांस्कृतिक समुदाय की आवाज को राष्ट्रीय मंच पर पहचान दिलाने वाला क्षण था। पार्वती तिर्की की रचनाशीलता को यदि देखा जाए, तो यह केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुर्नस्मरण और प्रतिरोध की प्रक्रिया भी है। वे न तो केवल 'आदिवासी' कहलाने के लिए लिखती हैं, और न ही मुख्यधारा की स्वीकृति के लिए। वे लिखती हैं क्योंकि उनके अनुभव, उनकी भाषा, और उनकी स्मृति को साहित्य में दर्ज होना है – अपने पूरे सम्मान और आत्मविश्वास के साथ। उनके लेखन में केवल दर्द या संघर्ष नहीं, बल्कि सृजन, प्रेम, प्रकृति और मातृसत्ता का भी एक गहन बोध है। उनकी कविताएँ किसी भी 'करुणा' के आग्रह से परे जाकर गर्व और गरिमा से भरे जीवन का उद्घाटन करती हैं। वे दिखाती हैं कि आदिवासी समाज केवल शोषण का

प्रतीक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समृद्धि, जीवनदर्शन और वैकल्पिक आधुनिकता का स्रोत भी है। उनका लेखन समाजशास्त्रीय विमर्शों के लिए भी महत्वपूर्ण है। आदिवासी महिला लेखिका के रूप में वे न केवल लिंग और जाति, बल्कि भाषा और भूगोल के स्तर पर भी साहित्यिक सत्ता को चुनौती देती हैं। वे न केवल हिंदी में लिख रही हैं, बल्कि हिंदी को कुडुख जीवन दृष्टि से समृद्ध भी कर रही हैं। उनकी भाषा में गद्यात्मकता, लय और मौखिक परंपरा का अद्भुत संगम है, जिससे उनकी कविताएँ केवल पढ़ी नहीं जातीं – वे सुनी और अनुभव की जाती हैं। पार्वती तिर्की का साहित्य, विशेषकर फिर उगना, यह साबित करता है कि अब हिंदी साहित्य केवल कुछ गिने–चुने केन्द्रों से नियंत्रित नहीं होता। वह अब जंगलों, गाँवों और बोली–बालियों से होकर निकलता है – जहाँ शब्दों का जन्म मिट्टी, पानी, देह और स्मृति से होता है। पार्वती इसी नई हिंदी कविता की प्रतिनिधि हैं – एक ऐसी कवयित्री, जो अपने होने को न घोषणा बनाती हैं, न प्रार्थना – बल्कि उसे जीवन की तरह रचती हैं।

पार्वती तिर्की का काव्य–संग्रह फिर उगना एक ऐसे काव्य–शिल्प का उदाहरण है, जो न तो परंपरागत हिंदी काव्यशास्त्र की सीमाओं में बंधा है, और न ही पश्चिमी आधुनिकता की अनुकरणशील भाषा–रचना में सिमटा है। यह एक नई काव्य–भाषा की तलाश और स्वाभाविकता का उत्सव है – जिसमें लोक, प्रकृति, स्त्री और आदिवासी अस्मिता का गहन, परंतु सहज रूप से अभिव्यक्त अनुभव संसार समाया हुआ है।

"बारिश, चांद चांद और
आसमान का अकेला तारा
सुकरा!"[3]

इस संग्रह की भाषा और शिल्प पारंपरिक हिंदी कविता से अलग एक भिन्न अनुभव–जगत और अभिव्यंजनात्मक शैली को सामने लाते हैं। पार्वती तिर्की की भाषा किसी बौद्धिक प्रदर्शन या शिल्पीय चमत्कार की ओर नहीं झुकती, बल्कि वह जीवन की सीधी–सच्ची संवेदना से उपजी भाषा है। उनके यहाँ भाषा साहित्यिक प्रयोजन से उपजी हुई नहीं, बल्कि अनुभवजन्य है – एक ऐसी भाषा, जो लोकगीतों, किस्सों, कहावतों और रोजमर्रा की बातचीत से बनी है। उनकी कविताओं में हिंदी की मानकता के साथ–साथ कुडुख बोली के शब्द, स्थानीय मुहावरे और प्राकृतिक प्रतीक बिना किसी कृत्रिमता के घुल–मिल जाते हैं। जैसे कि कविता 'पिउवा' में 'पिउ' शब्द की पुनरावृत्ति केवल काव्य लय ही नहीं रचती, बल्कि एक आंतरिक longing (ललक) और मूलभूत सांस्कृतिक सन्दर्भ को भी उद्घाटित करती है।

'पिउवा, ओ पिउवा
कित हे लुक गेले रे...'।[4]

यहाँ 'पिउवा' शब्द महज संबोधन नहीं, बल्कि याद, खोज और बिछोह की सामूहिक चेतना का पर्याय बन जाता है। फिर उगना की कविताओं का शिल्प मूलतः मौखिक परंपरा से अनुप्राणित है। ये कविताएँ सिर्फ 'लिखने' के लिए नहीं रची गईं, बल्कि उनमें 'कहने' और 'सुनने' का भाव प्रमुख है। कविता 'खेखेल' में मिथकीय वर्णन और लयात्मकता मिलकर एक सुनने योग्य आख्यान रचते हैं :–

'सबसे पहले
पृथ्वी थी,

पृथ्वी के नीचे
कोई कुछ नहीं... ।[5]

इस प्रकार की सरल, लेकिन गूढ़ संरचना मिथकीय गाथाओं की याद दिलाती है, जहाँ भाषा सूचना नहीं देती, बल्कि अनुभव रचती है। पार्वती की कविताओं में लय का विशेष महत्व है। कई बार दोहराव के माध्यम से वे एक भाव या दृश्य की गूंज निर्मित करती हैं। यह गूंज न केवल श्रोताओं/पाठकों को भावात्मक रूप से जोड़ती है, बल्कि कविता की संरचना को भी गायनशील और लोकगीतात्मक बनाती है। उदाहरणस्वरूप, कविता 'फिर उगना' में शब्द 'फिर' की पुनरावृत्ति आशा, जिजीविषा और पुनर्जन्म की प्रतीकात्मकता को उभारती है :

'फिर उगेंगे बीज
फिर उगेगा एक विश्वास...' ।[6]

यह पुनरावृत्ति न केवल कविता में संगीतात्मकता लाती है, बल्कि उसके केंद्रीय भाव को भी मनोवैज्ञानिक दृढ़ता के साथ संप्रेषित करती है। पार्वती की काव्य–भाषा प्रतीकों और रूपकों से अलंकृत तो है, किंतु वह सजावटी नहीं, बल्कि प्राकृतिक और आत्मसात प्रतीक हैं।

उदाहरण के लिए–

धरती – केवल भूमि नहीं, बल्कि माँ, संरक्षिका और संस्कृति की जड़ है।

बीज – संघर्ष और पुनर्जन्म का प्रतीक।

पंछी – स्वतंत्रता और जड़ों की ओर लौटने की इच्छा का प्रतीक।

नदी और जंगल – जीवन की सततता और विरासत के वाहक।

इन प्रतीकों का चयन सहज और सजीव है, क्योंकि वे कवयित्री के अनुभव–लोक से निकले हैं – पुस्तकीय नहीं।

शिल्प के स्तर पर एक और विशेष बात यह है कि पार्वती की कविताओं में स्त्री–दृष्टि सिर्फ एक 'विषय' नहीं है, बल्कि उनकी रचना–दृष्टि का आधार है। 'माँ', 'नानी', 'बहन' जैसे शब्द बार–बार आते हैं, लेकिन दया या शोक के साथ नहीं – सम्मान और सशक्त उपस्थिति के साथ। उनकी कविताओं में स्त्री न तो केवल करुण पात्र है, न ही किसी विमर्श की आइकनय वह जीवन की वाहक, संस्कृति की संरक्षिका और सृजन की प्रतीक है। पार्वती तिर्की की भाषा और शिल्प को विश्लेषित करते हुए यह स्पष्ट होता है कि उनका काव्य स्थानीयता की सार्वभौमिकता में विश्वास करता है। वे न तो शिल्प की परंपरागत बंदिशों में बंधती हैं, और न ही आधुनिकतावादी शुष्कता की ओर झुकती हैं। उनके यहाँ एक ऐसी काव्य–भाषा है, जो मिट्टी की गंध, नदी की लय, जंगल की आत्मा और स्त्री की चेतना से गढ़ी गई है – एक ऐसी भाषा जो न तो केवल आदिवासी है, न शहरी – वह बस मानव और धरती की साझी संवेदना है।

पार्वती तिर्की के काव्य संग्रह फिर उगना की कविता "खेखेल" न केवल इस संग्रह की प्रमुख रचना है, बल्कि समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी सृष्टि–दृष्टि को प्रस्तुत करने वाला एक ऐतिहासिक पाठ भी है। यह कविता पारंपरिक सृष्टि–कथाओं की तरह एक मिथकीय कथा को प्रस्तुत करती है, परंतु इसका उद्देश्य केवल अतीत को स्मरण करना नहीं, बल्कि वर्तमान की सांस्कृतिक विस्मृति को चुनौती देना है। 'खेखेल' शब्द कुडुख भाषा की मौखिक परंपरा से आया है, जिसका अभिप्राय है – 'प्रथम स्त्री', 'मूल आदिम चेतना' या 'सृष्टि का आदि

स्रोत'। यह शब्द सिर्फ एक व्यक्ति नहीं, बल्कि जीवन की जननी, धरती की सर्जिका, सम्पूर्ण सृष्टि की स्त्री–अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है। कविता के माध्यम से पार्वती तिर्की भारतीय साहित्य में व्याप्त ब्राह्मणवादी सृष्टि–कथाओं के समांतर एक आदिवासी स्त्री–केन्द्रित सृष्टि आख्यान प्रस्तुत करती हैं। 'खेखेल' एक गाथा–कविता के रूप में रची गई है, जिसकी भाषा सरल, किंतु ध्वनि–प्रभाव वाली है। कविता की पंक्तियाँ मंत्र की तरह दोहरावयुक्त हैं, जिससे यह कविता कहे जाने, सुने जाने और गाए जाने की परंपरा में आती है। उदाहरणस्वरूप :

"सबसे पहले
पृथ्वी थी
पृथ्वी के नीचे
कोई कुछ नहीं था।"[7]

यह प्रारंभिक पंक्ति पाठक को एक ध्वन्यात्मक और वैचारिक शून्य से सृष्टि की ओर ले जाती है – एक ऐसी शुरुआत जो लोकगाथाओं की शैली में सृजन करती है। कविता 'खेखेल' सृष्टि की आदिकथा को स्त्री–केन्द्र से पुर्नस्थापित करती है। परंपरागत कथाओं में जहाँ सृष्टि 'ईश्वर' या 'पुरुष' से उत्पन्न होती है, यहाँ वह एक स्त्री के गर्भ से, धरती की कोख से उपजती है। 'खेखेल' न केवल सृष्टि को जन्म देती है, बल्कि उसे संरचित, पोषित और गतिशील भी बनाती है। यहाँ स्त्री केवल उद्‌गम नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन–चक्र की धुरी है – वह माँ भी है, प्रकृति भी, संस्कृति भी, और संघर्ष भी।

'उसने पेड़ बोए
उसने नदी बहाई
उसने आग सीखी...। [8]

इन पंक्तियों में स्त्री 'सिखानेवाली', 'बोनेवाली', 'बचानेवाली' बनकर सामने आती है। यह स्त्री आदिम है, पर निर्बल नहीं – वह द्रष्टा, कर्ता और संरचना की धुरी है।

'खेखेल' केवल एक सांस्कृतिक स्मृति का उत्सव नहीं, बल्कि एक प्रकार का प्रतिरोध–पाठ भी है। यह कविता पूछती है :

'इतिहास की किताबों में
क्यों नहीं है खेखेल?' [9]

यह प्रश्न आदिवासी स्त्रियों की अनुपस्थिति और मिटा दिए गए इतिहास की ओर संकेत करता है। पार्वती तिर्की इस कविता के माध्यम से सांस्कृतिक विलोपन (Cultural Erasure) का प्रतिकार करती हैं और सांस्कृतिक स्वराज की घोषणा करती हैं। यह कविता भारतीय स्त्री–लेखन में एक नवीन हस्तक्षेप है, जहाँ स्त्री न केवल पुरुष सत्ता का विरोध करती है, बल्कि संपूर्ण परंपरा की संरचना को ही नए ढंग से देखने का आग्रह करती है। कविता की भाषा में कुड़ुख जीवन–दृष्टि का गहरा प्रभाव है। शब्द चयन, प्रतीक और शिल्प – सब कुछ लोक से उपजा है। नदी, पेड़, बीज, मिट्टी, आग – ये सब महज प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अवयव हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से कविता एक जीवित मिथक रचती है – ऐसा मिथक जो न केवल अतीत का वर्णन करता है, बल्कि वर्तमान के लिए दिशा भी तय करता है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि पार्वती तिर्की का काव्य–संग्रह फिर उगना केवल एक काव्यात्मक

अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि आदिवासी संस्कृति, स्मृति, समाज और संघर्ष का एक आत्मस्वरूप है। इस संग्रह में कवयित्री अपने समाज की धड़कनों, लोकविश्वासों, भाषा, मिथकों, संघर्षों और सृजनशीलता को एक ऐसी काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत करती हैं जो न तो केवल साहित्यिक प्रयोग है, न ही केवल आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति, बल्कि वह एक सांस्कृतिक पुर्नस्थापन है।

फिर उगना संग्रह की कविताओं में आदिवासी समाज केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक जीवंत उपस्थिति है। कवयित्री इस समाज को 'दर्शनीय' या 'पिछड़ा' कहने के किसी भी आग्रह को अस्वीकार करते हुए उसकी गरिमा, उसकी ज्ञान–व्यवस्था, और उसकी आंतरिक गहराई को सामने लाती हैं। कविता 'पिउवा' में प्रेम की लोकसंवेदना, 'खेखेल' में आदिवासी स्त्री की सृष्टिशक्ति, और 'फिर उगना' में संघर्षशील जिजीविषा – यह सब मिलकर आदिवासी समाज को सम्मानजनक और क्रियाशील रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस संग्रह में लोककथाएँ, पुरानी स्मृतियाँ, मुहावरे और मिथक लगातार उपस्थित रहते हैं। यह केवल भावनात्मक सौंदर्य की दृष्टि से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुर्नस्थापन की प्रक्रिया के रूप में है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. तिर्की पार्वती, फिर उगना, करम चंदो, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2023 पृ. 11
2. घनेपन का मौसम पृ. 35
3. सहिया पृ. 89
4. गोदना पृ. 61
5. खेखेल पृ. 24
6. वही पृ. 24
7. वही पृ. 24
8. वही पृ. 25
9. वही पृ. 25

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 174-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भगवानदास मोरवाल की कहानियों में सामाजिक चेतना

टंकर बाबू
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद, तेलंगाना।

साहित्य एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जिसमें जीव मात्र के कल्याण की भावना अंतर्निहित होती है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं को साहित्य के विविध रूपों में ढालकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसीलिए साहित्य में सामाजिक जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है। साहित्य का जन्म मानव की कोमल भावनाओं और गहन संवेदनाओं से हुआ है। जब किसी लेखक के भीतर कोई भावना तीव्र रूप से उमड़ती है तो वह उसे कविता, कहानी, नाटक या अन्य किसी साहित्यिक विधा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार साहित्य न केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का साधन है अपितु सामाजिक चेतना और सामूहिक भावनाओं का दर्पण भी है।

कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना का तात्पर्य है समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करना। यह साहित्यकार की उस संवेदनशीलता को दर्शाता है, जिसके माध्यम से वह समाज की विसंगतियों, अन्याय, असमानता और पीड़ा को समझता है और उसे अपनी रचना में स्थान देता है। सामाजिक चेतना उस गहरी समझ और संवेदना का प्रतीक है, जो एक लेखक को अपने समाज, समुदाय और उसमें जी रहे लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाती है। सामाजिक चेतना व्यक्ति को यह सोचने पर मजबूर करती है कि उसके कार्य समाज पर क्या प्रभाव डालते हैं और समाज की परिस्थितियाँ उस पर किस प्रकार प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना न केवल यथार्थ का चित्रण है अपितु एक बेहतर समाज के निर्माण की आकांक्षा भी है। ऐसे में भगवानदास मोरवाल का साहित्य अनूठा है। उन्होंने सामाजिक चेतना को अपने साहित्य में अभिव्यक्त कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनका उद्देश्य चित्रित पात्रों के द्वारा समाज में एक नए युग की सामाजिक चेतना को सामने लाना है। भगवानदास मोरवाल का जन्म हरियाणा के मेवात क्षेत्र के एक छोटे से कस्बे नगीना में हुआ। अपने संघर्षमय जीवन और संवेदनशील दृष्टिकोण के बल पर उन्होंने हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान बनाया है। मोरवाल को उनके साहित्यिक योगदान के लिए कई राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं। उनका लेखन मेवात की संस्कृति, सभ्यता, संघर्ष और सामाजिक जटिलताओं का सजीव चित्रण करता है, जिसमें न केवल क्षेत्रीय रंग है अपितु व्यापक सामाजिक चेतना भी दिखाई देती है।

उन्होंने ग्यारह उपन्यासों, छह कहानी संग्रहों, और एक कविता संग्रह का सृजन किया है। सामाजिक चेतना के पाँच स्तर, अंतर्निहित, यह स्तर व्यक्ति की प्रारंभिक सामाजिक चेतना को दर्शाता है, जो सामाजिक,

सांस्कृतिक और जैविक कारकों के प्रभाव में अनायास रूप से विकसित होती है। यह पूर्व–सामाजिक अवस्था मानी जा सकती है, जहाँ व्यक्ति सामाजिक संरचनाओं का हिस्सा तो होता है, परंतु उसे उसकी सचेत समझ नहीं होती। आत्म–प्रतिबिंबित, इस स्तर पर व्यक्ति अपने सामाजिक अनुभवों, भूमिका और परिस्थितियों के प्रति जागरूक होता है। वह सोचने लगता है कि समाज में उसका स्थान क्या है, उसके निर्णयों और क्रियाओं का प्रभाव क्या है। आलोचनात्मक, यह स्तर व्यक्ति को सामाजिक संरचनाओं, असमानताओं और सत्ता–संबंधों की आलोचनात्मक समझ प्रदान करता है। व्यक्ति सामाजिक न्याय, भेदभाव और शोषण जैसे मुद्दों पर सवाल उठाने लगता है। यह स्तर अक्सर शिक्षित और विचारशील चेतना से जुड़ा होता है। सहभागिता–आधारित, यह वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति केवल सोचता नहीं अपितु सामाजिक बदलाव के लिए सक्रिय रूप से कार्य करता है। वह समुदाय के साथ जुड़ता है, आंदोलन, सेवा, या रचनात्मक प्रयासों के माध्यम से योगदान देता है। रूपांतरणकारी, यह सबसे उच्च स्तर की सामाजिक चेतना है, जहाँ व्यक्ति न केवल स्वयं सक्रिय होता है, अपितु दूसरों को भी प्रेरित करता है।

भगवानदास मोरवाल का साहित्य सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विविधता और ग्रामीण जीवन के यथार्थ का सशक्त दस्तावेज है। भगवानदास मोरवाल हिंदी साहित्य के एक सशक्त और संवेदनशील कथाकार हैं, जिनका जन्म 23 जनवरी 1960 को नगीना, मेवात हरियाणा में हुआ। उन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री प्राप्त की और पत्रकारिता में डिप्लोमा किया। मोरवाल जी ने अब तक ग्यारह उपन्यास, अनेक कहानियाँ, कविता संग्रह, तथा व्यंग्य रचनाओं का संपादन किया है। उनके साहित्य में मेवात क्षेत्र की ग्रामीण समस्याएँ, जातीय–सांप्रदायिक संघर्ष, और हिंदू–मुस्लिम साझा संस्कृति 'गंगा–जमुनी तहजीब' को प्रमुखता से उकेरा गया है। उनके पात्र समाज के हाशिये पर खड़े लोग हैं, जिनके माध्यम से वे सामाजिक अन्याय, असमानता और मानवीय पीड़ा को सामने लाते हैं। उनकी रचनाएँ केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं हैं अपितु सामाजिक चेतना को झकझोरने वाली प्रभावशाली अभिव्यक्तियाँ हैं। भगवानदास मोरवाल द्वारा ग्यारह उपन्यास, अनेक कहानियाँ, कविता संग्रह का सृजन तथा व्यंग्य आदी का संपादन किया है। उनके लेखन में मेवात क्षेत्र की ग्रामीण समस्याएँ उभर कर सामने आती हैं। उनके पात्र हिन्दू–मुस्लिम सभ्यता के गंगा जमुनी किरदार होते हैं। मोरवालजी की कुछ प्रमुख कृतियाँ है... काला पहाड़ (1999), बाबल तेरा देस में (2004), रेत (2008), नरकमसीहा (2014), हलाला (2016), सुर, बंजारन (2017), वंचना (2019), शकुंतिका (2020), खघनजादा (2021), मोक्षवन, काँस सभी उपन्यास। कहानी संग्रह 'सिला हुआ आदमी', सू'र्यास्त से पहले', '10 प्रतिनिधि कहानियाँ', '80 सूबेदार', 'लक्ष्मण रेखा', 'माता और उसका देवता', और कहानी संग्रह 'दोपहरी चुप है' और संपादन कार्य है 'बच्चों के लिए कलयुगी पंचायत' एवं उनकी अन्य दो पुस्तकों का संपादन कार्य चल रहा है। भगवानदास मोरवाल जी की कहानियाँ भी उनकी उपन्यासों की भाँति गहन् सामाजिक चेतना से ओतप्रोत होती हैं। उन्होंने ग्रामीण भारत, विशेषकर मेवात क्षेत्र, के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक द्वंद्वों को अभिव्यक्त करने के साथ–साथ उनके पीछे छिपे वर्गीय अन्याय, सांप्रदायिक विडंबना और मानवाधिकार हनन अस्तित्व, असहिष्णुता और सामाजिक बहिष्कार की मार्मिक कथा को भी दृष्टिगत किया है।

भगवानदास मोरवाल की कहानी 'सूअरबाना' मेवात जैसे मुस्लिम–बहुल क्षेत्र की सामाजिक संरचना और उसमें बसे एक हिंदू परिवार की विसंगतिपूर्ण स्थिति को अत्यंत यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है। यह कहानी

उस परिवार की है, जो पारंपरिक रूप से सूअर पालन करता है। एक ऐसा कार्य जो स्थानीय मुस्लिम आबादी की धार्मिक मान्यताओं के विपरीत है। इस कारण उन्हें सामाजिक बहिष्कार, अपमान, और आर्थिक दमन का सामना करना पड़ता है। कहानी में लेखक यह दर्शाने की कोशिश करता है कि जब किसी परिवार का आजीविका का साधन किसी समुदाय की धार्मिक भावना से टकराता है तो कैसे यह टकराव सांप्रदायिक तनाव और सांस्कृतिक असहिष्णुता को जन्म देता है। यह संघर्ष केवल धार्मिक नहीं है अपितु एक अस्तित्व का संघर्ष है, जहाँ परंपराएँ और पवित्रताएँ इंसान की भूख और आवश्यकताओं से टकराती हैं। कहानी 'सूअरबाना', एक स्थानीय समस्या नहीं अपितु धर्म और जीविका, आस्था, यथार्थ तथा बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक मानसिकता के बीच चल रहे द्वंद्व का प्रतीक बन जाती है। लेखक ने कहानी के माध्यम से यह प्रश्न खड़ा किया है, "क्या एक समुदाय की धार्मिक भावना किसी दूसरे की रोजी–रोटी से ऊपर हो सकती है? यह कहानी हमें धार्मिक सह–अस्तित्व की जरूरत, सांस्कृतिक सहिष्णुता की अहमियत और गरीबों की व्यथा को गहराई से समझने का अवसर देती है।"[1]

यह मोरवाल की सामाजिक दृष्टि, मानवीय संवेदना और यथार्थबोध की एक उत्कृष्ट मिसाल है। जलेबीबाई, 'कहानी' एक किन्नर पात्र के जीवन संघर्ष और समाज के दोहरे व्यवहार को सामने लाती है। कहानी में भगवानदास मोरवाल ने "किन्नर समुदाय के प्रति समाज की उपेक्षा, शोषण, और मानवता की कमी को प्रस्तुत किया है। यह कहानी लिंग भेद पर गहरी सामाजिक टिप्पणी कर सहानुभूति की चेतना जगाती है।"[2] हिन्दी के प्रमुख कथाकार एवं उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल ने अपने साहित्य में ग्रामीण जीवन की कई झांकियाँ प्रस्तुत की हैं। उसका लक्ष्य सामाजिक ढांचे में स्थायी और न्यायपूर्ण परिवर्तन लाना होता है। यह चेतना समाज को नए मूल्यों, दृष्टिकोणों और कार्यपद्धतियों की ओर ले जाती है।

कहानी, 'डील' ग्रामीण भारत के भूमिहीन किसानों, दलितों और निम्न वर्गों के साथ होने वाले शोषण, भ्रष्टाचार और राजनीतिक जोड़–तोड़ को दर्शाती है। इसमें जमींदारों और सत्ता के गठजोड़ से निर्धनों के अधिकार कैसे छीने जाते हैं, मार्मिक रूप प्रस्तुत किया गया है, "भारत में भूमिहीन किसानों की स्थिति एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक मुद्दा है। भूमिहीन किसान वे हैं जिनके पास अपनी जमीन नहीं है और वे अपनी आजीविका के लिए दूसरों की जमीन पर निर्भर हैं। भूमिहीनता भारत सहित अनेक विकासशील देशों की एक जटिल सामाजिक–आर्थिक समस्या है।"[3] लेखक ने इसके कई कारण बताएँ हैं, जिनमें जनसंख्या में निरंतर वृद्धि, भूमि का असमान वितरण और भूमि सुधार नीतियों का अपर्याप्त कार्यान्वयन हैं। जनसंख्या बढ़ने से वैकल्पिक रोजगार के अभाव में भूमि पर निर्भरता भी बढ़ती जाती है। इससे छोटे किसानों की जमीन भी धीरे–धीरे बिककर बड़े जमींदारों या पूंजीपतियों के पास चली जाती है। भूमि सुधार कार्यक्रम, जिनका उद्देश्य भूमिहीनों को भूमि दिलाना था, वे भी कई बार नीतिगत विफलताओं, राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रशासनिक उदासीनता के कारण प्रभावी नहीं हो पाए। परिणामस्वरूप, ग्रामीण भारत में एक बड़ा वर्ग आज भी भूमिहीन श्रमिक के रूप में नारकीय जीवन जीने को विवश है।

इसी परिप्रेक्ष्य में कहानी, 'मजार', धार्मिक आस्था और उसकी राजनीति पर आधारित है, जिसमें बताया गया है कि कैसे एक धार्मिक स्थल मजार को लेकर हिंदू–मुस्लिम समुदायों के बीच तनाव हो जाता है। लेखक ने यहाँ दिखाया है, कैसे राजनीति और धर्म का गठबंधन समाज में विद्वेष फैलाने का काम करता है। यह कहानी सांप्रदायिक सौहार्द और धर्मनिरपेक्षता की चेतना को बल देती है। 'सौदा', कहानी स्त्री–विमर्श से जुड़ी है, "जिसमें

एक स्त्री अपने शरीर और आत्मसम्मान के साथ किया गया 'सौदा' समझती है। स्त्री के अस्तित्व और सम्मान को पितृसत्तात्मक सोच द्वारा कैसे कुचला जाता है, साथ ही आर्थिक विवशता किस प्रकार उसे समझौते के लिए बाध्य करती है।"[4] लेखक ने मानवीय मूल्यों के हनन के सभी पहलुओं को गहरी संवेदना और सामाजिक दृष्टि के साथ उकेरा है। उनके लेखन में वर्तमान सामाजिक जीवन का गहन और यथार्थ चित्रण दिखाई देता है।भगवानदास मोरवाल के साहित्य में जिस सामाजिक यथार्थ की झलक मिलती है, उसका गहरा संबंध मेवात से है। जहाँ विभिन्न संप्रदायों, विशेषकर हिंदू, मुस्लिम लोग एक साथ मिल–जुलकर रहते आए हैं, मोरवाल ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में इसी संस्कृति–संगम को आधार बनाकर अनेक जटिल सामाजिक मुद्दों जैसे धार्मिक टकराव, वर्गीय विषमता, जातीय भेदभाव, और स्त्री अस्मिता को दर्शाया है।

इस प्रकार, मेवात केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं अपितु एक सांस्कृतिक पहचान है, जिसे मोरवाल के साहित्य में गहनता से अनुभव किया जा सकता है। सामाजिक चेतना की विशेषताएँ मोरवाल की कहानियों में हाशिए के समाज की आवाज बनना, धार्मिक समरसता और उसका विघटन, स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक विमर्श, सामाजिक विसंगतियों और विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण, सांप्रदायिकता, पितृसत्ता, और जातिवाद का प्रतिरो। यहाँ मोरवाल जी की कुछ प्रमुख कहानियाँ और उनमें निहित सामाजिक चेतना का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत है। भगवानदास मोरवाल की कहानियों में ग्रामीण जीवन का चित्रण समुचित रूप से दिखाई पड़ता है उनमें सामाजिक चेतना सामाजिक जीवन फलीभूत होता दिखता है। कथा हरियाणा राज्य के मेवात क्षेत्र के नगीना को केंद्र में रखकर लिखी गई है नगीना एक नहीं पूरा मेवाती संस्कृति का प्रतीक है यह ना कोई हिंदू ना कोई मुसलमान मिल–जुलकर रहते हैं। पर्व, विवाह, जीवन–मरण सबका एक–सा है। यही कारण है कि वे अपने धार्मिक पहचान के साथ–साथ एक विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान 'मेव' को गर्व से अपनाए हुए हैं। यह लोग हिंदू हो या मुसलमान एक दूसरे के बिना भेदभाव के काम करते हैं, ''इस क्षेत्र में आज तक या में कोई फिर कान्हा प्रसाद न हुआ है! सब सू बडड़ी बात तो ईया है कि इलाका में हिंदू बाहण बेटी पर आँखण उठा कर देख ले।'[5] जब कोई कथा लेखक इन पहलुओं को ध्यान में रखकर सृजन करता है, तो उसका साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम न रहकर समाज को दिशा देने वाला एक दर्पण बन जाता है।

हिंदू मुस्लिम लोगों के आपसी संबंधों को उद्घाटित करती है, "कहानी झूठा दिन'! साल के 365 दिनों में कोई भी दिन ऐसा नहीं होता जब नसीबन बुधन से कोई वस्तु न मांग लेती हो या बुधन नसीबन से कुछ और ना लेती हो! सुबह से लेकर शाम तक दोनों न जाने कितनी बार एक दूसरे के आंगन की ओर गण निकले दिखलाई पड़ती हैं।'[6] साहित्य को समाज का दर्पण इसीलिए कहा जाता है, यह समाज की रीति–रिवाजों, भावनाओं, समस्याओं और परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। साहित्य में मानवीय संवेदनाएँ, सामाजिक संरचनाएँ और सांस्कृतिक व्यवहार उसी रूप में परिलक्षित होते हैं, जैसे वे किसी विशेष युग या स्थान में विद्यमान रहे हों। इसमें जातीय भावनाओं, वर्ग संघर्ष, लैंगिक भेद, धार्मिक और सांस्कृतिक विविधताओं की गूंज स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। साहित्य के माध्यम से हम किसी विशेष समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य को गहराई से समझ सकते हैं। यह केवल घटनाओं का वर्णन नहीं करता, अपितु उनके पीछे छिपे भावों, मानसिकताओं और परिवेश को भी उजागर करता है। इस प्रकार साहित्य न केवल मनोरंजन का माध्यम है अपितु समाज के अध्ययन और विश्लेषण का एक सशक्त उपकरण भी है।

साहित्य यह समाज में चल रही घटनाओं का ही रूप है। साहित्य और समाज को अलग करना यह संभव है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है। अन्त में हम कह सकते हैं कि समाज और साहित्य में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध हैं। समाज और साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं, इन्हें एक–दूसरे से अलग करना सम्भव नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यकार सामाजिक कल्याण को ही अपना लक्ष्य बनाकर साहित्य का सृजन करते रहें। आधुनिक कथा साहित्य जगत में लेखक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका कथा साहित्य आधुनिक संदर्भों को समझने में पाठ्य वर्ग की पूर्ण रूप से सहायता करता है। उनके कथा साहित्य में समस्याओं तथा सामाजिक विघटनों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। साहित्यकार यह समाज का हितकारी होता है वह अपने साहित्य में हमेशा समाज का हित हो ऐसी चीजें लिखता है। कई साहित्यकारों ने अपने शब्दों से समाज बदल डाला। समाज में नई चेतना तथा प्रेरणा उन्होंने निर्माण की। अंग्रेजों के काल में साहित्यकारों ने समाज में चल रही अंग्रेजों की तानाशाही के बारे में वर्णन किया।

अंग्रेजों के विरुद्ध समाज जागृति में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है, "रविंद्र नाथ टैगोर, मुंशी प्रेमचंद, बंकिम चंद्र चटर्जी आदि साहित्यकारों ने समाज को प्रेरित किया है। प्राचीन काल से समाज में जागृति लाने में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। साहित्य हमारे विचारों तथा जीवन पर गहरा प्रभाव डालतस हैं। भारतीय आंदोलन के समय साहित्यकारों ने समाज का वर्णन किया जिससे समाज में चल रहे पाखंड का पता सर्व साधारण नागरिकों को चला। सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्धता, सामाजिक चेतना में सामाजिक न्याय और समानता के लिए प्रतिबद्धता शामिल है, जिसमें सभी के साथ सम्मान और गरिमा के साथ व्यवहार करना और भेदभाव का विरोध करना है।"[7] सामुदायिक सहभागिता, सामाजिक चेतना में समुदाय में सक्रिय रूप से भाग लेना और दूसरों के साथ मिलकर काम करना है ताकि समाज में सकारात्मक बदलाव लाया जा सके। सामाजिकता की भावना एक व्यक्ति की अपने समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना है, जिसमें दूसरों की मदद करना, समुदाय में भाग लेना, और सामाजिक परिवर्तन के लिए काम करना है, "सामाजिक चेतना समझ ही नहीं देती अपितु वह सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है। हमारे कुण्ठा से ग्रस्त जीवन में आशा, प्रकाश व विश्वास जागृत कर उन्हें एक सूत्र में पिरोना सामाजिक चेतना का कार्य है।"[8] मोरवाल ने अपने कथा साहित्य के द्वारा इन्हीं क्षेत्रों और लोगों को केंद्र में लाने का सार्थक प्रयास किया है, जिससे वे समाज और साहित्य दोनों के लिए अधिक प्रासंगिक बने। इस प्रकार, हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से भारत के उन अनछुए और हाशिए पर पड़े क्षेत्रों को उजागर किया है, जिनकी समस्याओं, सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक विशिष्टताओं से अधिकांश लोग अनभिज्ञ हैं।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि भगवानदास मोरवाल ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का सफल प्रयास किया है। भगवान दास मोरवाल ने मेवात की संस्कृति को केंद्र में रखकर सामाजिक जीवन ग्रामीण पृष्ठभूमि का कोई भी रंग हो कोई भी मजहबी विषय हो पर्व, लोक परंपरा, संस्कृति दिखाई पड़ता है यही कारण है कि उनके उपन्यासों को पढ़ते समय मेवात आंचल जीवंत हो उठता है।

अतः मेवात आंचल की सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को गहराई से समझने के लिए आज की पीढ़ी को सफल, निष्पक्ष बनने के लिए उनके साहित्य को बार बार पढ़ना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. 'सूअरबाना', भगवान दास मोरवाल।
2. 'जलेबीबाई', भगवान दास मोरवाल।
3. 'डील', भगवान दास मोरवाल।
4. 'सौदा', कहानी भगवान दास मोरवाल।
5. "काला पहाड़" मोरवाल भगवान दास, पृष्ठ संख्या 17–18
6. "कहानी झूठा दिन" मोरवाल भगवानदास, लक्ष्मण रेखा पृष्ठ संख्या 180
7. हिदी साहित्य जगत में मेवात का नाम रोशन कर रहे भगवानदास मोरवाल', दैनिक जागरण।
8. 'हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास', डॉ रामचंद्र तिवारी।

ईमेल – Babu.t.hindi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 180-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में निहित व्यंग्य

भक्ति कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

बहुआयामी कृति–व्यक्तित्व के धनी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, न केवल काव्य के क्षेत्र में अपितु साहित्य के अन्यान्य विधाओं में भी सक्रिय रूप से लेखन कार्य किया है। वे जीवन और समाज के हर पहलू पर सचेतन, संवेदनशील एवं पैनी दृष्टि रखने वाले उत्कृष्ट सृजक तथा समाज चेता कलाकार थे। तत्कालीन समाज मे प्रसरित अनेक बुराइयाँ– कुंठा, संत्रास, अजनवीयत, अंतर्मुखता, संसय ग्रस्त मानशिकता के साथ ग्रामीणजन की अनेक शुभ–अशुभ स्मृतियाँ आपके लेखन की विषय वस्तु बनीं। विवेच्य कवि के लेखन में मध्यवर्गीय जन की पीड़ा खुरदुरे यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है। यही खुरदुरा यथार्थ पाठक को निजजीवन की अभिव्यक्ति सा प्रतीत होता है जिस कारण वह आदि से अंत तक आपकी रचनाओं से जुड़ा रहता है। कवि अपने कृति व्यक्तित्व की विषय वस्तु के लिए बार–बार गाँव की तरफ रुख करता है, शायद इसीलिए ग्रामीणजन और गाँव, जवार की पीड़ा इनकी रचनाओं के केंद्र में रहा है। जैसा कि कृष्णदत्त पालीवाल ने भी लिखा है– 'काली, सौंधी मिट्टी के खेतों, मैदानों, तालाबों, फूलों, पगडंडियों, नदियों, पशु–पक्षियों, ज्यादातर कच्चे खपरैलों के मामूली, आदमियों के घर, अंधेरे गलियारों का उनके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके सृजन में यह सब अनेक रूपों और छवियों में दिखाई देता है।' लेखन के क्रम में सर्वेश्वर दयाल जी पाते हैं कि आजादी की लड़ाई में जन–जन की भागीदारी थी किन्तु स्वतंत्र भारत में आज भी गांवों की स्थिति जस की तस बनी हुई है। कवि मन जनसामान्य की पीड़ा को देखकर व्यथित हो उठाता है। यह व्यथा वक्रमार्ग की अनुगामिनी होकर व्यंग्यात्मक शैली में कवि की रचनाओं में फुट पड़ती है। यूँ कवि की व्यंग्यात्मक शैली का चरम उत्कर्ष बकरी, कलभात आएगा, अब गरीबी हटाओ आदि नाटक हैं किन्तु इनकी कविताओं में निहित व्यंग्यात्मक यथार्थ का परीक्षण करना इस शोध–पत्र का उत्स्य है।

भाषा अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम होती है जिसके माध्यम से रचनाकार अपनी जीवन अनुभूतियों में यथार्थ और कल्पना का मिश्रण कर सहृदय के समक्ष व्यक्त करता है। कृतिकार और सामाजिक की अनुभूति सदैव एक जैसी नही रहती है, वह परिवर्तनीय होती है। जिसके फलस्वरूप भाषा के टोन में बदलाव आ जाता है जिसे हम शैली कहते हैं। रचनाकार निज कृति व्यक्तित्व में जीवंतता लाने के लिए कभी सरल, ऋजु तो कभी वक्र या व्यंग्यात्मक शैली का वरण करता है। सर्वेश्वर सीधी सपाट बयानी के कवि नही हैं, उनकी भाषा भावों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। यह कहा जा सकता है कि उक्त कवि भाव संवेद्य की दृष्टि से मझी हुई भाषा का प्रयोग करता है। इसी वजह से इनके काव्य में शब्दशक्ति अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का उचित मात्रा में प्रयोग

मिलता है। जब वे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विडम्बनाओं पर प्रश्नचिह्न लगते हैं तो इनकी कविताएँ सहज ही व्यंग्य पथ का पथिक बन जाती हैं। यथा :–

क्यों हाथ टूटा है?
क्यों हर पैर कटा हुआ है?
क्यों हर चेहरा मोम का है?
क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा है?
क्यों हर कोई जिंदा नही है...
दिल्ली की इन सड़कों पर।[1]

उक्त काव्यांश आज के दौर में दिल्ली जैसे महानगरों में फैली जड़ता, उदासी और मरती हुई मानवीय संवेदन और राज नेताओं की अकर्मण्यता पर करारा व्यंग्य है। यह व्यंग्य समाज के हर उस व्यक्ति पर है जो प्रत्यक्ष रूप से अनेक बुराइयों को देखते हुए भी उसका प्रतिकार नही करता बल्कि टूटा हुआ हाथ, कटा हुआ पैर अर्थात समाजिक विकलांगता के दौर में मोम जैसे चेहरे के भीतर कूड़े करकट से भरा हुआ दिमाग लिए जीवन का दिन काट रहा है। हमारे इर्द–गिर्द बहुत से ऐसे मनुजाद हैं जिनमें जिंदा मनुष्य के एक भी लक्षण विद्यमान नही हैं क्योंकि मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान समर्थन और प्रतिरोध होता है। किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति और समाज के कायराना व्यवहार की अभिव्यक्ति 'बाँस का पुल' नामक कविता है जिसमें कवि व्यंग्य का तीखा नस्तर चलाया है। यथा–

यह कायरों का देश है
यहाँ लोग देखने को आगे देखते हैं
चलने पर पीछे चलते हैं
और विवेक के नाम पर प्रत्यंचा चढ़ाने से मना करते हैं
बौने समाज में
घुटने के बल चलने की शिक्षा देते हैं
छोटी चारपाइयों के हिसाब से आदमी के बढ़े हुए पैर काटकर
सोचते हैं उसे सुख और आराम दे रहे हैं।[2]

उपरोक्त पंक्तियाँ बरबस ही भारतेंदु हरिश्चंद्र का कथन– 'हमारे देश के लोग रेलगाड़ी के डिब्बे हैं जिन्हें चलाने के लिए इंजन की जरूरत होती है' का स्मरण करा देती हैं। दरअसल भारतेंदु का यह कथन आजादी के पहले के भारत के लिए था। किंतु आजादी प्राप्त हो जाने के बाद भी या यूँ कहें कि सर्वेश्वर के समय मे भी यह समाज जस का तस बना हुआ है। कवि मन इस व्यवस्था से क्षुब्ध होकर उक्त काव्यांश में व्यंग्य के माध यम से आज का नग्न यथार्थ पाठक के समक्ष पेश किया है।

सर्वेश्वर का व्यंग्यात्मक तेवर कबीर, निराला, नागार्जुन और हरिशंकर परसाई जैसा नहीं है। इनके व्यंग्य में जहाँ एक तरफ तल्खी और फटकार है तो वहीं दूसरी तरफ सौम्यता और शिष्टता भी है। अतएव अवसर के अनुकूल इनकी व्यंग्यात्मक भाषा परिवर्तित होती रहती है। वे बड़ी सी बड़ी बातों पर बड़े साफगोई के साथ चुटकी लेकर निकल जाते हैं। जैसा कि हरिचरण शर्मा ने कहा है कि– 'सर्वेश्वर के व्यंग्य की विशेषता यह है कि वह मात्र गुस्सा न होकर शिष्ट, शालीन और रचनात्मक हैं। वह आक्रामक तो हैं, पर उनकी आक्रामक शैली

महीन है। जहाँ कहीं भी क्रोध मिश्रित है, वहाँ परिस्थिति की जटिलता और क्रूरता ने ही उसे ऐसा बनाया है या कहें कि तब जब कवि व्यवस्था की अवस्था या व्यक्ति की भ्रष्टता के कारण इंसानियत को मरते देखा है।'[3] कवि व्यंग्य को जीवंत बनाने के लिए कहीं–कहीं हास–परिहास, मनोविनोद एवं नाटकीय शैली का प्रयोग करता है। जिसे हम 'काठ की घण्टियाँ' शीर्षक कविता में देख सकते हैं :–

चुपाई मारो दुलहिन / मारा जाई कौआ...
दे धोती / दिन भर चरखा कात / साँझ को क्यों रोती
सूत बेच कर / पी आयें घर में ताड़ी
छीन लंगोटी / काटी बोटी – बोटी
किस्मत ही निकली खोटी/ऊपर नेग माँगते हैं
ये बाभन – नौआ
चुपाई मारो दुलहिन/मारा जाई कौआ।[4]

उपरोक्त काव्यपंक्ति कोई साधारण काव्यव्यांश नही है कि हम पढ़े और मनोरंजन हुआ, आगे बढ़ गए। बल्कि पाठकवर्ग को रुक कर सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं क्यों कि अपने मे कई अर्थवत्ता लिए 'काठ की घण्टियाँ' शीर्षक कविता एक साथ विभिन्न सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य है। इस कविता के माध्यम से एक तरफ जहाँ समाज के उस वर्ग पर व्यंग्य किया गया है, जो अपने घर की महती हालात को न देखते हुए, घर के तमाम सदस्यों से बेपरवाह होकर अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा शराब की भठ्ठियों पर गवाँ आते हैं। वहीं दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग है जो इनके घरों में बचे–खुचे अनाज और धन को नेक–चार के रूप में हथियाने से पीछे नही हटता। इस प्रकार की अनेक सामाजिक संत्रास सर्वेश्वर की रचनाओं की विषय वस्तु बनी हैं। यही विशेषताएँ इन्हें अपने समकालीनों में श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं– 'परिवेश एवं जीवन के प्रति सचेतन दृष्टि रखने वाले कवियों में सर्वेश्वर की जगह काफी ऊँची है। इस बात में तो वे अज्ञेय से भी आगे हैं कि उन्होंने आम आदमी की जिंदगी को, हमारे परिवेश के संकट को आत्मीय,सहज और विश्वसनीय शिल्प में ढ़ालकर कहा है। उनका कहा हुआ हमारी चेतना में समा जाता है और पाठक को लगता है कि इस सब में उसकी बहुत बड़ी साझेदारी है।'[5] कवि की सचेतन दृष्टि का परिणाम है कि उसकी कविताई बार–बार ग्राम्य जीवन और परिवेश की यात्रा करती है। इस यात्रा में जब उसकी दृष्टि भूखे, पीड़ित और व्याकुल खेतिहर किसान और मजदूर पर पड़ती तो उसके अन्तस् को झकझोर देती है। यथा –

मैं भागता हूँ और देखता हूँ
यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया,
वह चौपाये के साथ बाढ़ में बह गया,
यह सरकारी बाग की रखवाली करता था,
लू में टपक गया।
यह एक छोटे से रोजगार के सहारे,
जिंदगी काट ले जाना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया।[6]

इसे व्यंग्य न कहकर, कृषक और मजदूर जीवन के प्रति कवि की वास्तविक संवेदना की अभिव्यक्ति कहना ज्यादा न्यायोचित होगा। विडम्बना देखिए कि हमारे समाज का यह वर्ग आज ही नही बल्कि वर्षों से व्यवस्था की चक्की में पिसते हुए कब किसान से मजदूर और मजदूर से मजबूर बन जाता है उसे खुद ही इस बात का भान नही होता। दिन रात मेहनत कर अनाज तैयार करने वाला अन्नदाता हो या फिर अपनी मेहनत से दूसरों के लिए घरौंदे तैयार करने वाला मजदूर, दोनों जिस सम्मान के हकदार हैं क्या वह सम्मान उन्हें मिलता है? यह प्रश्न और अधीरता 'निराला' के जमाने मे भी थी, मुंशी प्रेमचंद के जमाने मे भी थी, नागार्जुन के समय में भी थी, सर्वेश्वर के समय में भी थी और हमारे समय में भी उपस्थित है। आखिरकार कब तक यह वर्ग दो पाटों के बीच पिसता रहेगा। वर्तमान में इस अव्यवस्था का जीता–जागता प्रमाण संजीव का श्फाँसश जैसा उपन्यास और समाचार पत्र हैं। जिसमें आए दिन कर्ज आदि जैसी समस्याओं के बोझ तले दबे किसानों की आत्महत्या की रपट प्रकाशित होती रहती हैं। वह जिस छोटे से रोजगार के सहारे अपना जीवन काट लेने के लिए कटिबद्ध है, वह भी व्यवस्था की षणयंत्र के भेंट चढ़ उससे छिन जाता है। अंततः उसे हाथ बचती है सिर्फ आत्महत्या और खुदकुशी जैसे शस्त्र जिसे आए दिन विदर्भ के किसानों के यहाँ देखा जा सकता है।

किसान व मजदूर किसी देश की वह धुरी होते हैं जिस पर उस देश की संस्कृति बहुत हद तक टिकी रहती है। भारत जैसे देश में संस्कृति और धर्म का अधिकांश हिस्सा खेती, किसानी से जुड़ा हुआ है। इसलिए धर्म एवं संस्कृति को अलग करना मुश्किल ही नही असंभव है। किन्तु जब धार्मिक या संस्कृति उत्सव की बात आती है तब उक्त वर्ग समाज के हासिए पर पाया जाता है। क्योंकि आज के भौतिकतावादी युग में हर रीति–नीति को मापने का पैमाना आर्थिक शक्ति पर निर्भर करता है। इस पर भी वर्तमान दिखावे की संस्कृति ने रीति – रिवाज, पर्व–त्योहार को मनाने के तौर–तरीके में परिवर्तन लाया है जो नितांत अर्थ पर आधारित है। हम जानते हैं कि हमारा कृषक और मजदूर वर्ग आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा है इसीलिए उसके जीवन में उत्सवधर्मिता जैसी कोई चीज रह ही नही गयी है। बड़े से बड़े उत्सव के दिन भी उसका समय खेती–किसानी में बीत जाता है। इसी प्रकार का एक उत्सव हमारे समाज मे नववर्ष के रूप में मनाया जाता है।

जिसकी शुभकामना सर्वेश्वर जी कुछ इस अंदाज में देते हैं :–

खेतों की मेड़ों पर धूल भरे पाँव को
कुहरे से लिपटे उस छोटे से गाँव को
नये साल की शुभकामनाएँ
जाते के गीत को, बैलों की चाल को
करघे को, कोल्हू को, महुओं के जाल को
नये साल की शुभकामनाएँ![7]

यह काव्यांश जहाँ एक तरफ किसानों और खेतिहर मजदूरों को शुभाशंसा प्रेषित करती हैं वहीं दूसरी तरफ व्यंग्यात्मक लहजे में सामाजिक व्यंग्य भी परोस रही हैं क्योंकि जिस समय हममें से अधिकांश लोग नववर्ष के जश्न में खोए रहते हैं, ठीक उसी समय समाज का यह वर्ग हॅड कंपकंपा देने वाली सर्दी में खेती की रखवाली करता रहता है। 'पूस की रात' के हलकू, मुनिया और जबरा के लिए नये–पुराने साल से क्या लेना देना, उसका जीवन तो एक रसता में दिन–दिन गिन कर कट जाता है। सर्वेश्वर की उक्त कविता 'नागार्जुन' की उस

काव्यखण्ड का याद दिला देती जिसमें वे लिखते हैं :–

'क्या दक्षिण क्या वाम
जनता को रोटी से काम।'

कहने का आशय है कि सारी वैचारिकी और उत्सवधर्मिता का जन्म पेट भरने के बाद होता है। समाज के इस वर्ग का जीवन रोजमर्रा की चीजों की जुगत में ही तिल–तिल कर बीत जाता है। इनके लिए नया–पुराना साल कोई मायने नहीं रखता।

सर्वेश्वर मानवतावादी कवि हैं, इनके लिए मानव मूल्य ही सर्वोपरि है। इसीलिए अपनी कविताओं के माध्यम से विभिन्न छोटे–बड़े सामाजिक एवं जातीय मुद्दों को पाठक वर्ग के समक्ष उपस्थित करते हैं। और जब इन समस्याओं कोई समाधान इन्हें नहीं दिखाई देता है तो व्यंग्य की पैनी धार चलाने से पीछे नहीं हटते हैं। 'पोस्टर और आदमी' नामक कविता विघटित होते मानवमूल्य और सर्वेश्वर के व्यंग्य का सशक्त उदाहरण है।

यथा– लेकिन मैं देखता हूँ
कि आज के जमाने में
आदमी से ज्यादा लोग
पोस्टरों को पहचानते हैं
वे आदमी से बड़े सत्य हैं
जिसमें दिल, दिमाग, आत्मा कुछ भी नहीं है।[8]

वर्तमान समय मे कवि का उक्त कथन प्रासंगिक है क्योंकि यह दौर मूल्यों के क्षरण का दौर है। जिसमें सारी मानवता को धता साबित करते हुए जीते–जागते प्राणियों से ज्यादा हम पोस्टरों पर प्रतिबिंबित मनुष्य और उसकी प्रतिमाओं को ज्यादा तवज्जो दे रहे हैं। आज के समय में जीते जी व्यक्ति के औदात्य गुणों की पहचान हममें से किसी को नही होती, यह समाज उसके मूल्य को नही समझ पाता, किंतु मरने के बाद उसके गुणों का चालीसा गायन करते हुए उसकी प्रतिमा को महिमामंडित करने लगते हैं जिसमें दिल, दिमाग और आत्मा कुछ भी नही होता।

सर्वेश्वर जी की तिरछी नजर से पाखंडी, दुराचारी और ढोंगी धर्म के ठेकेदार पंडा–पुरोहित, मौलवी भी नही बचते हैं। धर्म के नाम पर फैले तमाम प्रकार के बाह्याचार और व्यभिचार पर तीखा व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं –

यह हरिजन था इसे जिंदा जला दिया गया
वह अनपढ़ गरीब था इसे देवी की बलि चढ़ा दिया गया
यह आस्थावान धर्म गुरुओं की कोठरी में मरा
यह अनजानी ऊँचाईयाँ छूना चाहता था
छत की कड़ी से झूल गया।[9]

जहाँ एक तरफ यह कविता धर्मिक पाखण्डों पर सवालिया निशान लगती है, वहीं दूसरी तरफ समाज में दलितों के साथ हो रहे भेद–भाव को उजाकर करते हुए विमर्शिय साहित्य को सशक्त करती है।

समकालीन परिवेश में फैले अनैतिक वातावरण, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, कोरी संवेदना, धार्मिक कट्टरता,

नरसंहार से विवेच्य कवि को चिढ़ थी। इसीलिए वह किसी वाद के खूँटे में बंधकर साहित्य सृजन करना पसंद नहीं करता है। बल्कि उक्त त्रासदपूर्ण वातावरण पर व्यंग्य करते हुए पढ़ी लिखी मुर्गियाँ, व्यंग्य मत बोलो, धन्तमन्त आदि कविताओं की सृजन करता है। कवि की एक कविता है 'तर्क योग का नाम' जिसमें चाटुकारिता और दिखावे की संस्कृति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है –

भीतर कौन देखता है, बाहर रहो चिकने,
यह मत भूलो–यह बाजार है, सभी आये हैं बिकने,
राम–राम बोलो, और माखन मिश्री घोलो,
व्यंग्य मत बोलो।[10]

वर्तमान दौर की सच्चाई से रूबरू कराती यह कविता जहाँ एक तरफ बाजारवाद की कलई खोलती साबित हो रही है वहीं दूसरी तरफ सफेदपोश धारी नेताओं की लच्छेदार, चिकनी–चुपड़ी बातों पर व्यंग्य भी।

अतएव हम कह सकते हैं कि समाज मे जहाँ–जहाँ कुरुपताएँ, विद्रुपताएँ, बहसीपन, असमानता, दिखावापन, पाखण्ड, ऊँच–नींच का भेदभाव, आर्थिक विषमता, किसानों, मजदूरों की दुर्दशा दिखाई पड़ती है वहाँ– वहाँ सक्सेना जी के कविताओं की तीक्ष्ण एवं पैनी धार चल पड़ी है।

सन्दर्भ :–

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ. 28/29
2. वही, बाँस का पुल, पृ. 78
3. डॉ. हरिचरण शर्मा, सर्वेश्वर का काव्य : सृष्टि और दृष्टि, पृ. 144
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, काठ की घण्टियाँ, पृ. 403
5. डॉ. हरिचरण शर्मा, सर्वेश्वर का काव्य : सृष्टि और दृष्टि, पृ. 22
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ. 92
7. वही, कविताएँ 1, पृ. 89
8. वही, काठ की घण्टियाँ, पृ. 382
9. वही, कुआनो नदी, पृ. 26
10. कविताएँ 2, पृ. 64

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 186-189

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन कविता, जीवन मूल्य और यथार्थ

डॉ. बृजमोहन द्विवेदी
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय छत्रसाल महाराजा महाविद्यालय महाराजपुर, जिला छतरपुर (म. प्र.)

सृष्टि के विकास के बाद मानव मन में अनेक विकृतियों के बावजूद जीवन मूल्यों का स्थान उच्च रहा है। समय के बदलते परिवेश की छाया वीर गाथा कालीन कविता से लेकर समकालीन कविता पर पड़ना स्वाभाविक ही है। साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन है– ''साहित्य समाज का दर्पण है'' जो परिवेश के वास्तविक रूप की झॉकी से अवगत कराता है। समकालीन कविता में पिछले दशक से कई विमर्श सामने आए हैं, जो लम्बे समय से हाशिए के हाशिए पर थे। आज उनकी उपस्थिति का अहसास मानव मन को अपने पश्चाताप पर विवश कर रही है। इन अस्मितावादी, विमर्शों के शोर में किसान, मजूदर, बेरोजगार नौजवान जैसे कहीं गुम से गये है या गुमनामी की कगार पर है। अर्थात राह की तलाश में है। ऐसा नहीं है, कि इस भौतिक गत में राह न हो। राह तो है, सिर्फ जरूरत है जीवन मूल्यों को आत्मसात कर, टटोलकर इंसानियत के पथ पर चलने की।

समकालीन कविता के माध्यम से आज समाज से जो सवाल पूछे जा रहे है, उनसे साहित्य और समाज के रिश्ते चर्चा में यत्र–तत्र खूब सुनाई दे रहे है। यह शुभ संकेत है, क्योंकि सार्थक चर्चा आज कम ही हो पाती है। सत्ता की आकांक्षा और पदलोलुपता जीवन मूल्यों की राह में हमेशा बाधक रही है क्योंकि इन दोनों का उद्‌गम ही अधिकाशतः मूल्य विहीनता की अनुपजाऊ जमीन पर होता है। शायद इसलिए मानवीय कल्याण की भावना के स्थान पर एक संकुचित विकृत मानसिकता का जन्म होता है। अतः व्यक्ति स्वार्थ केन्द्रित होकर सबसे विलग होकर केवल अपने में सिमट कर रह जाता है। आज स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मुक्त बाजार की सस्ती लोकप्रियता जीवन मूल्यों के मार्ग में बाधक है। और वह दिन दूर नहीं, जब साहित्य, संस्कृति, कला, सौन्दर्य बोध भी बिकाऊ माल बन जायेगा। और तो और भूमण्डलीकरण के इस दौर में मनुष्य भी इंसानियत की परिधि लॉघकर बिकाऊ माल बन जाएगा जो चिंता का विषय है। इसी संदर्भ में विंध्य कोकिल भैयालाल व्यास जी लिखते हैं :–

कुछ कहो पर आदमी तो दिन व दिन छोटा हुआ है।
जो कभी सोना खरा था, इन दिनों छोटा हुआ है।।
भाव चीजों के बढ़े, पर आदमी के घट गये हैं।
इंसानियत का स्वार्थ के बाजार में टोटा हुआ है।।

आज हम विभाजित होकर अगड़ी, पिछड़ी जातियाँ, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक, दलित नारी, वर्ग के अंदर वर्ग, पूँजीपति व गरीब वर्ग की गहरी खाइयों में पड़े हुए, अहंकार से भरे हुए है। वैमनुष्यता के कारण हमारी आवाजें, आपस में टकरा रहीं है। पश्चिमीकरण के बढ़ते दुष्प्रभाव से हम अपनों से किनारा काट रहें है। अपनी जीवन मूल्य रूपी जड़ों से कट रहे है। हमारी पहचान अपनी अस्मिता को तलाश रही है। जिन मानव मूल्यों की धरोहर के बल पर हम विश्व गुरू की पदवी से विभूषित थे। वह विलुप्तता की कगार पर है। इतिहास साक्षी है कि जब–जब संस्कृति व मूल्यों को विकृतियों नें अपने 'आगोश' में समाहित करने की चेष्टा की तब–तब बुद्धिजीवी वर्ग की विचार क्रांति रूपी रचना ने हमारी आत्मा को झकझोरकर जनकल्याण की ओर मोड़ने का प्रयास किया।

समकालीन कविता द्वारा मानवता को सचेत करने के बावजूद भी आर्थिक विषमता की कालिमा मूल्यों को ढके हुए है। गरीबों की दयनीय दशा को देखकर कवि मन भी ईश्वर के प्रति आस्था से डगमगाकर ऑसू बहाते हुए कवि अंचल कहते है –

वह नस्ल जिसे कहते मानव कीड़ा से आज गई बीती।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसे जीती।।

इसी संदर्भ में महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने तोड़ती पत्थर भिक्षुक, विधवा जैसी कविताओं में निर्धनता का ऐसा चित्र खींचा जिसे पढ़कर संवेदनशील हृदय उसे पीड़ा मुक्त कराने हेतु छटपटाने लगता है। भिक्षुक कविता का एक अंश दृष्टत्य है :–

वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी पर दाने को भूख मिटाने को ....

नए प्रतीकों के लिए कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना साहित्य जगत में पहचाने जाते है। इनकी कविताऐं सर्वहारा वर्ग की मुक्ति हेतु प्रेरणास्पद हैं यथा :–

बढ़ो वेशुमार
गंदी बस्तियों, झोपड़ों, गटरों से निकल
बनाकर कतार
चढ़ो इस जंगल पर
बनाकर विराट आरे की धार
साधिकार।

विद्वतजनों का मानना है कि संवेदना और अनुभूति का उद्‌गम स्थल मानव मन है। अतः कहा जा सकता है कि संवेदना युक्त कविता कृष्ण की बाँसुरी जैसी है, जिसमें समाज का दिल और दर्द बजता है। वास्तव में समकालीन कविता विभिन्न विसंगतियों के होते हुए भी, विकट झंझावातों के गर्जन सुनते हुए मजबूत लौह स्तम्भ

की भाँति अविचल खड़े होकर नवजागरण का संदेश देती है और दिखाती है समाज के कुछ दरिन्दों का घिनौना मुखौटा, पूँजीपतियों की चाल, पारिवारिक रिश्तों में निर्लज्जता, छिछोरापन, घिनौनापन की परिधि लॉघना और सत्ता के ठेकेदारों का कुचक्र। इस संदर्भ में कवि मुक्तिबोध का कहना है– कविता सीधे क्रान्ति तो नहीं ला सकती, पर मनुष्य के विवेक को वह वाणी प्रदान कर सकती जिसको आत्मसात करके जनता जाग्रत होकर अन्याय का विरोध कर सके, अन्यायी से लड़े और निर्धन की रक्षा कर सके। वास्तव में मूल्य कभी बिखरते नहीं। इसके प्रमाण में अमेरिका प्रवासी रचनाकार 'अर्चना पंडा' भौतिक सुख–सुविधाओं के बावजूद अपने देश भारत को नहीं भूल पाती। उनकी यह कविता मानवीय अंतरतम तक प्रवेश कर जाती है :–

जब आना इस ओर, तो थोड़ी माँ की खुशबू ले आना।
बाँध सको तो गली मुहल्लों, की आवाजें ले आना।।
संस्कृति इतनी लाना कि आखिरी वक्त तक साथ रहे।
हो पाये तो मुट्ठी भर तुम देश प्रेम भी ले आना।।

आज हम पुत्र–पुत्री की समता का ढिढोरा जितना चाहे पीट लें पर वास्तविकता कोसों दूर है। दुनियां के इतिहास में स्त्री आज भी चाहे वह पश्चिम के विकसित राष्ट्रों की हो या पूर्व के विकासशील देशों की। पितृसत्तात्मक समाज में वह उपनिवेश ही है। समकालीन कविता सचेत करती है कि स्त्रियाँ जागें, उठें और अन्याय की बेड़ियों और जंजीरों को तोड़ने हेतु संघर्ष करें। वह कब तक लोहे, चाँदी और सोने की जंजीरों में जकड़ी रहेंगी। जंजीरें चाहे लोहें, चाँदी या सोने की हों, हैं तो वो जंजीरें ही। अर्थात निम्न, मध्यम व उच्च वर्ग की स्त्रियाँ लोहे, रजत व स्वर्णिम जंजीरों में कैद है। उनमें कोइ अंतर नहीं है, अंतर सिर्फ स्थितियों का है। इतना ही नहीं वह हिंसा को भी चुपचाप झेलना अपनी नियति मानकर चलती है। कवि उदय प्रकाश की कविता 'रात में हारमोनियम' की पंक्तियां संकेत करती है :–

अस्पताल में हजार प्रतिशत जली हुई औरत का कोयला दर्ज करता है। अपना मृत्यु पूर्व बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने।।
उसके अलावा बाकी हरकोई है निर्दोष।
गलती से उसके ही हाथों फूट गई किस्मत फट गया स्टोव।।

इतना होने के बावजूद भी स्त्रीं पुलिस थाने में सही रिपोर्ट दर्ज नहीं करातीं। यह मरण पूर्व अंतिम बयान औरत की मानवीय क्षमाशील प्रवृत्ति का घोतक है। जबकि उसको क्रूर यातनायें दी गयी, फिर भी अपने परिवार के प्रति क्षमाशील रहती है, सब कुछ मिट जाने के बाद। शायद इसीलिए अपराधी संस्कृति का साहसरूपी ग्राफ बढ़ रहा है, क्योंकि उत्पीड़ित ही उत्पीड़न का साथ दे रहा। कानून और न्याय व्यवस्था की इतनी ढीली व कमजोर स्थिति है कि सबूत के अभाव में शक्तिशाली अपराधी कई बार बेगुनाह सिद्ध हो जाता है और कभी किसी कारणवश पकडा भी जाता है तो न्याय की जाँच की अवधि इतनी लम्बी होती है कि मुकदमा के निर्णय हेतु दूसरा जन्म लेना पड़ें यथा :–

हत्यारे ने औरत को मारने में दो मिंट लगाये,
इस पर दो शताब्दियों तक चलता रहा मुकदमा।।

स्त्री की अपनी अस्मिता की लड़ाई दोहरी है। एक तरफ तमाम प्रकार के भेदभावों व पुरूष वर्चस्व के

खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई है, तो दूसरे तरफ वह स्त्रीं खुद को अपने भीतर सदियों से जड़े जमाकर बैठी संस्कारबद्धता, रूढ़िवादिता एवं गुलाम मानसिकता, स्वेच्छापूर्ण स्वीकृति के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई है। अतः स्त्री को अनगिनत प्रश्नों से जूझना होगा वरना दूसरों के भरोंसे रही तो उसे मिलेगा जो दूसरे उसे देना चाहेंगे। आज अच्छा देने वालों की संख्या पर्याप्त नहीं है। यह चिंता का विषय है।

आज मानव मूल्यों का क्षरण हो रहा है। हमारी चेतना मर रही है 'रात में हारमोनियम' के स्वर सांसारिक सन्नाटे को तोड़कर ब्रम्हाण्ड तक गूँज रहे हैं, परन्तु मानव जाति को यह ध्वनि सुनाई नहीं पड़ रही।

संक्षेप में कुछ साहित्यकार यथार्थ लिखना तो चाहते हैं, पर लिख नहीं पा रहे कारण वे ही जानें। प्रकाशन भी जनसेवा और देश सेवा का मार्ग है, धनपति कुबेर बनने की मंजिल नहीं। आज भी औरत जलील होते हुए भी पति की दीघार्यु हेतु सुहागिन रहने के लिए रखती है। करवा चौथ का व्रत। साथ ही पुत्राधिकार की कामना और पुत्री को जन्म पर प्रश्न चिन्ह। वास्तव में समकालीन कविता के दिमाग में आतों के एक्सरें का केन्द्रीय तनाव प्रत्यक्ष है। अतः आज सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि सत्य के विचारों रूपी मशाल लेकर कंधा से कंधा मिलाकर मूल्यों को सहेजते हुए मानवता के प्रगति पथ पर अग्रसर हों। हमें अपनी कलम की धार जीवन मूल्यों की ओर करनी ही होगी। तभी लेखनी सार्थक होगी। कड़वे शब्दों के लिए विद्वतजनों से क्षमा प्रार्थी।

संदर्भ संकेत :-

1. साहित्य और संस्कृति – डॉ. आर. डी. मिश्र।
2. देश के देवता – पं. भैयालाल व्यास।
3. निराला और उनकी परवर्ती कविता में – डॉ. दौलत बाढ़ेकर मुक्तिगान।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र।
5. समकालीन गीतकाव्य – डॉ. फिरदौस खान।
6. रात में हारमोनियम – डॉ उदयप्रकाश।
7. नारीवादी विमर्श – डॉ. राकेश कुमार।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 190-194

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सभ्यता विमर्श और गांधी की समावेशीय दृष्टि

डॉ. प्रार्थना सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), फ0 अ0 अ0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर।

डॉ. रविश कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र), फ0 अ0 अ0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर।

गांधी की विचारधारा या दर्शन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रस्थान बिंदु था। राष्ट्रीय परिदृश्य में गांधी के आने के बाद ही समाज में हाशिए पर रहे लोग शामिल हुए तथा आन्दोलन का स्वरूप वास्तव में राष्ट्रीय हुआ। गांधी जी ने आधुनिकता का नया मॉडल पेश किया। उन्होंने औपनिवेशिक आधुनिकता को खारिज कर दिया। गांधी जी ने आधुनिकता का संबंध मानव सभ्यता की उन उपलब्धियों से माना जो भारतीय संस्कृति से उद्भूत थीं तथा मनुष्यता की देन थीं। वर्तमान दौर, वैश्वीकरण के साथ बढ़ता पूंजीवादी उपभोग को प्रेरित करता है जिससे संसाधनों का दोहन और सामाजिक असमानता में वृद्धि होती है। आज, एक ऐसे जीवन की स्थापना करना चुनौती है जो न केवल मनुष्य के भौतिक हितों की पूर्ति करे बल्कि प्रकति और समाज के साथ भी संतुलन बनाए रखे। यह अवधारणा सतत जीवन की है। ऐसे समय में महात्मा गांधी का जीवन दर्शन एवं जीवन शैली न केवल प्रासंगिक प्रतीत होता है बल्कि एक नैतिक विकल्प के रूप में सामने आता है।

हम जिस मूल्य को जीते हैं वह हमारी सभ्यता में प्रकट होता है, गांधी जी उसी वक्त (हिन्द स्वराज, 1909) इस सभ्यता के मूल भौतिकवादी चरित्र तथा विस्तारवादी नीति को पहचान गए थे।[1] पूंजीवाद, मूलतः एक आर्थिक व्यवस्था है जो निजी स्वामित्व, मुक्त बाजार और मुनाफे की प्राथमिकता पर आधारित होती है। एडम स्मिथ के अनुसार, "पूंजीवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधन निजी स्वामित्व में होते हैं, और लाभ कमाना मुख्य उद्देश्य होता है।[2] "गांधी जी ने पूंजीवाद के इसी चरित्र के आधार पर इस सभ्यता को अमानवीय कहा था। समय के साथ पूंजीवादी सभ्यता के दोषों मे न केवल मात्रात्मक वृद्धि हुई है बल्कि उसमें गुणात्मक परिवर्तन भी हो गया है। हिन्द स्वराज (1909) में गांधी जी ने पाश्चात्य सभ्यता जो कि वास्तव में आधुनिक सभ्यता के रूप में जानी जाती है, की पहचान करते हुए कहा कि इस सभ्यता की निशानी अधिक से अधिक यंत्रों का प्रयोग करना है, अच्छा से अच्छा खाना, पहनना तथा उन्नत औजारों तथा हथियारों का प्रयोग करना, अधिक से अधिक सम्पत्ति जमा करना तथा लोगों को दास बना कर उनसे काम लेना ही इस सभ्यता की निशानी है। भौतिक सम्पत्ति का निरंतर उन्नयन इस सभ्यता का उद्देश्य है। इसकी प्राथमिकता सिर्फ शारीरिक सुख में वृद्धि है। आज अतितीव्र वाहन हों या कृषक उपकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, रसोई के उपकरण सभी हमारे को सुख देने वाले ही हैं।

गांधी जी 'हिन्द स्वराज' में लिखते हैं, इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर को सुख में धन्यता सार्थकता और पुरूषार्थ मानते हैं। शरीर का सुख कैसे मिले यही आज की सभ्यता ढूंढती है और यही देने की कोशिश करती है। परंतु वह भी नहीं मिल पाता।[3]

पूंजीवाद एक आर्थिक व्यवस्था है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुसार "पूंजीवाद वह प्रणाली है जो उद्यमिता, निजी निवेश और मुक्त व्यापार के सिद्धांतों पर आधारित होती है और जिसमें आर्थिक निर्णय मुख्यतः बाजार द्वारा संचालित होते है।" बाजार द्वारा संचालित इस व्यवस्था से विकास की आधुनिक अवधारणा का जन्म होता है। भौतिक विकास ही इस विकास का एकमात्र मापदण्ड है और अत्यधिक उपभोग इस सभ्यता की प्राथमिकता है क्योंकि विकास का पूरा दारोमदार उद्योग पर है। अत्यधिक उपभोग से देश का औद्योगिकरण होगा जिससे देश विकसित माना जाएगा। विकास की इस अवधारणा से एक ऐसी भोगवादी जीवन पद्धति को जन्म दिया है जिसमें मनुष्य जरूरी और गैर ज़रूरी चीज़ों को जरूरी बना देता है। प्रचार माध्यम, विज्ञापन के द्वारा लोगों को समझाने में सफल हो जाता है कि इस सामान या वस्तु के बिना उनका जीवन अधूरा है। इसको खरीदते ही उनका जीवन अर्थपूर्ण हो जाएगा।[4] यंत्र आधारित इस अर्थवयवस्था में बड़े–बड़े कारखानों में बड़े–बड़े यंत्रों ने मनुष्यों की आवश्यकता कम कर दी है। नित नवीन अविष्कारों ने इतना ज्यादा मानव को हाईटेक कर दिया है कि वर्ष में अत्यंत कुशल कारीगर अगले वर्ष नवीन अविष्कार से बेकार हो जा रहा है तथा छंटनी का शिकार हो जा रहा है।

आज रूस–यूक्रेन युद्ध से भी स्पष्ट है कि युद्ध में भी मानव की जगह ड्रोन ने ले ली है। इन कारखानों में कम से कम मजदूरी देकर अधिक से अधिक काम कराया जाता है तथा अधिक से अधिक लाभ पर बेचने का प्रयास किया जाता है। इसी कारण गांधीजी यंत्रों का तीव्र विरोध करते हुए कहते हैं, "यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं साफ़ देख सकता हूँ। यंत्र साँप का ऐसा बिल है जिसमें एक नहीं बल्कि सैकड़ों सांप होते है। एक के पीछे दूसरा लगा ही रहता है। जहाँ यंत्र होगे वहाँ बड़े शहर होगें, जहाँ बड़े शहर होगें वहाँ ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी, बिजली–बत्ती की जरूरत होगी। प्रमाणिक डॉक्टर आपको बताऐगें कि जहाँ रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी साधन बढ़े हैं, वहाँ लोगो की तन्दरूस्ती गिरी हुई है। यंत्र का गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता जबकि उसके अवणुओं पर मैं पूरी किताब लिख सकता हूँ।"

अपनी प्रारम्भिक तल्ख टिप्पणी में थोड़ा संशोधन करते हुए उन यंत्रों से सहमत होते हैं जिनसे किसी कार्य को करने में तो सहायता मिलती हो पर किसी का शोषण ना होता हो। हिन्द स्वराज्य की प्रस्तावना में गांधी जी कहते हैं, "मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है। आप तो जिन्हें मेहनत बचाने वाले यंत्र कहते हैं, उनके पीछे लोग पागल हो गए हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ परन्तु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव जाति की होनी चाहिए।"[5]

गांधी जी पाश्चात्य सभ्यता को खारिज कर भारतीय सभ्यता के गुणों को प्रस्तुत करते हैं। इस भोगवाद के विरूद्ध गांधी जी कहते हैं कि "भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है भोगभूमि नहीं।" नीति और धर्म भारतीय सभ्यता के केन्द्र है। इसे वह भारतीय सभ्यता का मूल मानते हुए परिभाषित करते हैं, "सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फ़र्ज अदा करता है। फ़र्ज अदा करने का मतलब है नीति का पालन करना नीति के पालन

का मतलब है अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को पहचानते हैं, यही सभ्यता है।"[6]

वर्तमान समय पूरी दुनिया में चिंता का बिषय बना हुआ है क्योंकि प्रकृति के अंधाधुन दोहन ने पृथ्वी के संतुलन को बिगाड़ दिया है। बेलगाम प्राकृतिक दोहन ने मानव को चौतरफा जलवायु संकटों से घेर दिया है। वह जलवायु परिवर्तनों से पड़ने वाले सूखे और बाढ़ की समस्याओं के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति, औद्योगिक कचरे को सोखती नदी, विशालकाय बांधों से बंधी नदी, न्यूक्लियर कचरे की, प्लास्टिक कचरे की समस्या से जूझती हिमनदीं के पिघलने से छिनती भूमि, घटते पेयजल इत्यादि। अनगिनत समस्याओं से संघर्ष कर रहा हैं किन्तु विकास की बाढ़ को अब रोका नहीं जा सकता हैं किन्तु हमें ठहर कर सोचना होगा कि विकास की यह पाश्चात्य प्रक्रिया संधारणीय है कि नहीं? नित नवीन प्राकृतिक आपदाओं से घिरा मानव आज पुनः अपनी जीवन शैली पर विचार करता हुआ सतत जीवन की बात कर रहा है। सतत विकास, विकास की वह अवस्था है जिसमें वर्तमान समय की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और आने वाली पीढ़ियों के आवश्यकता की भी पूर्ति सम्भव हो और विकास की इस प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों के अस्तित्व पर खतरा भी ना हो। सतत विकास की अवधारणा 1987 में ब्रटलैण्ड आयोग ने दी "विकास ऐसा होना चाहिए जो वर्तमान की जरूरतों की पूर्ति इस प्रकार करें, जिससे भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा करने की क्षमता पर असर ना हो।" इिस आयोग के अनुसार सतत विकास के तीन उद्देश्य हैंः 1. आर्थिक कुशलता 2. सामाजिक स्वीकार्यता 3. परिस्थितिकीय टिकाऊपन।

वर्ष 1992 में रियो डी जेरेरो (ब्राजील) में वैश्विक पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र का शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया। इसे 'पृथ्वी समिट' के नाम से जाना गया। विश्व के 178 देशों ने पहली बार स्वीकार किया कि विकास की प्रक्रिया संधारणीय होनी चाहिए। इस सम्मेलन में 'एजेण्ड 21' के माध्यम से विकास को सामाजिक, आर्थिंक और पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ बनाने पर बात की गई। "रियो घोषणा पत्र" में सतत विकास के लिए आधारभूत 27 पर्यावरणीय बिन्दु शामिल किए गए। इसी सम्मेलन में ग्लोबल वार्मिंग के दुष्परिणामों से बचने के लिए एक सार्वजनिक संधि की ग्लोबल वार्मिंग संविदा में हस्ताक्षरी देश कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन जैसे हानिकारक गैसों के उत्पादन को कम करेगें। इसमें वनों से सम्बन्धित एक सैद्धान्तिक नीति बनायी गई ताकि वनों का क्षय ना हो और वनों के संरक्षण को प्राथमिकता दी जाए।

सतत विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों के बीच महात्मा गांधी का कहा बरबस याद आ रहा है कि "हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस पृथ्वी पर पर्याप्त संसाधन हैं मगर हमारे लालच के लिए नहीं ये प्राकृतिक संसाधन मानव का पेट भर सकते हैं किन्तु 24 घण्टे चलने वाली मशीनों का नहीं। गांधीजी की दृष्टि संसाधनों के समझदारी भरे उपयोग दी ना कि अतिशय उपभोग की। उनका मूल विरोध यंत्रीकरण के विरूद्ध यही था। आज उस मानवीय लालच की कीमत दुनिया का जलवायु परिवर्तन के रूप में चुकानी पड़ रही है। गांधी जी के समय में ना पर्यावरणीय प्रदूषण था ना ही इसके संरक्षण के प्रयास किए जा रहे थे किन्तु गांधी जी ने अपनी दूरदर्शिता से उसी समय इस समस्या को रेखाकिंत कर दिया था," यूरोपीय लोगों को अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करना होगा। यूके में एक व्यक्ति जितना उपभोग करता है, उतना अगर दुनिया का हर व्यक्ति उपभोग करे तो सब की जरूरतों को पूरा करने के लिए हमें धरती जैसे तीन ग्रहों की आवश्यकता होगी।

गांधी जी ने जून 1921, में उत्तराखण्ड में अल्मोड़ा प्रयास के समय अपनी डायरी में हिमालय की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा, "यदि हिमालय ना होता तो गंगा, यमुना, ब्रहमपुत्र और सिन्धु भी न होती। हिमालय ना हो तो ये नदियां न हों, न वर्षा हो और वर्षा न हो तो भारत रेगिस्तान या सहारा की मरूभूमि बन जाए।"

गांधी जी की पर्यावरणीय दृष्टि बहुत व्यापक थी जो मनुष्यों के साथ ही पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीव–जंतुओं तथा वनस्पति तक विस्तृत थी। वह मानव का प्रकृति के साथ सामंजस्य तथा साहचर्य चाहते थे। उन्होंने पश्चिम की नकल या तकनीक के अंधानुकरण के प्रति जागरूक होने को कहा उनका मानना था कि पश्चिम के देशों की नकल यदि सभी देश करने लगें तो गम्भीर पर्यारण संकट पनप सकता और प्रकृति के संसाधन समाप्त हो जाऐंगे। सतत विकास की जिस परिभाषा को ब्रंटलैण्ड आयोग में 178 देशों ने मिलकर बनाया उसे एक सदी पूर्व ही गांधी जी परिभाषित कर चुके थे कि पृथ्वी, जल, वायु, तथा भूमि हमारे पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्तियाँ नहीं हैं। वे हमारे बच्चों की धरोहरें हैं। वे जैसी हमें मिली है वैसी ही उन्हें भावी पीढ़ियों को सौंपना होगा।

गांधी जी ने कृषि एवं कुटीर उद्योगों पर आधारित एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था की वकालत की। स्वदेशी का विचार ना केवल प्रकृति की संरक्षण करता है बल्कि ग्रामीण जीवन के हर एक हाथ को हुनरमंद बनाता है और आजीविका प्रदान करता है। व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताऐं 15 से 20 किलोमीटर के दायरे में पूरा कर सकता है। आज इसे हम पूरा (Pura - Providing Urban Aminities In Rural Area) के माध्यम से करना चाहते हैं। गांधी जी का नमक आन्दोलन (1930) प्राकृतिक संसाधनों तक आम लोगों के पहुँच को प्रेरित करता है। एक आत्मनिर्भर गांव एक समग्र जीवन का पर्याय है जिसे गांधी जी ने जॉन रस्किन की 'अन्टू दि लास्ट' से प्रेरित 'सर्वोदय' में व्यक्त किया है। सर्वोदय एक वर्गविहिन, जातिविहिन और शोषणमुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सर्वांगीण विकास का साधन मिले। आज सतत् विकास (SDG - Sustainable Development Goals) के 17 लक्ष्यों में गरीबों, गरिमामय जीवन, शिक्षा, स्वच्छ जल आदि प्रमुखता से उभरे हैं।

अपनी पुस्तक 'की टू हेल्थ स्वास्थ्य की कुंजी में उन्होंने हवा, पानी भोजन में उन्होंने हवा को सर्वोपरि बताया। इसी प्रकार पानी के मुद्दे पर उन्होंने भारतीय रियासतों को सलाह दी थी कि संघ बनाकर दीर्घकालिक नीति बनायें, वनीकरण पर जो दिया तथा वर्षा जल के संचयन को बताने वाले वे पहले पर्यावरणविद थे। पर्यावरण संरक्षण का जो तरीका गांधी जी ने बताया है वह भारतीय संस्कृति का मूल है वह त्याग का तरीका है। ईशास्योपनिषद् में कहा गया है, तेन त्यक्तेन भुज्जीथा, अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करो। गांधी जी कहते हैं, कि भौतिक सुखों और आराम के साधनों के निर्माण और उनकी निरंतर खोज में लगे रहना ही अपने आप में एक बुराई है। आज गांधी जी की शिक्षाएँ और अधिक प्रासंगिक हो गई हैं। आज की जीवन शैली भोग और निरंतर उपभोग की है। व्यक्ति स्वयं नहीं जानता कि वह क्या चाहता है निरंतर गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा का हिस्सा बना हुआ है। प्रकृति से सामंजस्य बनाने में गांधीवादी मूल्य अपनायेगें तो ही ग्लोबल वार्मिंग जैसे समस्याऐं कम हो सकती है। हमारी जरूरतें धीरे–धीरे ख्वाहिशों में बदल जाती हैं जिससे हम अत्यधिक संसाधनों का उपभोग करने लगते है और हाशिए पर खड़ा वह अंतिम आदमी दरकिनार हो जाता है जिसे संसाधनों की सबसे ज्यादा आवश्यकता थी। इस दृष्टि से हिन्द स्वराज को सभ्यता पाठ का प्रमाणिक दस्तावेज माना जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. वर्मा, सरोज कुमार वर्मा, हिन्दी स्वराज : सभ्यता विमर्श का समावेशी पाठ, योजना, जनवरी 2010, पेज 49
2. एम.के. गांधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1949, पेज 17–18
3. सरोज कुमार वर्मा, हिन्द स्वराज : सभ्यता विमर्श का समावेशी पाठ योजना, जनवरी, 2010, पेज 50
4. एम.के. गांधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1949,पेज 78–79
5. एम.के. गांधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1949, पेज 42, 49

ईमेल– prarthanasingh4@gmail.com

ईमेल– dr.raveeshsocio@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 195-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनसंख्या नियंत्रण में परिवार नियोजन की भूमिका

डॉ. विजेता सिंह

शोधार्थी, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

शोध सारांश :-

परिवार कल्याण कार्यक्रम की उपयोगिता भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि प्रतिदिन सैकड़ों बच्चों का आगमन चिन्ता का विषय बना हुआ है। यदि जन्मदर में कमी नहीं लाई गई तो देश में जनसंख्या के ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट को लाई गई तो देश में जनसंख्या के जनसंख्या ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट को टाला नहीं जा सकेगा और आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य और सुप्रजनन से जुड़े पक्ष अविकसित रह जायेंगे। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य व परिवार कल्याण के मार्ग में आज धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक बाधाएँ अवरोध उत्पन्न कर रही हैं। आवश्यकता है स्वास्थ्य वर परिवार कल्याण कार्यक्रम की उपयोगिता को उजागर करने व इसके अवरोधक तत्त्वों को उद्घाटित करने की। वर्तमान अध्ययन इसकी पूर्ति का एक प्रयास है। परिवार कल्याण नीति से परिवार नियोजन के स्थान पर सरकार ने परिवार कल्याण पर बल देना शुरू किया और इस कार्यक्रम को अधिक मानवीय उपयोगी एवं व्यापक बनाया गया।

कीवर्ड– जनसंख्या नियंत्रण, परिवार नियोजन।

भूमिका :-

स्वतंत्रता से पूर्व परिवार नियोजन के क्षेत्र में राज्य द्वारा कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये कुछ निजी संगठनों एवं व्यक्तिगत स्तर पर लोगों ने जन्म नियन्त्रण की आवश्यकता पर बल दिया। 1916 में श्री पी. के. वाताल ने अपनी पुस्तक 'पापुलेशन प्राब्लम इन इण्डिया' में परिवार का आकार सीमित रखने की वकालत की। 1921 में प्रो. रघुनाथ धेन्धे कार्वे ने जन्म नियन्त्रण की वकालत की। 1923 में प्रो. एन.एस. फाडेक ने मुम्बई प्रेसीडेन्सी में 'जन्म नियन्त्रण लीग' की स्थापना की। 1930 में मैसूर सरकार ने विश्व का पहला सरकारी 'जन्म नियंत्रण क्लीनिक' स्थापित किया। मद्रास विश्वविद्यालय ने 1932 में गर्भ निरोधकों के विषय में शिक्षा प्रारम्भ की। 1932 में आल इण्डिया वूमेनस कान्फ्रेस, लखनउ ने सिफारिश की कि महिलाओ एवं पुरूषों को मान्यता प्राप्त चिकित्सालयों में जन्म नियंत्रण के साधनों के बारे में शिक्षित किया जाये। 1935 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में नेशनल कमेटी का गठन किया। इस समिति ने जोरदार तरीके से परिवार नियोजन कार्यक्रम की सिफारिश की। 1935 में श्री कोवासजी जहाँगीर की अध्यक्षता में परिवार स्वच्छता का अध्ययन एवं प्रसार करने के लिए एक सोसायटी का निर्माण किया गया। 1940 में डा. पी.एन. सप्रू ने देश में जन्म नियंत्रण क्लीनिक खोलने के लिए काउन्सिल आफ स्टेट्स में सफल अभियान चलाया। 1943 में श्री जोसेफ भोर

की अध्यक्षता में एक 'स्वास्थ्य कमेटी' का गठन किया गया जिसने जन्म नियन्त्रण सेवाएँ उपलब्ध कराने की सिफारिश की।

मार्च 1950 में भारत सरकार ने योजना आयोग का गठन किया। 11 अप्रैल, 1951 को योजना आयोग के सलाहकार पैनल ने स्वास्थ्य नियोजन की उप–समिति का गठन किया। इस उपसमिति ने जोरदार तरीके से सिफारिश की कि परिवार नियोजन को आधिकारिक तौर पर स्वीकार किया जाय। अतः 1952 में योजना आयोग ने परिवार नियोजन कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर प्रारम्भ करने की सिफारिश की। इस प्रकार 1952 में जनसंख्या नियंत्रण को विकास की व्यूह–रचना के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया।

परिवार नियोजन कार्यक्रम की सिफारिश करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में यह कहा गया कि माँ का उत्तम स्वास्थ्य एवं बच्चे की उत्तम देखभाल व लालन–पालन के लिए परिवार का आकार सीमित करना एवं बच्चों के जन्म में अन्तर रखना वांछनीय है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1961–66) में कहा गया है कि नियोजित विकास के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करने के लिए निश्चित अवधि के लक्ष्य निर्धारित किये जायें। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कहा गया कि लोगों का सामाजिक आर्थिक स्तर उन्नत करने का भारत का लक्ष्य मात्र तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जनसंख्या वृद्धि दर को नियन्त्रित कर दिया जाये तथा मानवीय कौशलों एवं संसाधनों का समुचित विकास किया जाये। इस पंचवर्षीय योजना में अगले 10–12 व ों में जन्म दर को 39 से 25 प्रति हजार पर लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

पंचम पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य, मातृत्व, बाल स्वास्थ्य एवं पोषण का समन्वित कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। 16 अप्रैल, 1976 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। इस नीति में कहा गया 'जन्म–दर में कमी लाने के लिए शिक्षा एवं आर्थिक विकास का इंतजार करना अव्यावहारिक समाधान है। जनसंख्या में प्रत्येक वृद्धि तक जनसंख्या वृद्धि के मामले पर सरकार धैर्यहीन हो चुकी थी। 1975 में तत्कालीन प्रधनमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने देश में आपातकाल लागू कर दिया। इस काल में परिवार नियोजन के क्रूर उपागम का प्रयोग किया गया। 1977 में जनता पार्टी की सरकार सत्ता में आई और इसके परिवार नियोजन कार्यक्रम का स्वरूप बदल दिया। इस सरकार ने परिवार नियोजन पर अधिक बल दिया। जनता पार्टी सरकार ने 1975 की जनसंख्या नीति का पुनर्रावलोकन किया तथा इस नीति को परिवर्तित कर 1977 में पालिसी आन फैमिली वेलफेयर (परिवार कल्याण नीति) की घोषणा की।

1980 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी पुनः सत्ता में आई परंतु उन्होंने अपने पिछले अनुभवों से सीख लेते हुए परिवार नियोजन कार्यक्रम को ऐच्छिक बना दिया। सप्तम पंचवर्षीय योजना (1985–90) में कुछ जनांकिकी लक्ष्य निर्धारित किये गये। जुलाई, 1993 में भारत सरकार ने डा. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया जिसका कार्य सरकार के विचारार्थ राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के प्रारूप का निर्माण करना था। 1994 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया परंतु इसकी सिफारिशें अभी स्वीकृति के इंतजार में है। 15 अक्टूबर 1997 को जननी एवं बाल स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम में परिवार नियोजन जननी एवं बाल देखभाल, यौन जनित रोगों के उपचार आदि से संबंधित सेवाओं का एक पैकेज है। देश के सभी जिलों को इस कार्यक्रम के लिए तीन भागों में विभक्त किया गया है। इस वर्गीकरण में अशोधित जन्म–दर एवं महिला साक्षरता दर को आधार माना गया है। यह तीन वर्ग हैं – (1) 58 जिलें, (2) 84

जिलें एवं (3) 265 जिले। इन जिलों को चरणबद्ध तरीके से तीन वर्षों में सम्मिलित किया गया है। 9वीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम की अनुमानित लागत 5112.53 करोड़ रूपये मानी गई है। इस कार्यक्रम के प्रथम चरण के लिए विश्व बैंक ने 24.83 करोड़ अमेरिकन धनराशि देने का वचन दिया है। यूरोपियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक सहायता प्रदान की है। 1997–2002 के मध्य पल्स पोलियो टीकाकरण कार्य सफलतापूर्वक संचालित किया गया। वर्तमान में यह कार्यक्रम उन राज्यों से संचालित किया जा रहा है जहाँ पोलियो के कुछ केस 2002 के उपरांत भी प्रकाश में आये हैं।

परिवार नियोजन कार्यक्रम से जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण होता है जिससे इसके अनेक अप्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं। बच्चों की परिवार में संख्या कम होने एवं उनके जन्म में अन्तर होने का प्रभाव माँ व बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण पर पड़ता है जिससे मृत्यु–दर में कमी आती है। परिवार नियोजन से छोटे परिवार रखने में सहायता मिलती है जिससे परिवार में आय में वृद्धि हुए बिना भी जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। छोटे परिवार में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण की स्थित अच्छी होती है। जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण होने से सामान्य सामाजिक सेवाओं तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, यातायात आदि पर जनसंख्या का दबाव कम होता है जिससे कुल मिलाकर जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। जनता में जागरूकता का अभाव है। परिवार इस कार्यक्रम को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए भारत में मुख्य तौर पर इसके पक्षों पर अधिक बल दिया जाता है।

साहित्य की समीक्षा :–

- श्रीनिवासन (1978) ने कर्नाटक प्रदेश में परिवार नियोजन कार्यक्रम जन्म दर आधारित सर्वेक्षण के द्वारा पाया कि शिक्षित महिलाओं में तथ्यों के जन्म दर वृद्धि को कम रखने की प्रव त्ति है। अतः यह कदम आधुनिकीकरण की परिस्थिति 74 के अनुरुप है।
- राव तथा कनवर्गी (1977) ने प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर गर्भपात सेवाओं के कार्यक्रम में सुधार की बात को अपनाया है। इसी प्रकार पिल्लई ने भी परिवार कल्याण कार्यक्रम को अपनाने वाले जनसमूहों पर अध्ययन किया और पाया कि वे ही इस कार्यक्रम से ज्यादा संतुष्ट हैं जो संचार प्रकरणों से लाभान्वित हैं।
- खान, प्रसाद और मजुमदार ने परिवार कल्याण कार्यक्रम के बारे में लोगों के प्रत्यक्षीकरण से जुड़े अध्ययन किये और पाया कि आम जन समुदाय परिवार नियोजन को संकीर्ण अवधारणा के रूप में समझते हैं। अधिकांश जन समूह इसे बंध्याकरण की संज्ञा देते हैं।
- शाह (1977) ने सिंहपुर, पश्चिम बंगाल में स्थित ग्रामीण क्षेत्रो का अध्ययन किया और पाया कि सीमित परिवार की इच्छा रखने वाले अधिकांश जनसमूह है लेकिन प्रायोगिक क्षेत्र में जन्म दर की मात्रा अप्रायोगिक क्षेत्र की अपेक्षा बहुत ही कम है।
- मिश्रा (1978) ने भारत के सत्रह प्रदेशों में शोध–कार्य सम्पन्न किये और पाया कि यह कार्यक्रम उस जगह पर ज्यादा सफल है जहाँ अत्यधिक संसभ्य उच्च शिक्षा स्तर तथा प्रति व्यक्ति आय अधिक है।
- रेले और कणित्कर (1980) ने विवाहित महिलाओं को प्रजनन व्यवहार की यथास्थिति जानने हेतु अध्ययन किया।

अध्ययन का उद्देश्य :–

जनसंख्या नियंत्रण में परिवार नियोजन कि भूमिका का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन पद्धति :–

अध्ययन ने द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से सम्बंधित ग्रन्थों, इंटरनेट, सरकारी रिपोर्ट, गैर सरकारी रिपोर्ट, शोध आलेख, जनगणना, पत्र–पत्रिकाओं आदि को सम्मिलित किया गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

जनसंख्या नियंत्रण में परिवार नियोजन की भूमिका :–

भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त परिवार नियोजन के क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति हुई है। साथ ही लोगों के जीवन–स्तर में भी सुधार आया है। शिशु मृत्यु–दर एवं अशोधित मृत्यु–दर तेजी से कम होकर क्रमशः 70 एवं 8.7 प्रति हजार के स्तर पर आ गई है। जीवन प्रत्याशा भी बढ़कर पुरूषों के लिए 60.4 एवं महिलाओं के लिए 61.8 वर्ष हो गई है। साक्षरता दरों में भी सुधार हुआ है। साक्षरता दर 65.4 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गई है। यद्यपि भारत ने सामाजिक आर्थिक मोर्चे पर काफी प्रगति की है परंतु प्रगति दर अपेक्षाकृत धीमी रही है। सभी क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद भारत में जन्म–दर में कमी लाने में आशातीत सफलता नहीं मिली इसलिए जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दर उँची बनी रही वर्तमान में अशुद्ध जन्म–दर 26.9 प्रति हजार है जो अशुद्ध मृत्यु–दर के अनुपात में बहुत अधिक है। इतने प्रयास करने के बाद भी भारत में लगभग आधे युगल परिवार नियोजन के साधनों से सुरक्षित नहीं हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं में किया जा सकता है :–

- **परिवार नियोजन कार्यक्रम की लोकप्रियता में वृद्धि** – प्राचीन काल की अड़चनों के उपरान्त परिवार नियोजन कार्यक्रम की लोकप्रियता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है। शनैः–शनैः छोटे परिवार के मानक के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। अब अधिकतर युवा जोड़े छोटे परिवार के मानक का पालन कर रहे हैं। बड़े पैमाने पर परिवार नियोजन के साधनों का उपयोग किया जा रहा है। इसका प्रभाव जनसंख्या वृद्धि दर पर भी पड़ता है।
- **परिवार नियोजन कार्यक्रम की लोकप्रियता में वृद्धि** – प्रारम्भिक काल की अड़चनों के उपरान्त परिवार नियोजन कार्यक्रम की लोकप्रियता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है। शनैः–शनैः छोटे परिवार के मानक के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। अब अधिकतर युवा जोड़े छोटे परिवार के मानक का पालन कर रहे हैं। बड़े पैमाने पर परिवार नियोजन के साधनों का उपयोग किया जा रहा है। इसका प्रभाव जनसंख्या वृद्धि दर पर भी पड़ता है।
- **मेडिकल टर्मिनेशन आफ प्रिगनेन्सी एक्ट** – सन् 1971 का मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रिगनेन्सी एक्ट भारतीय परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता में मील का पत्थर है। इस अधिनियम के पारित होने से महिलाओं को अपने अवांछित गर्भ को समाप्त कराने का कानूनी अधिकार मिला है। गर्भपात को वैधानिक बनाने से देश के हजारों सरकारी एवं गैर–सरकारी चिकित्सालय एवं नर्सिंग होम महिलाओं को अनचाहे गर्भ से निजात दिलाकर जनसंख्या वृद्धि रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।
- **जन्म–दर एवं वृद्धि दर में कमी** – परिवार नियोजन कार्यक्रम के कारण भारत में जन्म–दर में कमी आई

है परंतु यह कमी आशातीत नहीं है। भारत में 1951 में जन्म–दर 39.9 प्रति हजार थी यह 1999 में घटकर 26.9 प्रति हजार पर आ गई। जनसंख्या की जन्म–दर में कमी का भारत में जनसंख्या वृद्धि दर पर भी मामूली प्रभाव पड़ा। 1961–71 में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि पर 24.8 प्रतिशत थी वह घटकर 21.3 प्रतिशत रह गई।

- **परिवार नियोजन सेवाओं का विस्तार** – भारत में परिवार नियोजन सुविधाओं की उपलब्धता में पर्याप्त सुधार हुआ है। गर्भ निरोधकों के रूप में कॉण्डोम एवं खाने की गोलियाँ अत्याधिक सस्ती दरों पर सभी मेडिकल स्टोर्स पर उपलब्ध हैं। सरकारी अस्पतालों एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर इनके निःशुल्क वितरण की भी व्यवस्था है। कॉपर टी एवं लूप लगाने की सुविधा सभ निजी सरकारी अस्पतालों में उपलब्ध हैं। इसी कारण 50 प्रतिशत से अधिक दम्पत्तियों ने परिवार नियोजन साधनों के द्वारा स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। महिलाओं में परिवार नियोजन के साधनों का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है।
- **जनसंख्या सम्बन्धी अनुसंधान को प्रोत्साहन** – देश में जनसंख्या संबंधी अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। विश्वविद्यालय स्तर पर जनांकिकी, जनसंख्या अध्ययन, जनसंख्या शिक्षा, गृहविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों में जनसंख्या संबंधी शोध हो रहे हैं। परिवार नियोजन के उपायों पर चिकित्सा विज्ञान में भी पर्याप्त शोध हो रहा है। जनसंख्या के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शोध संस्थानों, यथा इन्स्टीट्यूट फार पापुलेशन स्टडीज, मुम्बई, डेमेग्रफिक रिसर्च सेण्टर, कोलकाता, दिल्ली, त्रिवेन्द्रम आदि स्थाापित हुए हैं।
- **जनसंख्या संबंधी आंकड़ों का प्रसारण** – भारत में जनसंख्या संबंधी आंकड़े विभिन्न पुस्तकालयों एवं भारत सरकार के विभिन्न कार्यालयों में उपलब्ध हैं। रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया के आंकड़ों के प्रसारण का अलग विभाग स्थापित कर रखा है। जनगणना संबंधी आंकड़े विस्तार से प्रकाशित किए जाते हैं। जनसंख्या संबंधी आंकड़े की उपलब्धता से लोगों में जनसंख्या विस्फोट के प्रति चेतना उत्पन्न हुई हैं।
- **छोटे परिवार के मानक की स्थापना** – भारत में छोटे परिवार का मानक स्थपित होता जा रहा है। उच्च एवं मध्यम आय वर्ग में यह मानक स्थापित हो चुका है, जबकि निम्न आय वर्ग में भी इसके प्रति चेतना बढ़ रही है। साक्षरता में वृद्धि एवं समग्र सामाजिक आर्थिक विकास के द्वारा निम्न आय वर्ग एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों में भी छोटे परिवार का मानक स्थापित किया जा सकता है।

निष्कर्ष :–

परिवार नियोजन जनसंख्या नियंत्रण में सकारात्मक भूमिका निभाता रहा है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि संसाधनों की कमी और पर्यावरणीय समस्याओं का कारण बन सकती है। जब परिवार अपनी प्रजनन क्षमता को नियंत्रित करते हैं, तो इससे जनसंख्या वृद्धि नियंत्रित होती है और प्राकृतिक संसाधनों का सही तरीके से उपयोग संभव हो पाता है। समाज में परिवार नियोजन को स्वीकार किया जा रहा है, इससे महिलाओं और बच्चों के प्रति दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव आया है। समाज में शिक्षा का स्तर बढता है और लोग अपने स्वास्थ्य और भविष्य के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। इससे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहन मिला है। परिवार नियोजन का महत्व न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिरता के लिए है, बल्कि यह पूरे समाज और राष्ट्र के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका रहा है। आज महिलाओं को अपने जीवन के बारे में बेहतर निर्णय लेने की स्वतंत्रता देता है और बच्चों को बेहतर भविष्य की दिशा में अग्रसर किया है। इसलिए परिवार नियोजन को न केवल एक स्वास्थ्य और आर्थिक मुद्दा मानना चाहिए, बल्कि इसे सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति का एक

महत्वपूर्ण अंग भी मानना चाहिए।

सन्दर्भ सूची :–

1. महाजन, धर्मवीर (2004) 'भारतीय समाज : मुद्दे एवं समस्याएँ', विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
2. मौर्य, एस.डी. (2009) 'जनसंख्या भूगोल', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. शर्मा, श्रीनाथ (2009) 'जनजातीय समाजशास्त्र', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
4. श्रीनिवास, एम.एन. (2019) 'सम रिफलेक्शन ऑफ डॉवरी, कल्चर एण्ड ह्यूमन मेंटलिटी इन इण्डिया', इन कलेक्टेउ एस्सेस, न्यू दिल्ली, आक्सफोर्ड।
5. श्रीवास्तव, ए.एल. (2011) 'चिकित्सा समाज विज्ञान की रूपरेखा', उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनउ।
6. साझा पहल (2018), खण्ड 1, अंक 1, जुलाई–सितम्बर, लखनउ।
7. सिंह, सरोज (2010) 'स्वास्थ्य, स्वास्थ्य विज्ञान एवं आरोग्यशास्त्र', वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 5.
8. त्रिपाठी, ए.के. (1987) ग्रामीण स्वास्थ्य संरक्षण प्रशासन, पी–एच.डी. शोध–प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
9. एम.एम. लवानिया (1998) चिकित्सा समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 1.
10. डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह चन्देल एवं डॉ. विजय कुमार नन्द (2010) : जनसंख्या शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
11. हमारा घर (2009), स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, नई दिल्ली, वर्ष–38, अंक 1–3, अप्रैल–दिसम्बर, पृ. 15.
12. गुप्त, शिवनारायण (2009) जनांकिकी के मूलतत्व, वृंदा पब्लिकेशनन्स प्रा. लि., दिल्ली।
13. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
14. मातृ एवं शिशु विकास हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रमों में समेकित प्रशिक्षण पर मोनोग्राफ, भारत सरकार, नई दिल्ली।
15. इण्डिया हैल्थ रिपोर्ट, नई दिल्ली, 2022

Email ID- vijetaluck@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 201-205

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Foreign Language Anxiety: Barriers to Learning French in Indian Classrooms

L. SHERINE JAQULINE MARY
ASSISTANT PROFESSOR IN FRENCH
RATHINAM COLLEGE OF ARTS AND SCIENCE
POLLACHI MAIN RD, KPM NAGAR, EACHANARI,
COIMBATORE, TAMIL NADU641021

Abstract :

Foreign Language Anxiety (FLA) is a psychological barrier commonly faced by language learners, especially in contexts where the foreign language is not used outside the classroom. In Indian classrooms, where French is widely taught as a second or third language, learners often experience anxiety, fear of negative evaluation, and self-consciousness that hinder their performance and participation. This paper examines the causes and effects of FLA in the Indian context and proposes pedagogical and institutional strategies to foster a supportive, communicative, and anxiety-reduced environment for French language learning.

Keywords : Foreign Language Anxiety, French Language Education, Indian Classrooms, Pedagogy, Student Psychology.

1. Introduction :

With the advent of globalization, the ability to speak a foreign language has become increasingly valuable in India. French, in particular, holds a prominent place as a foreign language due to its global utility in international relations, education, travel, and business. However, despite its rising popularity, a significant number of Indian learners report discomfort when learning French, especially during speaking and performance-based tasks.

One of the most critical and under-addressed factors contributing to this challenge is Foreign Language Anxiety (FLA). FLA can affect learners at various stages, impacting their motivation, classroom engagement, and long-term academic decisions. Understanding and addressing this issue is essential for improving the quality and effectiveness of French language instruction in India.

2. Understanding Foreign Language Anxiety :

Foreign Language Anxiety is a situation-specific form of anxiety that arises when learners are required to use or learn a language other than their native tongue (Horwitz et al., 1986). It includes three core components :

- **Communication Apprehension** : Fear of speaking or interacting in the target language due to fear of misunderstanding or embarrassment (Young, 1991).
- **Test Anxiety** : Fear of failing in language assessments, particularly oral and written exams (MacIntyre & Gardner, 1991).
- **Fear of Negative Evaluation** : Concern about being judged by peers or teachers, leading to avoidance of participation (Cheng et al., 1999).

These anxieties often manifest as silence, avoidance, or hesitancy, particularly in oral activities. Left unaddressed, they can deeply hinder the learning process and diminish students' self-perception and performance.

3. FLA in the Indian French Classroom Context :

In Indian French classrooms, FLA is often seen when students hesitate to speak or avoid participation despite knowing the correct answer. This behavior is more evident in semi-urban and rural settings, where students have limited access to authentic language exposure and rarely interact with native speakers or immersive content (Gupta, 2020).

High-achieving students in grammar or writing often underperform in speaking tasks due to a lack of confidence, which further reinforces anxiety. This highlights the need to understand the systemic and contextual causes of anxiety in the Indian classroom.

4. Causes of FLA in Indian Learners :

Several interlinked factors contribute to language anxiety among Indian students :

- **Traditional Grammar-Translation Methods** : Emphasizing translation and grammar rules over communicative competence results in students being academically prepared but orally insecure (Rajan, 2017).
- **Teacher-centred instruction** : When teachers dominate the classroom and restrict interaction, students miss opportunities to engage in spontaneous communication (Gkonou, 2011).
- **Lack of Authentic Input** : Students are often not exposed to native French content—films, podcasts, or conversations—which limits their ability to develop natural fluency and pronunciation (Baran-Lucarz, 2014).
- **Assessment Practices Focused on Accuracy** : Overemphasis on grammatical precision in exams discourages experimentation and risk-taking in communication (Krashen, 1982).

- **Minimal Real-Life Application** : French is often confined to the classroom, making it difficult for learners to internalize and retain the language (Toth, 2008).
- **Social Perceptions of French** : The language is perceived as elite or difficult, creating psychological barriers and increasing pressure to perform flawlessly (Liu & Jackson, 2008).

5. Effects on Learning Outcomes :

The psychological consequences of FLA are long-lasting if not addressed early. Common impacts include :

- **Limited Participation** : Students avoid speaking activities and classroom engagement, which hinders real-time language acquisition.
- **Lowered Confidence** : Anxiety affects learners' self-esteem, making them doubt their linguistic capabilities (Gregersen & Horwitz, 2002).
- **Exam Avoidance and Underperformance :** Oral exams are particularly anxiety-inducing, and many students may underperform or even avoid taking such assessments altogether.
- **Disengagement** : Prolonged discomfort leads to emotional distancing from the subject. Students may lose interest and eventually opt out of further French studies.
- **Reduced Career and Academic Opportunities** : Students affected by anxiety are less likely to pursue language-related higher education or careers, limiting their global mobility.

6. Strategies to Reduce FLA :

Creating a safe, supportive, and encouraging environment is key to reducing anxiety. Suggested strategies include :

- **Fostering a Supportive Atmosphere** : by emphasizing effort over perfection and normalizing mistakes as part of learning.
- **Incorporating Pair and Group Work** : Reduce pressure by encouraging collaboration through dialogues, interviews, and games.
- **Using Multimedia and Authentic Materials** : Integrate songs, films, interviews, and mobile apps to make French engaging and relatable.
- **Encouraging Translanguaging** : Allow students to use their native language to understand complex concepts initially (Dogancay-Aktuna & Hardman, 2018).
- **Shifting Focus to Communication** : Prioritize fluency and spontaneous use over grammatical accuracy, especially during formative assessments.
- **Providing Constructive Feedback** : Offer gentle corrections and positive reinforcement rather than public criticism.

7. The Role of Teachers and Institutions :

Teachers' Responsibilities :

- **Recognize Anxiety Early** : Teachers must be trained to identify signs like silence, fidgeting, or avoidance and respond empathetically.
- **Avoid Comparisons** : Promote self-paced progress instead of ranking students publicly.
- **Scaffold Instruction** : Gradually increase French usage in the classroom to help students acclimate without pressure.
- **Encourage Speaking Opportunities :** Use fun, low-stakes activities like storytelling, drama, or role-play.

Institutional Responsibilities :

- **Offer Teacher Training in Psychology** : Institutions should conduct workshops on student anxiety, inclusive methods, and emotional intelligence.
- **Promote Curricular Innovation** : Curriculum planning meetings should include discussions on learner mental health and differentiated instruction.
- **Host Competitions and Cultural Events :** Events such as poetry readings, Francophone Day celebrations, and film screenings offer low-pressure platforms to practice French creatively.
- **Encourage Conference Participation** : Students should attend academic conferences, webinars, and exchange programs to gain exposure to authentic French use.
- **Reform Assessment Models** : Evaluate oral and written skills based on fluency, communication strategies, and creativity—not only grammatical precision.

8. Conclusion :

Foreign Language Anxiety presents a significant hurdle in the acquisition of French in Indian classrooms. While it stems from a combination of systemic, pedagogical, and psychological factors, its impact can be mitigated through conscious efforts from both teachers and institutions. A shift toward learner-centered, communicative, and emotionally aware teaching methods can transform the language classroom into a space of encouragement and growth. By empowering students to express themselves without fear, we not only support their academic journey but also prepare them for meaningful global engagement.

Bibliography :

1. Cheng, Y. S., Horwitz, E. K., & Schallert, D. L. (1999). Language anxiety: Differentiating writing and speaking components. *Language Learning, 49*(3), 417–446.

2. Gkonou, C. (2011). Anxiety over EFL speaking and writing: A view from language classrooms. *Studies in Second Language Learning and Teaching, 1*(2), 267–281.
3. Gregersen, T., & Horwitz, E. K. (2002). Language learning and perfectionism: Anxious and non-anxious language learners' reactions to their own oral performance. *The Modern Language Journal, 86*(4), 562–570.
4. Gupta, S. (2020). French language learning in India: Trends, challenges, and opportunities. *Language and Language Teaching, 9*(1), 36–42.
5. Horwitz, E. K., Horwitz, M. B., & Cope, J. (1986). Foreign language classroom anxiety. *The Modern Language Journal, 70*(2), 125–132.
6. Krashen, S. D. (1982). *Principles and practice in second language acquisition*. Pergamon Press.
7. Liu, M., & Jackson, J. (2008). An exploration of Chinese EFL learners' unwillingness to communicate and foreign language anxiety. *The Modern Language Journal, 92*(1), 71–86.
8. MacIntyre, P. D., & Gardner, R. C. (1991). Methods and results in the study of anxiety and language learning: A review of the literature. *Language Learning, 41*(1), 85–117.
9. Rajan, R. S. (2017). French language teaching in India: A critical overview. *International Journal of Applied Linguistics and English Literature, 6*(3), 113–121.
10. Toth, Z. (2008). *Foreign language anxiety: A study of Hungarian students of English as a foreign language*. Peter Lang.
11. Young, D. J. (1991). Creating a low-anxiety classroom environment: What does language anxiety research suggest? *The Modern Language Journal, 75*(4), 426–437.

MAIL ID: shalinisherin8@gmail.com
PH NO: 8754820614

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 206-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूर्यबाला के कथा साहित्य में जीवन मूल्य एवं संघर्ष

डॉ. अंजू शर्मा

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, हरिओम सरस्वती पी.जी. कॉलेज, धनौरी, हरिद्वार, उत्तराखंड।

सारांश :-

मानवीय जगत में युवा जीवन की उपादेयता निःसंदिग्ध है। संसार के अधिकांश श्रेष्ठ कार्य प्रायः युवा वर्ग की ही देन माने जाते हैं। माना जाता है कि मानव जीवन के विकास एवं महत्व की दृष्टि से युवा जीवन उसका सर्वोच्च शिखर है। क्योंकि युवावस्था में मनुष्य के कार्य एवं विकास को एक नवीन दिशा मिलती है जिसके आधार पर उसका वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक विकास निर्भर होता है। इसी व्यवस्था में मनुष्य शैक्षणिक योग्यता एवं विविध प्रकार के अनुभवों से प्राप्त कर नए कर्तव्य पथ पर अग्रसर होता है। जिनका चित्रण सूर्यबाला के कथा सहित्य मे भी दृष्टिगोचर होता है जैसे एकाकीपन, प्राचीन परंपरा और रूढ़िवादी विचारधारा का खंडन, रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली का अभाव, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी, बढ़ती हुई महंगाई की मार तो वही नैतिक मूल्यों का हास कुछ ऐसी समस्यायें है जिनसे लगभग पूरा युवावर्ग वर्ग पीड़ित है। सूर्यबाला के कथा साहित्य में चित्रित इन्ही समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत शोध के माध्यम से किया है।

कुंजी शब्द :- कुंठा, एकाकीपन, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, जीवन मूल्य।

वर्तमान समय में युवा वर्ग के जीवन और परिवेश में व्यापक परिवर्तन हुआ है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न बेरोजगारी, अनुशासनहीनता, आर्थिक विषमता आदि समस्याओं का विकराल रूप में वर्तमान में दृष्टिगोचर होता है। 'युगीन संदर्भ में परिवेशजन्य अंतर्विरोधो, धार्मिक पाखंड, राजनैतिक स्वार्थपरता, वर्ग संघर्ष, यांत्रिकता, राष्ट्रीय गतिविधियों, नवीन जीवन दृष्टि आदि का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव हुआ है। इसी कारण उनके अंतर्द्वंद में वृद्धि हुई है, क्योंकि एक और परंपरागत मान्यताएं, बिखरे हुए जीवन मूल्य एवं संकल्प हैं तो दूसरी ओर चुनौती तथा संघर्ष भरी जिंदगी है। परिणामस्वरूप युवा वर्ग की चेतना में व्यापक परिवर्तन हुआ है और उसके सम्मुख अनेक समस्याएं उभरकर सामने आईं हैं।'[1] सूर्यबाला की लेखन शैली पर विचार व्यक्त करते हुए रामदरश मिश्र जी लिखते हैं कि, "सूर्यबाला की कहानियाँ पढ़ता रहता हूं। वे मुझे प्रिय लगती हैं। इनकी कहानियों में वैविध्यपूर्ण यथार्थ तथा भाषा की जीवन्तता का विशेष आकर्षण है।"[2]

"सूर्यबाला हिंदी के कुछ महत्त्वपूर्ण कहानीकारों में आ गई हैं। स्मृत्यावलोकन पूर्व दीप्ति, दृश्य परिवर्तन इत्यादि कतिपय तकनीकी वैशिष्ट्यों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया, क्योंकि अनुभव–संसार को शक्तिपूर्ण आकार देने के लिए आज के किसी भी कलाकार के लिए उनका प्रयोग अनोखी चीज नहीं है और सूर्यबाला की कहानी का कथ्य ही इतना मूल्यवान् है कि तकनीकी विश्लेषण की अलग से माँग नहीं करता–वह सब अनुभव

का हिस्सा बनकर संपन्न हो जाता है। सूर्यबाला को मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत को पकड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि उसकी मनुष्य मन की सहज पकड़ अद्‌भुत है–किसी बैसाखी पर खड़ी नहीं है।"[3]

कुंठा एवं एकाकीपन :-

सूर्यबाला ने 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर के माध्यम से आज के परिवेश में कुठाग्रस्त जीवन व्यतीत करते उस बेरोजगार युवक को अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिनके लिए जीवन जीना नहीं सिर्फ ढोना है। जयशंकर लुकमानगंज गांव का रहने वाला युवक है, जो एक संयुक्त मध्यवर्गीय परिवार में रहता है। अल्पायु में सिर से पिता का साया उठ जाने पर उसे अपनी विधवा माँ के साथ ताऊ और चाचा की दया में रहना पड़ता है। जयशंकर पढ़ा लिखा नवयुवक है किन्तु नौकरी के लिए कई फार्म भरे के बावजूद भी उसे नौकरी नहीं मिलती। अंततः उसने नौकरी पाने के लिए रिश्वत हेतु अपनी माँ का चांदी का हार भी बेच दिया, फिर भी उसे नौकरी नहीं मिल पायी। जयशंकर के शब्दों में, 'एक अस्पताल की स्टोरकीपरी तो पाँच–सात हजार पे पक्की करके आया भी था, लेकिन बीच में जाने कब दूसरा आदमी पंद्रह दे के अपनी सही करवा गया। स्टोरकीपरी जो गई सो तो गई ही, उससे ज्यादा अफसोस माँ की सात लड़ की चाँदी की करधनी बिक जाने का हुआ था। जाने कैसे भांपा था माँ ने और संदूकची की तली से निकाल के खुद ही सकलनाथ गुमाश्ते की भौजाई के पास बेच आई थी।"[4] इस प्रकार इंटरव्यू में अपने से कम क्षमता और योग्यता वाले उम्मीदवार की पैसे अथवा सिफारिश के आधार पर नियुक्ति हो जाने से युवक भीतर ही भीतर टूट जाता है।

अपनी रचना यामिनी कथा के विषय मे वह स्वयं लिखती हैं कि, "उन सारे अनदेखे, अनछुए, अनबूझे भी –संघर्षों, दंशों, किलों, परकोटों, खाइयों और इस्पाती जिरह बख्तरों तक पहुँच जाने की –बेचैनियों और छटपटाहटों के निमित्त!"[5]

बेरोजगारी और आर्थिक समस्याएं :-

उनकी कई कहानियों में, शिक्षित युवा पीढ़ी की बेरोजगारी और आर्थिक तंगी को दिखाया गया है, जो समाज में व्याप्त असमानता और पूंजीवादी नीतियों का परिणाम है। आज मध्यवर्ग का प्रत्येक युवक पढ़–लिख कर नौकरी करने का स्वप्न देखता है परन्तु अर्थाभाव के कारण जब ये स्वप्न चूर–चूर हो जाते हैं, तो बडी निराशा होती है। कभी–कभी तो अपमान भी सहना पड़ता है। कंगाल कहानी का नायक विनय एम. ए. पास होते हुए भी बेरोजगार है। यद्यपि वह बड़ी मेहनत करके परीक्षाएं देता है किन्तु उसे नौकरी नही मिलती, जिसके कारण परिवार में उसके प्रति हमदर्दी बढ़ जाती है। बहन रिक्शे के पैसे बचाकर स्वैटर बना देती है, भाई इंटरव्यू देने जाते समय बीस रुपए थमा देता है। घरवालों की इस हमदर्दी और सहानुभूति ने विनय को अंदर तक झिंझोड़ कर रख दिया है। विनय अपनी लाचारी व्यक्त करता हुआ कहता है, 'यह बेरोजगारी क्या, बस आर्थिक तंगहाली है? नहीं, शायद एक ऐसी लाचारी, जिसने मेरे समूचे व्यक्तित्व का रस चूसकर मेरी पूरी की पूरी मानसिकता को पंगु बना बीच रास्ते में फंके दिया है। मैं अब मैं रह ही कहाँ गया। इस प्रकार पढ़े–लिखे होकर भी छोटी–बड़ी चीजों के लिए परिवार वालों पर मोहताज बनना व्यक्ति को केवल अर्थ से नहीं बल्कि अस्मिता से भी कंगाल बना देती है। अंत में विनय चुपके से परीक्षा देता है और उस परीक्षा में बहुत अच्छे अंकों से पास मी होता है। जब उसका इंटरव्यू होता है तो वह अपने परिवार को बता नहीं पाता और उसे अपनी माँ के साथ गांव जाना पड़ता है। गांव से लौटकर आने पर उसके बाबूजी पूछते हैं, 'अरे बिनै, तुमने कोई इम्तहान दिया था? ये देखो, उसकी

मार्क्सशीट आई हैं। नंबर तो बहुत अच्छे हैं। इंटरव्यू कब है इसका?' इस प्रकार अपने से नितांत संत्रस्त इतना भी नहीं कह पाता है कि इसका इंटरव्यू बीत चुका है।

सूर्यबाला की कहानी 'भुक्कड़ की औलाद' का नायक बैजनाथ एक शिक्षित बेरोजगार युवक है। बेकारी के कारण वह बिट्टो की माँ के घर नौकरी की तलाश में आता है क्योंकि उसके रोजी–रोटी का कहीं कोई ठिकाना नहीं होता है। माँ अपनी बेटी बिट्टो से कहती है. 'अरे उसकी हुलिया पर न जा, देखने में न है पूरा मुच्चड़ सा, पर जानती क्या है... हैं हाईस्कूल पास... पहले जमाने के हाईस्कूल पास हाकिम हुक्काम हुआ करते थे और अब के? हालत देखो जरा....।'[6] इस प्रकार पढ़ा–लिखा होकर भी युवकों को जहाँ एक तरफ आर्थिक समस्या हताश कर रही है, वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी की विकट समस्या परेशान कर रही है।

संवेदनशील पात्र :–

'यामिनी कथा' की विधवा नारी पात्र में एक अतिशय संवेदनशील नारी का स्वरूप दिखाई देता है, जिसकी संवेदना ने उसके अनुभव को विलक्षण धार दी है। असल में, बाह्यतः उसकी जिंदगी में सुख की संभावनाएँ कम नहीं हैं, परंतु उसके चिंतनशील मानस ने और अनुभूतिप्रवण हृदय ने उसके सामने सदैव यातना, दंश, पीड़ा का जाल ही बिछाया, 'मैं सॉस की बोतल बढ़ाती हुई अंदर–अंदर जैसे एक गहरे भँवर में डूबती जा रही हूँ। घड़ी की हर बढ़ती टिक्–टिक् के साथ सिर्फ एक ही सस्पेंस गहरा और गहरा, घुटता और घुटता–अंत में बाहर आ ही जाता है।' यह मनःस्थिति का यथार्थ कहानी के हर किसी भाग पर लागू हो जाता है। यह भँवर एक नारी का है, जिसे अतिशय संवेदनशील मन और अंतर्भेदिनी मेधा का शाप मिला है। क्योंकि उसका नब्बे फीसदी दुःख इसी के कारण उपजा है! इसीलिए उसका कोई अंत, कोई निदान, कोई समाधान नहीं है।"[7]

चंद्रकांत बांदिवडेकर 'यामिनी कथा' के विषय में लिखते हैं कि, "सूर्यबाला का भारतीय संस्कारों में संस्कारित मन अभी पूरी तरह एक कलाकार की यथार्थ से चार आँखें करने की चुनौती पूर्णता में नहीं स्वीकार कर रहा है.....भाषा की चित्रमयता प्रसंगों को उभारकर चरित्रों की रेखाओं को ठोस करते हुए कहानी में सप्राणता पैदा करना तथा निवेदन और चित्रांकन के अनेक उपादानों का सहज कलात्मक प्रयोग करना सूर्यबाला के लिए सहज है। परंतु उससे ऊपर उठकर अनुभव के अनेक आयामी रूप को चिंतनात्मक स्तर प्रदान करते हुए पाठक को सोचने के लिए बाध्य करना सूर्यबाला के कहानी लेखन को निश्चय ही बड़ा दर्जा प्रदान करता है।"[8]

"मेरे संधिपत्र से लेकर दीक्षांत तक की लम्बी यात्रा में सूर्यबाला ने मानवीय संबंधों एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयास किया है। वे स्वयं कहती हैं, अवसाद, करुणा और द्वन्द्व मेरे लेखन के मूल स्वर अवश्य रहे हैं, किन्तु इन्हीं के बीच से मैं प्रायः मानवीय संबंधों और मूल्यों की महती प्रतिष्ठा को यथाशक्ति उजागर करने की चेष्ठा करती रही हूँ। लेखन की शुरुआती दौर से ही और अब तक मेरी कोशिश यही रही है कि इतनी विसंगतियां विद्रूप और मोहभंगो के बीच भी मुझे जीवन–आस्था, सौहार्द और स्थायी मानव मूल्यों की बात की कहानी है। क्योंकि स्थितियों और परिस्थितियों के हिसाब से हम भले ही थोड़े झूठ, थोड़ी मक्कारी और फरेब की वकालत कर लें – किन्तु जब जीवन की मानवता की और शाश्वत मूल्यों की बात उठती है तो हम सच्चाई, ईमानदारी, निष्ठा, त्याग और आस्था को ही सामने माथा नवाते हैं। झूठ बेईमानी और भ्रष्टाचार के सामने नहीं।'[9]

संध्या धा धुले ने अपने शोध "सुर्यबाला के कथा साहित्य में चित्रित महानगरीय जीवनबोध" में लिखा हैं कि, सूर्यबाला के कथा साहित्य में विविध महानगरीय समस्याएँ चित्रित है। उन्होंने समाज के सभी घटकों को बड़ी

सूक्ष्मता से देखा है, परखा है। सूर्यबाला के साहित्य का उद्देश समाजहित है। उनके सहित्यिक रचनाओं के सभी पहलूओं को परखने से यह पता चलता है कि, सूर्यबाला एक सशक्त, सदृढ़ समाज का नवनिर्माण चाहती है। सूर्यबाला भारतीय संस्कृती कि पक्षधर है, लेकिन उन्होने अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से अनिष्ट धर्मिक रूढ़ि, परंपराओ का विरोध भी किया है। सूर्यबाला जी के कथा साहित्य में महिलाओं की समस्याएँ, उनका संघर्ष तथा उनका आत्मविश्वास कई रचनाओं में दिखाई देता है। मानवी जीवन की हर समस्या को सूर्यबाला ने सफलता के साथ प्रस्तुत किया। उनके कथा साहित्य में महानगरीय समस्याओं के साथ उनका हल किस तरह से होना चाहिए। इस बात पर भी प्रकाश डाला है।[10]

सुनील कुमार. एस. यादव ने अपने शोध "सूर्यबाला की कहानियों में अपराधबोध" में लिखा है कि, सूर्यबाला जी ने उच्च वर्ग से निम्न वर्ग तक लेखनी चलाकर, संवेदनाओं को प्रकट कर जीवन–मूल्यों को विशेष महत्व दिया है। शायद इसलिए उनकी कहानियों के सभी पात्र कष्ट, अभाव, भय, विडंबना और मजबूरीयों के बीच जीते हुए भी हिम्मत बटोरकर डटकर सामना करते हुए तथा जीवन में खुशियाँ तलाशा करते हुए नजर आतें हैं। उनकी सभी कहानियाँ केवल कल्पना पर आधारित न होकर ठोस अनुभव और अटल सत्य पर आधारित हैं। सूर्यबाला की कहानी की नारी डटकर मुश्किल से मुश्किल चुनौतियों का सामना करना, बाजारवाद के सामने भी न झुकना, निराशा में घिरकर भी आशा बनाये रखना और तुफानो में भी दीप जलाये रखना यानी अंतिम सांसों तक डटकर रहना आदि हर कहानी के नारी में कूट–कूट के भरे हुए गुण सहजता से मिल जाते हैं। अपने परिवार के सदस्यों के लिए उनके सुख के लिए अपने सारे सपने और अपना सारा जीवन तक त्याग करने वाली गुणों की नारी कहानियों में चित्रित हैं जो साहित्य की उच्च कोटि नारी भी कहलाती हैं। सूर्यबाला जी के सभी कहानियों में नारी कष्ट झेलती हैं लेकिन हारती नहीं, निरंतर कष्टों को दूर करने के प्रयत्न में हमेश तत्पर रहती हैं। कभी–कभी इनको आवाज भी उठानी पड़ता हैं लेकिन कभी पीछे नहीं हटती हैं, आवश्यकता होने पर जवाब भी देती हैं।[11]

कुमुदिनी घृतलहरे ने अपने शोध "सूर्यबाला की कहानियों में निहित लोक–जीवन में जीवन–मूल्य" में लिखा है कि, अंचल विशेष की जीवन–शैली संस्कृति कहलाती है। सूर्यबाला की कहानियों में लोक जीवन सजीव हो उठा है। लोकभाषा की मिठास, परिवेश का चित्रांकन कहानी में स्वाभाविकता उत्पन्न करती है। संवेदनहीन होते समाज को बदलने की छटपटाहट उनकी कलम बयां करती है। अपनी संवेदना से पाठक को जोड़ने वाली सूर्यबाला जीवन में मूल्यों को सहेजना चाहती है।[12]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूर्यबाला ने अपनी कहानियों के माध्यम से मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित किया है, जितना अन्य महिला साहित्यकारों को शायद ही मिला हो। यह कहना कदापि अतिश्योक्ति न होगा कि एक अदम्य जिजीविषा पर आधारित कहानियों की लेखिका सूर्यबाला जी हिंदी साहित्य की अमर कथाकार है। उनके उपन्यासों में विद्रोह कम सामंजस्य अधिक दृष्टिगोचर होता है। अवलोकन के उपरांत हम पाते हैं कि उनके प्रत्येक उपन्यास के पात्र यथार्थ का सामना पूरे साहस के साथ करते है। साथ ही उनके उपन्यासों में वर्णित समाज एक दायरे में ही सिमटा हुआ न होकर व्यापकता का घोतक है। कहना कदापि अतिश्योक्ति न होगा कि समसामयिक परिवेश के बीच व्याप्त विद्रूपताओं को उजागर करते हुए अमानवीय अँधेरे को चुनौती देने वाला सूर्यबाला का कथा साहित्य वस्तुतः मानवीय करुणा एवं उदात्तता को उजागर करने वाला

साहित्य है, जिसका महत्त्व निर्विवाद है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. धनराज दलपत शेवाले, नई कहानी युवा समस्याएं, विनय प्रकाशन कानपुर 21, संस्करण –1998, पृष्ठ संख्या–29
2. अमिताभ, वेदप्रकाश (संपा.), शब्द–शब्द मानुशगंध दिल्ली, ज्ञानगंगा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या– 87
3. सूर्यबाला, यामिनी कथा, ज्ञान गंगा, 205–सी चावड़ी बाजार, दिल्ली–110006, पृष्ठ संख्या–भूमिका।
4. सूर्यबाला, अग्निपंखी : ग्रंथ अकादमी, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पृष्ठ संख्या–21
5. सूर्यबाला, यामिनी कथा, ज्ञान गंगा, 205–सी चावड़ी बाजार, दिल्ली–110006, पृष्ठ संख्या–भूमिका।
6. सूर्यबाला, पांच लम्बी कहानियां : ग्रंथ अकादमी, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली –110002, संस्करण 2008
7. सूर्यबाला, मानुष गंध, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002, पृष्ठ संख्या–143
8. सूर्यबाला, यामिनी कथा, ज्ञान गंगा, 205–सी चावड़ी बाजार, दिल्ली–110006, भूमिका, पृष्ठ संख्या–14–15
9. डॉ. दामोदर खड़से, सूर्यबाला का सृजन संसार, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या– 90
10. संध्या धा. धुले, सुर्यबाला के कथा साहित्य में चित्रित महानगरीय जीवनबोध, UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514, ISSN : 2249-894X, VOLUME-7, ISSUE-7, APRIL-2018. पृष्ठ संख्या– 03
11. सुनील कुमार. एस. यादव, "सूर्यबाला की कहानियों में अपराधबोध", ISSN : 2455-3085 (Online) RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary www.rrjournals.d,e, Volume-03, Issue-08, August-2018
12. कुमुदिनी घृतलहरे," सूर्यबाला की कहानियों में निहित लोक–जीवन में जीवन–मूल्य, SHODH SAMAGAM, ISSN: 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT), Year-05, Volume-05, Issue-01, पृष्ठ संख्या–163

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 211-217

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में सांप्रदायिकता : संक्षिप्त परिचय

राहुल साव
शोधार्थी, कूचबिहार पंचानन बर्मा विश्वविद्यालय।

सांप्रदायिकता एक विघटनकारी विचारधारा है। पूरा भारतीय समाज इससे त्रस्त है। देश विभाजन के बाद भी सांप्रदायिकता के भीषण परिणाम–स्वरूप लगातार दंगे होते रहे हैं और भारतीय समाज विघटित होता रहा है। सांप्रदायिकता हिन्दू और मुस्लिम जनमानस को मन और आत्मा के स्तर पर विभाजित किए रही जिसके परिणामस्वरूप सन् 1992 में बाबरी मस्जिद भंग जैसा हादसा घटित हुआ जिसे विद्वान भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय एकता और संविधान के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप पर आघार बताते हैं। सांप्रदायिकता के कारण देश का अंतर्जगत अस्वस्थ्य और उद्विग्न होकर दिन–प्रतिदिन हिंसा की ओर अग्रसर होता जाता है। देश की सांस्कृतिक समृद्धि को अंदर से खोखला करती जाने वाली इस विघटनकारी विचारधारा से वैचारिक संघर्ष की जरूरत लगातार बनी हुई है। हिन्दी चिंतक और उपन्यासकर लगातार इस प्रश्न से टकराते रहते हैं कि जिस सांप्रदायिकता से निजात पाने के लिए देश के दो टुकड़े करने पड़े आखिर उस सांप्रदायिकता से भारत आज तक अपना पीछा क्यों नहीं छुड़ा पा रहा है? इस सांप्रदायिकता से स्थायी निजात की तलाश और सांप्रदायिकता–मुक्त भारत गढ़ने का एक गहरा और संवेदनशील प्रयास हिन्दी उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

डॉ विपिन चन्द्र ने सांप्रदायिकता को तीन चरणों में बाँट कर देखा है। पहले चरण में सांप्रदायिकता यह विचार है जिसके तहत यह माना जाता है कि एक ही धार्मिक समूह के समस्त सांसरिक हित समान होते हैं, जबकि ऐसी बात नहीं है। दूसरे चरण में सांप्रदायिकता यह मानकर चलती है कि एक ही धार्मिक समूह के समस्त सांसरिक हित दूसरे धार्मिक समूह के हितों से भिन्न होते हैं। वे इसे नरम सांप्रदायिकता की संज्ञा देते हैं। तीसरे चरण में सांप्रदायिकता उग्र स्वरूप धारण करते हुए यह मानने लगती है कि एक धार्मिक समूह के समस्त हित दूसरे धार्मिक समूह के हितों से न केवल भिन्न होते हैं बल्कि एक–दूसरे के विरोधी भी होते हैं। अतः इनमें सह–अस्तित्व संभव नहीं है।[1]

डॉ सच्चिदानंद सिन्हा सांप्रदायिकता को मनुष्यों में व्याप्त एक सामान्य प्रवृत्ति की ही विशेष अभिव्यक्ति मानते हैं। वे लिखते हैं– "सावधानी से परखने पर दिखेगा कि हम भारत में सांप्रदायिकता जिसे मानते हैं वह मनुष्यों में व्याप्त एक सामान्य प्रवृत्ति है। अपने समूह–विशेष के साथ गहराई से अपनत्व का अनुभव करना और दूसरे समूहों की तुलना में अपने उस समूह के प्रति पक्षपात का भाव रखना। इस अपनत्व का अनुभव सिर्फ अपने समूह विशेष के सदस्यों के ही प्रति नहीं होता, वरन् उस समूह के अपने विविध प्रतिकों के प्रति भी होता है।

खास वेषभूषा, साज–सज्जा, अभिवादन आधी के खास तरीके, भाषा–विशेष आदि के प्रति उससे सम्बद्ध समूह–सदस्यागन एकतमकता कि भावना रख सकते हैं। ऐसा समूह कोई कबीला–विशेष हो सकता है, कोई एथनिक (नृजातीय) समूह, जाति या भाषायी समूह अथवा "कौम" या नस्ल–विशेष हो सकता है, राष्ट्र की तरह की कोई भौगोलिक क्षेत्रीय सत्ता हो सकती है यदि कोई धार्मिक समूह हो सकता है।"[2]

यूरोप में धार्मिक समूहों के शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का इतिहास नहीं मिलता मगर हमारे यहाँ मतांतरों–मतभेदों के बावजूद धार्मिक समूह शांतिपूर्ण तरीके से रहते रहे हैं। शैव, शाक्त, वैष्णव, सगुण–निर्गुण, फिर बौद्ध, जैन और बाद में इस्लाम– सभी हिंदुस्तान की साझी संस्कृति एवं समझ की मिसाल हैं। इसमें काफी मतांतर है, मतभेद हैं, जिसके परिणामस्वरूप वाद–विवाद होता रहा है। इस वाद–विवाद में सबसे अच्छी किन्तु चौकने वाली बात यह रही कि इस वाद–विवाद से किसी भी मत की जो बुराइयाँ उभरकर सामने आईं उसे लोक नकारता रहा है और किसी भी मत की जो अच्छाइयाँ उभरकर सामने आईं उसे लोक अपनाता रहा। शायद यही कारण है कि हमारे यहाँ कई धार्मिक समूहों का सह–अस्तित्व हमेशा संभव रहा। मगर बाद में अंग्रेजों ने अपने यहाँ के 'कम्युनल' शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ सामुदायिकता के अर्थ में न करके सांप्रदायिकता के अर्थ में किया। कई तरह के 'कम्युनल अवार्ड' की स्थापना कर ब्रिटिश राज में उन्हें अलग एवं विशेष प्रतिनिधितव में अधिकार दिया। फलतः अतीत को भी इसी विशेष सांप्रदायिक अलगाव की निगाह से देखा जाने लगा। डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने ठीक लिखा है दृ "भारत में इस 'कम्युनल' शब्द के प्रयोग तथा इसे विशिष्ट अभिप्राय से जोड़ने का काम अंग्रेजों ने किया शायद यहाँ इस शब्द को यह विशेष अर्थ मिला कम्युनल अवार्ड की स्थापना से। अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न समुदायों को अलग–अलग प्रतिनिधितव प्रदान करने के लिए 'कम्युनल अवार्ड' बनाया। इस तरह एक मानसिक विभाजन को स्थायित्व दिया गया। वर्तमान के अनुरूप ही अतीत को भी देखने की एक प्रवृत्ति पनपी।"[3]

अतीत में मतांतर थे, मतभेद थे मगर सबका सामाजिक हित एक था। फलतः मतांतर होने के बावजूद अलगाववाद नहीं था। इसका मुख्य कारण सामाजिक एवं आर्थिक हितों के साथ ही राजनीतिक हितों का बंटवारा नहीं होना था। धार्मिक मतांतरों को लेकर बहसे होती थीं, अपने पक्ष और अपनी नीतियों के तहत विभिन्न धार्मिक समूहों का सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक हितों को एक–दूसरे से अलग एवं प्रतिस्पर्धात्मक रूप में स्थापित किया। फलस्वरूप सांप्रदायिकता का जन्म हुआ।

प्रायः सभी विद्वान एकमत हैं कि एक विचारधारा रूप में सांप्रदायिकता का विकास अँग्रेजी राज में हुआ। 'भारत में सांप्रदायिक दंगे और आतंकवाद' पुस्तक के लेखक प्रतीप के. लाहिरी ने लिखा है : "अँग्रेजी राज के पहले सांप्रदायिकता ने कोई सैद्धान्तिक आयाम प्राप्त नहीं किया था। यह तो अंग्रेजों का काल था जिसमें मुसलमान और हिन्दू सांप्रदायिकता परस्पर सिद्धांतों के रूप में विकसित हुई।"[4]

19वीं शताब्दी के पहले भारत में एक भी ऐसा दंगा नहीं हुआ जो सांप्रदायिकता की प्रासंगिता अभिव्यक्ति हो। आर. कुपलैण्ड ने 'कान्स्टीट्यूशनल प्रॉबलम' इन इंडिया नामक पुस्तक में लिखा है कि 'भारत में ब्रिटिश शासन के बने रहने का कारण ही हिन्दू–मुस्लिम समस्या है। उन्होंने 1809 की एक घटना का जिक्र किया है जिसमें हिंदुओं ने 50 मस्जिदों को नष्ट कर दिया था, उसके बाद ही भारत में लगभग 1871–72 दंगों के बाद ही दंगों की घटनाएँ मिलती हैं।'

असगर अली इंजीनियर का भी स्पष्ट मानना है कि भारत में सांप्रदायिकता औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की

दें है, उसके पहले भारत में सांप्रदायिकता का इतिहास प्राप्त नहीं होता। वे लिखते हैं– "सांप्रदायिकता आधुनिक परिघटना है मध्यकालीन नहीं। सार रूप में यह अँग्रेजी काल की उत्पत्ति है।"

मूलतः हिन्दी उपन्यासकारों ने सांप्रदायिकता को केंद्र में करके बहुत से उपन्यास लिखे है। जिनमें से कुछ उपन्यास का परिचय निम्नानुसार है।

सूखा बरगद :

आजादी के बाद मुसलमानों में धार्मिक–सांस्कृतिक सुरक्षा का जो मुद्दा उठा और जिस डर के कारण यह समुदाय जो प्रगतिशील राह पर चल निकला था फिर से अपनी धार्मिक– सांस्कृतिक पहचान की ओर मुड़ा और अधिक संकीर्णता के साथ चिपटता चला गया। इसके लिए बहुसंख्यक समुदाय का अतिवाद एक हद तक उत्तरदायी रहा और साथ ही अल्पसंख्यक समुदाय के फिरकेपरस्त लोग और कट्टर लोग भी जिम्मेवार रहे। इन स्थितियों का चित्रण मंजूर एहतेशाम के सूखा बरगद में मिलता है। सुहेल जो भारत को भारतीयों का मुल्क मानता है और धार्मिक पाखण्डों को ठेंगा ही नहीं दिखाता बल्कि उनका तार्किक खण्डन भी करता है अंततः कट्टर धार्मिक होने को विवश होता है बल्कि इससे भी दो कदम आगे बढ़कर कट्टर मुस्लिम बन जाता है। इतने बड़े मुल्क में वह एक भारतीय बनकर एक इंसान बनकर जीना चाहता है पर कदम–कदम पर उसके मुस्लमान होने के कारण उस पर संदेह किया जाता है, उसे ओछी निगाह से देखा जाता है, कदम–कदम पर अहसास कराया जाता है कि तुम इंसान नहीं, भारतीय नहीं बल्कि मुस्लमान हो। वह एक हिन्दू लड़की से प्रेम करता है, उससे शादी करना चाहता है, वह रीति–रिवाज और धर्म की दखलंदाजी निजी जीवन में स्वीकार नहीं करता मगर इस शादी से रीति–रिवाजों का हवाला देती हुई गीता शादी से इंकार कर देती है। इन जटिल परिस्थितियों में वह सोचने लगता है कि जिस देश में हिन्दू–मुसलमानों का आपस में विवाह नहीं हो सकता उस देश में हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात करना बेमानी है, छलावा है। वह देश में जनतांत्रिक मूल्यों के विघटन और बढ़ते बहुसंख्यक अतिवाद से इन परिस्थियों में प्रतिक्रियावादी हो जाता है। वह अपना गुस्सा जाहिर करते हुए कहता है –'दम भरते हैं साले डेमोक्रेसी का। हर जगह भूमि–पूजन है, हर तकरीब में संस्कृत का गाना और देवी–देवताओं की नाच–कूद। कोई पूछे, हिंदुओं के अलावा और किसी को इससे क्या मतलब? हम हिंदी तक राजी हुए तो कहने लगे अब तो तुम्हें संस्कृत भी सीखनी पड़ेगी। क्या होगा इस मुल्क में मुसलमानों का? (175)

सुहेल धार्मिक व्यक्ति नहीं है। मार्क्स और प्रगतिशील विचारों में उसकी आस्था है। एक लंबे समय की जहालत के बाद उसके ये विचार बने हैं। पहले वह ऐसी बातों का प्रतिवाद करता था। किन्तु एक लंबे संघर्ष के बावजूद समाज में उसे मुसलमान के रूप में ही देखा जाता है इंसान के रूप में नहीं। फिर वह मुसलमान बनने को विवश हो जाता है – 'मेरी खतना की जा चुकी है और एक खास मार्के की भीड़ में मेरी गिनती है, इसलिए उन्हीं के ब्रांड वाले खुदा में मेरी आस्था होना भी स्वाभाविक है।.... मार्क्स साहब को नमो नमो! उनकी डायलेक्टिस उन्हें मुबारक! ... इबादत करने की भी कोशिश करूँगा और कभी मजहब में कीड़े नहीं निकालूँगा। तौबा ! तौबा ! (177)

सुहेल की इस मानसिक अवस्था या इस परिवर्तन तक पहुँचाने के जिम्मेवार कौन लोग हैं? नामदेव जी सुहेल की इस परिणति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं – 'सुहेल जैसे एक उदार भारतीय मुस्लिम व्यक्ति में धार्मिक संकीर्णता का उत्पन्न होना खतरनाक स्थिति का संकेत है। (146)

इस उपन्यास का सबसे मजबूत पक्ष है इस बात की ओर इशारा करना कि मुस्लिम समुदाय जिस आइडेंटिटी की सुरक्षा के सवाल से गुजर रहा है उसकी हिफाजत कहाँ संभव है। गैर इस्लामिक देशों और इस्लामिक देशों की तुलना में यह भारत में ज्यादा संभव है। भारत का बहुसांस्कृतिक उदारतावाद इसे संभव बनाता है। यहाँ धार्मिक पहचान के बावजूद अधिकांश लोग साझी संस्कृति और प्रगतिशील विचारधारा में आस्था रखते हैं। परवेज कहता है – 'मुसलमानों के लिए हिंदुस्तान, खासतौर पर पाकिस्तान या दूसरे इस्लामिक देशों के मुकाबले कहीं बेहतर घर है, क्योंकि यहाँ मजहबी कठमुल्लाइयत नहीं। (221)

इस कथन के साथ अगर सुहेल के पिता जो कि खुद एक सुलझे हुए प्रगतिशील विचारधारा के इंसान हैं, उनके कथन को जोड़ दिया जाए तो उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। उनका कथन है – 'देश को एक मिली–जुली तहजीब की जरुरत है, एक मिली–जुली भाषा चाहिए, जिसे सब अपना समझ सकें। उसके लिए सबको थोड़ी–थोड़ी कुर्बानी देनी होगी।' (88)

मदरसा (2011) :

इस उपन्यास में भी मंजूर एहतेशाम ने प्रगतिशील मुस्लिम मानसिकता का सुन्दर अंकन किया है। कुछ लोग मुसलमानों पर शक करते हैं कि उन्हें पाकिस्तान न जाने का मलाल है। मगर एहतेशाम उन लेखकों में से हैं जो न केवल पाकिस्तान निर्मिति जैसे सांप्रदायिक सोच के खिलाफ हैं बल्कि हिंदुस्तान को मुस्लिमों के लिए बेहतर जगह है। हर इंसान अपने सपनों के देश में रहना चाहता है मगर लेखक अपने ही देश को अपने सपनों का देश बनाना चाहता है – 'यूटोपिया जन्नत की ही तरह है, कहीं है नहीं, तो बेहतर है अपना ही घर सुधारने की कोशिश करूँ। करने पर ही होना टिका है।' (227)

काला जल :–

इस उपन्यास में जो पहली बात उभरकर सामने आती है वह है मुस्लिम समुदाय की आर्थिक बदहाली। इस बदहाली के लिए दो कारण जिम्मेवार हैं। पहला, इस समाज में फैला घोर अंधविश्वास और अशिक्षा। यह समाज धार्मिक सामाजिक अंधविश्वासों से ऊपर उठकर ही देश की मुख्यधारा में जुड़ सकता है और इसके लिए उसे आधुनिक शिक्षा से संपन्न होना होगा। उनकी बदहाली का जो दूसरा कारण है वह है आजादी के बाद या यों कहें पाकिस्तान निर्मिति के बाद प्रशासन द्वारा सरकारी नौकरियों में उनके साथ भेद–भाव बरता गया। परन्तु यह कारण गौण ही रहा। परन्तु इसके कारण विभाजन के समय अपनी मातृभूमि भारत से प्रेम करने के कारण पाकिस्तान न जाने वाले नौजवानों को व्यवलथा से मोहभंग होने लगा और वे सोचे लगे कि काश, पाकिस्तान चले गए होते ! मोहसिन जो एक सच्चा राष्ट्रभक्त है और आम हिंदुस्तानी मुस्लिम युवाओं का प्रतीक भी, उसकी इस पीड़ा और मोहभंग को इस भेदभाव के अलोक में ही देखा–परखा जाना चाहिए। दूसरी बात जो इस उपन्यास से उभरकर सामने आती है कि साम्प्रदायिकता की निर्मिति में कुछ धार्मिक लमथकों और अंधविश्वासों की बड़ी भूमिका होती है। इसी कारण पशु–पक्षियों का भी सांप्रदायिक विभाजन हो गया है। बच्चों में इस तरह की मानसिकता का निर्माण देश की साझी संस्कृति के लिए बेहद घातक है। तीसरी जो सबसे प्रमुख बात उभरकर सामने आती है कि भारत की साझी संस्कृति एवं सांप्रदायिक सौहार्द के निर्माण में भारतीय त्योहारों की बड़ी अहम् भूमिका होती है। इसी क्रम में उपन्यासकार ने मुहर्रम के त्यौहार का विस्तृत वर्णन किया है। परन्तु आजकल सांप्रदायिक शक्तियाँ इन त्योहारों को भी सांप्रदायिक रंग देने में लगी हैं जिसके कारण वर्षों से आदान–प्रदान

के आधार पर विकसित भाईचारे वाली संस्कृति को नुकसान पहुंचा रहा है।

टोपी शुक्ला :

इस उपन्यास की पहली मुख्य चिंता है, भारत को एक लोकतांत्रिक देश के रूप में गढ़ने की। इस देश में इफ्फन और टोपी जैसे धर्मनिरपेक्ष नागरिकों के लिए जगह बनाने की चिंता स्वतः ही कट्टर सांप्रदायिक शक्तियों से लगातार संघर्ष की चिंता है। यह चिंता एक धर्मनिरपेक्ष भारत को गढ़ने की चिंता है। यह नयी पीढ़ी को एक ऐसा हिंदुस्तान देने की चिंता है जिसमें उसकी पहचान सांप्रदायिक आधार पर न होकर एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष नागरिक के तौर पर हो, जहां इफ्फन और टोपी एक साथ एक थाली में खा पी सकें और उनके साथ सांप्रदायिक आधार पर किसी तरह का भेदभाव न हो। साथ ही उपन्यास में आरएसएस और अन्य तरह के हिंदू–मुस्लिम सांप्रदायिक संगठनों की सांप्रदायिक भूमिका का तर्कसंगत विरोध भी है। इस उपन्यास में सबसे प्रमुख बात जो उभरकर सामने आती है वह यह कि बच्चों को सांप्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष बनाने में क्रमशः परिवार, विद्यालय और समाज की सबसे अहम् भूमिका होती है। वे अगर भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में निर्मित करेंगे तभी हिंदुस्तान का भविष्य सांप्रदायिक समस्या से मुक्त हो सकेगा।

झीनी झीनी बीनी चदरिया :

'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह द्वारा रचित है : और यह बनारस जैसे सांस्कृतिक नगर के मुस्लिम बुनकर समाज की पृष्ठभूमि में सांप्रदायिक तनाव, आर्थिक हाशियाकरण और सांस्कृतिक संकट की गहरी कथा कहता है। इस उपन्यास से जो पहली बात उभरकर सामने आती है वह यह कि धार्मिक–सामाजिक अंधविश्वास साम्प्रदायिकता से लड़ने में मुख्य रूप से बाधक हैं। धार्मिक रूढ़ियाँ प्रगतिशील चेतना के विकास में बाधक हैं और प्रगतिशील चेतना के अभाव में साम्प्रदायिकता से मुक्कमल लड़ाई संभव नहीं है। लेखक दंगों के समय पुलिस की भूमिका को भी प्रश्नांकित करता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' भारत के उस अल्पसंख्यक मुस्लिम समाज की कथा है जो कारीगरी और दस्तकारी से जुड़ा है। इसमें सांप्रदायिकता का कोई तीखा विस्फोट नहीं है मगर वह रेशा–रेशा मौजूद है। इस उपन्यास में सांप्रदायिकता एक ध्वनि नहीं, बल्कि एक अनुगूँज की तरह मौजूद है कृ जो सीधे न दिखाई देकर, परोक्ष रूप से लोगों की भाषा, भाव, जीवनशैली, और रोजमर्रा के भय में समाई हुई है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने सांप्रदायिकता के उस सूक्ष्म स्वरूप को दिखाया है जो बुनकर समाज की आर्थिकी और अस्मिता दोनों को प्रभावित करता है। इसमें लेखक धार्मिक अंधविश्वास को भी सांप्रदायिकता से लड़ने में बाधक मानता है। इसलिए लेखक 'तमाम कुरीतियों, अंधविश्वासों, मजहबी कट्टरपन और सांप्रदायिक पूर्वग्रहों को आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करता है।

दास्तान-ए-लापता :

मंजूर एहतेशाम का "दास्तान–ए–लापता" स्वतंत्रयोत्तर भारतीय समाज की जटिलताओं और विशेषकर मुस्लिम समुदाय की पहचान के संकट को उद्घाटित करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह कृति प्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिक दंगों का विवरण नहीं देती, बल्कि उन सूक्ष्म और गहरे मानसिक दबावों को सामने लाती है, जिनसे मुस्लिम समाज लगातार जूझता है। उपन्यास का केंद्रीय प्रश्न यह है कि भारतीय मुसलमान अपनी असली पहचान कहाँ खोजेकृभारतीय नागरिक के रूप में या केवल धार्मिक समुदाय के हिस्से के रूप में? विभाजन की

त्रासदी और उसके बाद उपजे अविश्वास ने इस समुदाय को असुरक्षा की ऐसी स्थिति में डाल दिया कि वे अपने ही देश में कई बार "लापता" महसूस करने लगे। "दास्तान–ए–लापता" में 'लापता' होना केवल किसी व्यक्ति का गुम हो जाना नहीं है, बल्कि यह एक पूरे समुदाय की सामाजिक–राजनीतिक पहचान के खोने का प्रतीक है। उपन्यास यह दिखाता है कि सांप्रदायिकता इंसान और समुदाय दोनों को असमंजस में डाल देती है, जहाँ वे न पूरी तरह अपने अतीत से जुड़ पाते हैं और न वर्तमान में आत्मविश्वास के साथ जी पाते हैं। मंजूर एहतेशाम ने गहरे आत्मविश्लेषण के साथ यह बताया है कि भारतीय बहुलतावादी समाज की असली चुनौती केवल सह–अस्तित्व बनाए रखना ही नहीं, बल्कि अल्पसंख्यकों को बराबरी का विश्वास दिलाना भी है। इस दृष्टि से "दास्तान–ए–लापता" सांप्रदायिकता–विरोधी चेतना का दस्तावेज है, जो पाठक को यह सोचने पर विवश करता है कि जब तक किसी समाज के भीतर सभी वर्गों को बराबरी और सुरक्षा का एहसास नहीं होगा, तब तक उसकी असली पहचान अधूरी रहेगी।

मुखड़ा क्या देखें :

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में जहाँ एक ओर विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक संघर्षों का प्रत्यक्ष चित्रण मिलता है, वहीं कुछ उपन्यास सांप्रदायिक मानसिकता की प्रतीकात्मक आलोचना भी करते हैं। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास किसी विशेष गाँव या विशेष पात्रों की कथा न होकर सामान्य भारतीय जनमानस की कथा है। इस उपन्यास को बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक समाज की दृष्टि से भी नहीं देखा जा सकता। भारतवर्ष बहुजातीय, बहुधार्मिक और बहुभाषायी देश है। हिन्दी में ऐसे अनेक उपन्यास आए हैं, जो या तो बहुसंख्यक समाज की कहानी कहते हैं या फिर अल्पसंख्यक समाज की, लेकिन 'मुखड़ा क्या देखे' समग्र भारतीय समाज की कहानी कहता है।

यही कारण है कि इस उपन्यास में जिस प्रामाणिकता के साथ उन्होंने मुसलमान रीति–रिवाजों का चित्रण किया है, उसी प्रामाणिकता के साथ हिन्दू और ईसाई समुदाय के रीति–रिवाजों का भी। अर्थात् पिछले बीस वर्षों में आए हिन्दी उपन्यासों में शायद पहली बार ऐसा हुआ है कि हिन्दी में लिखा गया यह उपन्यास समूचे भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी अन्तर्वस्तु और शिल्प पर ठेठ देसी रंगों एवं संस्कारों की गहरी छाप है।

शहर में कर्फ्यू :

यह उपन्यास दंगों में पुलिस–प्रशासन और राजनीति की भूमिका की गहरी शिनाख्त करता है। दंगों के समय इनकी मिलीभगत का भी पर्दाफाश इस उपन्यास में किया गया है और साथ ही मीडिया की भूमिका को भी प्रश्नांकित किया गया है। इसमें लेखक की मुख्या चिंता यह है कि आज साम्प्रदायिकता के कारण मनुष्यता हिन्दू–मुस्लिम में विभाजित होती जा रही है जो देश के धर्मनिरपेक्ष भविष्य के लिए खतरा है। साथ ही इस उपन्यास में मुस्लिम समुदाय की हृदय–द्रावक गरीबी का भी मार्मिक चित्रण किया गया है।

अपवित्र आख्यान :

इस उपन्यास में भारत की गंगा–जमुनी संस्कृति में लग रही सांप्रदायिक घुनों की गहरी पड़ताल है। आम जीवन में किस तरह एवं किन कारणों से साम्प्रदायिकता का जहर धीरे–धीरे घुलता जाता है उसका भी विश्लेषण इस उपन्यास में हुआ है। भाषा को भी हिंदू–मुस्लिम रंग देने में सचेत एवं असचेत लोगों की भूमिका को

देखा–परखा गया है। हिन्दी को हिंदुओं की और उर्दू को मुसलमानो की भाषा करार दिए जाने का विरोध इस उपन्यास में हुआ है। आजाद और धर्मनिरपेक्ष हिंदुस्तान में हिंदुओं का ज्यादा हिंदू और मुसलमानों को ज्यादा मुसलमान होते जाने की चिंता को मुख्य चिंता के रूप में उभरा गया है। आजाद भारत की चिंता यह होनी चाहिए थी कि यहाँ हिंदू–मुस्लिम की संख्या कम हो और धर्मनिरपेक्ष नागरिकों और मनुष्यों की संख्या ज्यादा हो। मगर हिंदुस्तान का यह दुर्भाग्य की यहाँ धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र दिन–प्रतिदिन कमजोर होता गया है।

संदर्भ सूची :

1. विपिनचन्द्र, सांप्रदायिकता : एक परिवेशिका, नेशनल बुल ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2008, पृ. 3
2. सिन्हा, डॉ. सच्चिदानंद, 'भारतीय राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता', मराल प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण : 2006, पृ. 22
3. वही, पृ. 24–25
4. लाहिरी, प्रतीप के., 'भारत में सांप्रदायिक दंगे और आतंकवाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2012, पृ. 22
5. एहतेशाम, मंजूर, सूखा बरगद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2024
6. एहतेशाम, मंजूर, मदरसा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2011
7. शानी, काला जल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–9 : 2023
8. रजा, राही मासूम, टोपी शुक्ला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1969
9. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, झीनी झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008
10. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, मुखड़ा क्या देखें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006
11. एहतेशाम, मंजूर, दास्तान–ए–लापता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–4 : 2022
12. राय, विभूति नारायण, शहर में कर्फ्यू, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–8 : 2002
13. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2025 Page No. : 218-226

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों में बख्तियारपुर प्रखंड के हरदासपुर गांव के जनसंचार का प्रभाव

नीतीश वर्धन, सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
समाजशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव महाविद्यालय, शाहपुर पटोरी, समस्तीपुर, बिहार।

सारांश :-

आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों में जनसंचार की भूमिका हमेशा से महत्वपूर्ण रही है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ संसाधनों की कमी और सूचना की अनुपलब्धता आपदा की स्थिति को और गंभीर बना देती है। बिहार राज्य का बख्तियारपुर प्रखंड, विशेष रूप से हरदासपुर गांव, बाढ़ और वर्षा जैसी प्राकृतिक आपदाओं से लगातार प्रभावित होता रहा है। इस संदर्भ में, जनसंचार न केवल आपदा की चेतावनी देने में सहायक है, बल्कि राहत कार्यों के समन्वय, संसाधनों के वितरण और सामुदायिक भागीदारी को भी मजबूत करता है। हरदासपुर गांव का अध्ययन यह दर्शाता है कि रेडियो, मोबाइल, सोशल मीडिया, स्थानीय पंचायत घोषणाएँ और ग्रामसभा जैसी पारंपरिक सूचना प्रणालियाँ मिलकर आपदा प्रबंधन में बहुआयामी योगदान करती हैं।ठआपदा की स्थिति में समय पर सूचना का प्रसार जीवन रक्षा का सबसे बड़ा साधन है। हरदासपुर के अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि जब स्थानीय स्तर पर जनसंचार प्रभावी होता है तो न केवल लोग सुरक्षित स्थानों पर समय रहते पहुँच जाते हैं, बल्कि राहत सामग्री के निष्पक्ष वितरण और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच भी सुनिश्चित होती है।

अध्ययन यह भी इंगित करता है कि सूचना की विश्वसनीयता और भाषा की सरलता ग्रामीण समाज में विश्वास पैदा करती है। साथ ही, महिला समूहों और युवा संगठनों की सक्रियता ने आपदा प्रबंधन को और अधिक प्रभावी बनाया है। इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि हरदासपुर गांव में आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों के दौरान जनसंचार किस प्रकार कार्य करता है और इसकी क्या चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ हैं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि आधुनिक तकनीक को स्थानीय जनसंचार माध्यमों के साथ जोड़ा जाए तो आपदा प्रबंधन अधिक सशक्त और प्रभावी बन सकता है। यह अध्ययन न केवल बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों बल्कि संपूर्ण भारत के लिए एक उपयोगी मॉडल प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द :- आपदा प्रबंधन, जनसंचार, राहत कार्य, हरदासपुर गांव, बख्तियारपुर प्रखंड, ग्रामीण समाज, सामुदायिक भागीदारी, सूचना प्रसार, आपदा चेतावनी, सतत विकास।

परिचय :-

आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों में जनसंचार की भूमिका को समाजशास्त्रियों और संचार विशेषज्ञों ने

हमेशा विशेष महत्व दिया है। ग्रामीण समाज में आपदा केवल प्राकृतिक चुनौती नहीं होती बल्कि यह सामाजिक ढांचे, सामूहिक एकजुटता और संचार तंत्र की परीक्षा भी होती है। बिहार के बख्तियारपुर प्रखंड के हरदासपुर गांव का उदाहरण यह स्पष्ट करता है कि आपदा के समय सूचना का प्रवाह और जनसहभागिता किस प्रकार जीवन रक्षा और राहत के वितरण को सुनिश्चित करती है। समाजशास्त्री एमिल दुर्खीम का कथन है – "समाज तब ही संगठित रह सकता है जब सामूहिक चेतना संकट के समय कार्यरत हो" (दुर्खीम, 1912/2008)। यह विचार हरदासपुर की परिस्थिति में बिल्कुल सटीक बैठता है, जहाँ आपदा की स्थिति में सामूहिक चेतना को जगाने का कार्य जनसंचार करता है। इसी तरह मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया की व्याख्या करते हुए कहा था – "मनुष्य का आचरण तभी प्रभावी होता है जब वह अर्थपूर्ण संचार से जुड़ा हो" (वेबर, 1922/2019)। हरदासपुर में संचार के स्थानीय और आधुनिक माध्यम लोगों को एक साझा लक्ष्य–जीवित रहना और एक–दूसरे की मदद करने के लिए संगठित करते हैं। इसके अलावा रॉबर्ट के. मर्टन का "Social Structure and Anomie" सिद्धांत यह दर्शाता है कि जब पारंपरिक संरचनाएँ विफल होती हैं तो वैकल्पिक तंत्र, जैसे जनसंचार और सामुदायिक सहयोग, राहत के रास्ते खोलते हैं (मर्टन, 1938/1968)। हरदासपुर की बाढ़ प्रभावित स्थिति में यह तथ्य देखने को मिलता है कि कैसे लोग मोबाइल, पंचायत घोषणाओं और ग्रामसभा के जरिए नए संचार तंत्र बनाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आपदा प्रबंधन केवल प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सहभागिता, सूचना प्रवाह और सामूहिक जिम्मेदारी का एक संगठित प्रयास है। हरदासपुर गांव का अध्ययन ग्रामीण भारत के लिए एक मॉडल प्रस्तुत करता है जहाँ संचार ही संकट मोचन का सबसे बड़ा साधन बन जाता है (कुमार एवं देवी, 2021, Ministry of Rural Development, 2022)।

शोध उद्देश्य एवं प्रयोजन :–

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि आपदा प्रबंधन और राहत कार्यों में जनसंचार किस प्रकार हरदासपुर गांव (बख्तियारपुर प्रखंड) में प्रभावी भूमिका निभाता है। शोध का उद्देश्य यह भी है कि किस प्रकार स्थानीय संचार माध्यम जैसे पंचायत घोषणाएँ, ग्रामसभा, महिला समूह, रेडियो, मोबाइल संदेश और सोशल मीडिया आपदा की स्थिति में लोगों तक समय पर सूचना पहुँचाते हैं। इसके अलावा अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सूचना के प्रवाह से राहत सामग्री का निष्पक्ष वितरण, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और सामुदायिक एकता कैसे सुनिश्चित होती है।

- हरदासपुर गांव में आपदा प्रबंधन के दौरान प्रयुक्त संचार माध्यमों की पहचान करना।
- यह विश्लेषण करना कि जनसंचार आपदा के समय किस प्रकार चेतावनी और सुरक्षा संबंधी संदेश प्रसारित करता है।
- राहत कार्यों के वितरण और समन्वय में संचार की भूमिका को समझना।
- आपदा के समय स्थानीय समुदाय, महिला समूहों और युवाओं की सहभागिता में जनसंचार की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- आधुनिक तकनीक और पारंपरिक संचार साधनों के संयुक्त प्रभाव का मूल्यांकन करना।

शोध परिकल्पना :–

इस शोध की आधारभूत परिकल्पनाएँ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं :–

- जनसंचार आपदा प्रबंधन का मूल आधार है – यह माना गया है कि हरदासपुर गांव में आपदा के समय सूचना का प्रवाह जितना तेज और सटीक होगा, उतना ही लोगों का जीवन और संपत्ति सुरक्षित रह सकेगी।
- स्थानीय और आधुनिक माध्यम का संयोजन प्रभावी है – परिकल्पना यह है कि यदि पारंपरिक माध्यम (पंचायत, ग्रामसभा, मुखिया की घोषणाएँ) और आधुनिक माध्यम (मोबाइल, सोशल मीडिया) को साथ प्रयोग किया जाए तो आपदा प्रबंधन अधिक सफल होगा।
- सामुदायिक सहभागिता संचार से मजबूत होती है – यह मान्यता है कि जनसंचार ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना को सक्रिय करता है और आपदा के समय महिला समूहों, युवाओं और पंचायत की भागीदारी को प्रोत्साहित करता है।
- विश्वसनीय और सरल सूचना राहत कार्यों की सफलता सुनिश्चित करती है – परिकल्पना यह भी है कि यदि सूचना स्पष्ट, भरोसेमंद और सरल भाषा में प्रसारित हो तो राहत सामग्री का वितरण, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच और पुनर्वास की प्रक्रिया सुचारु रूप से संपन्न होती है।

कार्य प्रणाली :–

इस अध्ययन की पद्धति गुणात्मक (Qualitative) और मात्रात्मक (Quantitative) दोनों दृष्टिकोणों पर आधारित है। शोध के लिए बख्तियारपुर प्रखंड के हरदासपुर गांव को अध्ययन क्षेत्र चुना गया। यहाँ पर पिछले वर्षों में आई बाढ़ और वर्षा जनित आपदाओं के अनुभवों को मुख्य आधार बनाया गया।

डेटा संग्रहण के तरीके :–

1. **प्राथमिक स्रोत :**

- गांववासियों, महिला समूहों, युवाओं और पंचायत प्रतिनिधियों के साथ साक्षात्कार (Interview)।
- फोकस ग्रुप डिस्कशन (FGD) के माध्यम से आपदा अनुभवों की जानकारी।
- आपदा प्रबंधन टीम और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं से प्रत्यक्ष बातचीत।

2. **द्वितीयक स्रोत :**

- सरकारी रिपोर्ट (Ministry of Rural Development, 2022)।
- पूर्ववर्ती शोधपत्र, पुस्तकें और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण (दुर्खीम, 2008, वेबर, 2019)।
- इंटरनेट आधारित समाचार और गूगल लिंक स्रोत।

नमूना :

- हरदासपुर गांव के लगभग 60 परिवारों को यादृच्छिक चयन (Random Sampling) से चुना गया। इसमें पुरुष, महिला और युवा सभी वर्गों को सम्मिलित किया गया।

विश्लेषण विधि :

- एकत्रित डेटा का विश्लेषण विषय–वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) और सांख्यिकीय प्रतिशत पद्धति से किया गया।

इस पद्धति से स्पष्ट हुआ कि जनसंचार आपदा प्रबंधन का सबसे सशक्त माध्यम है, जो समय पर चेतावनी, राहत सामग्री के वितरण और सामुदायिक सहयोग को सुनिश्चित करता है।

परिदृश्य और ग्रामीण परिवेश को चित्रित करती ये छवियाँ बख्तियारपुर (पटना) क्षेत्र की देहात की नाजुक और सहज सुंदरता को दर्शाती हैं, जैसे खेतों में फैला हरियाली, मिट्टी की सड़कें, पारंपरिक मिट्टी–मकान और ग्रामीण जीवन का रोजमर्रा। ये दृश्य हमें हरदासपुर जैसे गाँवों का वातावरण समझने में मदद करते हैं।

यहाँ बख्तियारपुर प्रखंड (पटना जिला), हरदासपुर (Hardaspur) गाँव के 2011 जनगणना के मुख्य आँकड़े सुव्यवस्थित सारणी (टेबल) में दिए जा रहे हैं। स्रोत नीचे उद्धृत हैं।

हरदासपुर – जनगणना 2011 के प्रमुख आँकड़े

सूचकांक	कुल	पुरुष	महिला
कुल परिवार (घर)	708	-	-
कुल जनसंख्या	4,456	2,399	2,057
0-6 वर्ष आयु की जनसंख्या	889	452	437
लिंग अनुपात (महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष)	857	-	-
बाल लिंग अनुपात (0-6 वर्ष, प्रति 1000)	967	-	-
साक्षरता दर (%)	27.95	33.59	21.17
अनुसूचित जाति	64	36	28
अनुसूचित जनजाति	0	0	0

स्रोत: विस्तृत ग्राम प्रोफ़ाइल व आँकड़े (जनगणना, 2011) से संकलित। हार्दिक संदर्भ: Hardaspur, Bakhtiarpur, Patna–जनसंख्या, बाल जनसंख्या, साक्षरता, SC/ST व कार्य-प्रोफ़ाइल के आधिकारिक टेबुलर विवरण।

हरदासपुर गाँव का विस्तारपूर्वक विवरण :

1. भौगोलिक स्थिति :

हरदासपुर ग्राम बख्तियारपुर प्रखंड, पटना जिला, बिहार में स्थित है। यह उपखंड मुख्यालय बख्तियारपुर से लगभग 11 किमी दूर है, और जिला मुख्यालय पटना से दूरी लगभग 65 किमी है। ग्राम पंचायत का नाम हरदासपुर दियारा है।

क्षेत्रफल और आधारभूत संरचना

गाँव का कुल क्षेत्रफल लगभग 943 हेक्टेयर (9.43 किमी²) है । 2011 में आय कुल 708 पारिवारिक घरों में फैली हुई थी । गाँव का प्रशासन सरपंच द्वारा किया जाता है, जो पंचायती राज अधिनियम के अधीन निर्वाचित होता है । सार्वजनिक परिवहन उपलब्धता– लोकल बस सेवाएं लगभग 5-10 किमी दूर और रेलवे स्टेशन लगभग 10 किमी दूर है ।

2. सामाजिक-आर्थिक संरचना

SC 人口 लगभग 1.44% (64 लोग) हैं, और ST की संख्या नगण्य है । 2011 में कुल कार्यशील जनसंख्या 1,352 थी, जिसमें 94.7% मुख्य श्रमिक थे और 5.3% सीमांत श्रमिक थे । मुख्य श्रमिकों में से लगभग 820 कृषक (स्वयं या सह-मालिक) थे और 381 कृषि मजदूर थे । यह कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को दर्शाता है।

3. पड़ोसी गाँवों का विवरण

हरदासपुर के आसपास कई गाँव हैं:

- रामनगर दियारा (जनसंख्या ~1,975)
- हशीमपुर (~294)
- रूपस महागी (~19,376)
- अलिपुर बिहटा (~8,060)
- सलीमपुर (~3,223)
- डुमान (~4,128)
- मोगलपुरा (~3,897)

ये आंकड़े विभिन्न स्रोतों से संकलित हैं(जनगणना, 2011) उच्च जनसंख्या वाले पड़ोसी गाँवों (जैसे रूपस महागी, अलिपुर बिहटा) के कारण हरदासपुर को सामुदायिक और व्यापार संबंधी सुविधाओं का लाभ मिल सकता है।

4. बदलते रुझान और चुनौतियाँ

- 2024 तक प्रति वर्ष औसत वृद्धि दर अनुमानतः 1.57% है ।
- साक्षरता दर 2011 में मात्र 27.95% थी; इस बढ़त को बढ़ाने में शिक्षा अधोसंरचनाओं की कमी एक प्रमुख चुनौती है।
- बाल जनसंख्या (0-6 वर्ष) का उच्च प्रतिशत (19.95%) युवा आबादी को दर्शाता है, जो भविष्य में शिक्षा और रोजगार के दबाव को बढ़ा सकता है।

5. संभावनाएँ और विकास संबंधी दृष्टिकोण

- आसपास के गाँवों से संपर्क और संसाधन साझा करने की संभावनाएँ (जैसे बाज़ार, स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा) सहज विकास की नींव बन सकती हैं।
- साक्षरता सुधार, विशेषकर महिला साक्षरता, गांव की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करेगा।
- जनसंचार (मोबाइल, पंचायत घोषणाएँ आदि) आपदा प्रबंधन और सूचना प्रसार के लिए महत्वपूर्ण है।

आपदा प्रबंधन और राहत कार्य मे जनसंचार की भूमिका से संबंधित आंकड़ें:

- क्या आपको लगता हैं कि आपदा आने से पूर्व जनसंचार द्वारा सूचनाएं प्राप्त होती है?

हाँ : 60%

नहीं: 40%

- आपदा ओर राहत कार्यों मे जनसंचार के परंपरागत तथा आधुनिक साधन का अधिक संयोजित प्रयोग किया जाना चाहिए?

हाँ: 55%

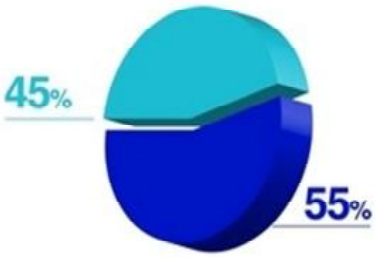

नहीं: 45%

- क्या आपदा के समय जनसंचार के साधन लोगो को एक दूसरे के मदद के लिए प्रेरित करते है?

हाँ: 35%

नहीं: 65%

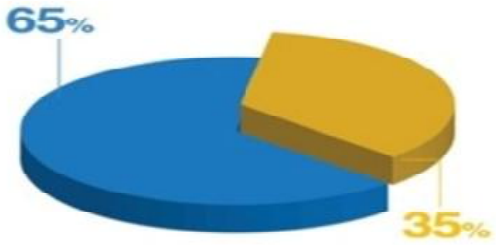

- क्या जनसंचार के साधन प्रत्येक जगह राहत कार्यों को सफल बनाने में सहयोगी है?

हाँ: 70%

नहीं: 30%

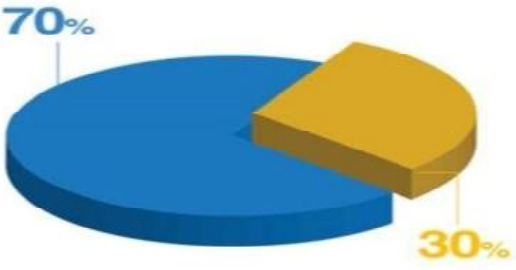

समस्याएँ :

1. **शिक्षा की कमी :** गाँव में प्राथमिक विद्यालय तो है, लेकिन उच्च शिक्षा की सुविधा नहीं होने के कारण बच्चे आगे की पढ़ाई के लिए शहरों पर निर्भर हैं। इससे विद्यालय छोड़ने की दर अधिक है।
2. **स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी :** गाँव में कोई बड़ा स्वास्थ्य केंद्र नहीं है, केवल एक आँगनबाड़ी केंद्र और छोटा उपकेंद्र है। गंभीर बीमारियों में लोगों को प्रखंड या जिला अस्पताल जाना पड़ता है।
3. **रोजगार का संकट :** कृषि ही मुख्य जीविका है, लेकिन सिंचाई साधन सीमित हैं। वर्षा पर निर्भरता अधिक होने से उत्पादन स्थिर नहीं रहता। युवाओं को रोजगार के लिए शहरों या बाहर राज्यों में पलायन करना पड़ता है।
4. **महिलाओं की स्थिति :** महिलाएँ आज भी घरेलू काम और खेतों तक सीमित हैं। आत्मनिर्भरता और स्वरोजगार के अवसर बहुत कम हैं।
5. **बुनियादी ढाँचे की समस्या :** कुछ सड़कों की स्थिति खराब है। पेयजल की आपूर्ति हैंडपंप और कुओं से होती है, लेकिन गर्मियों में पानी की समस्या गंभीर हो जाती है।

समाधान :–

हरदासपुर गाँव एक पारंपरिक ग्रामीण समाज का प्रतिनिधि है जहाँ लोग सामुदायिक जीवन और कृषि पर निर्भर हैं। 2011 की जनगणना से अब तक कुछ सकारात्मक बदलाव हुए हैं– बिजली की उपलब्धता, मोबाइल और इंटरनेट की पहुँच बढ़ी है, जिससे सूचना का प्रसार हुआ है। शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है और अब अधिक बच्चे विद्यालय जाते हैं। इसके बावजूद, गाँव की बड़ी समस्याएँ जैसे बेरोजगारी, स्वास्थ्य सेवा की कमी, और महिलाओं की सीमित भागीदारी अब भी बनी हुई हैं। पलायन की प्रवृत्ति विशेषकर युवाओं में तेजी से देखी जाती है। कुल मिलाकर, यह निष्कर्ष निकलता है कि हरदासपुर गाँव में विकास की संभावनाएँ तो बहुत हैं, लेकिन इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महिलाओं के सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :–

हरदासपुर गाँव का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह गाँव पारंपरिक ग्रामीण जीवनशैली और आधुनिक विकास की प्रक्रिया के बीच संतुलन बनाने की स्थिति में है। जनगणना के आँकड़ों की तुलना से यह पता चलता है कि शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका में कुछ प्रगति हुई है, परंतु अभी भी बुनियादी सुविधाओं की कमी प्रमुख समस्या है। स्वच्छ पानी, बेहतर सड़कें, स्वास्थ्य केंद्र और रोजगार के अवसर ग्रामीणों की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। महिलाओं और बच्चों की स्थिति को सुधारने की आवश्यकता है ताकि सामाजिक समानता और सशक्तिकरण को बल मिल सके। कृषि अभी भी प्रमुख आजीविका का साधन है, लेकिन आधुनिक तकनीक और सरकारी योजनाओं की कमी विकास की गति को धीमा करती है। कुल मिलाकर, हरदासपुर गाँव में विकास की संभावनाएँ बहुत हैं, बशर्ते कि शासन, स्थानीय नेतृत्व और समुदाय मिलकर शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और रोजगार पर केंद्रित योजनाओं को सही ढंग से लागू करें। इस प्रकार, गाँव आत्मनिर्भर और सतत विकास की ओर अग्रसर हो सकता है।

हरदासपुर गाँव के लिए सुझाव :–

- **आपदा प्रबंधन प्रशिक्षण :** गाँव में समय–समय पर आपदा प्रबंधन (बाढ़, आग, महामारी आदि) से संबंधित

प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाएँ ताकि ग्रामीण स्वयं एवं दूसरों को सुरक्षित रख सकें।

- **सशक्त जनसंचार प्रणाली :** पंचायत स्तर पर लाउडस्पीकर, मोबाइल अलर्ट और व्हाट्सएप ग्रुप जैसे त्वरित सूचना साधनों का उपयोग बढ़ाया जाए ताकि आपदा के समय सूचना तुरंत प्रत्येक परिवार तक पहुँच सके।
- **स्थानीय स्वयंसेवक दल :** युवाओं को संगठित कर "आपदा राहत दल" बनाया जाए, जो राहत सामग्री वितरण, लोगों को सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने और प्रशासन को सहयोग करने में सक्रिय भूमिका निभा सके।
- **स्वास्थ्य एवं राहत केंद्र :** आपदा के समय अस्थायी स्वास्थ्य शिविर और राहत शिविर स्थापित किए जाएँ, जिनमें दवाइयाँ, स्वच्छ पानी और भोजन की समुचित व्यवस्था हो।
- **प्रशासन और संगठनों का सहयोग :** स्थानीय प्रशासन, एनजीओ और सामुदायिक संस्थाओं को आपदा प्रबंधन योजनाओं में शामिल कर साझा रणनीति बनाई जाए।
- **सतत मूल्यांकन और मुआवजा :** आपदा के बाद गाँव की क्षति का सही आकलन किया जाए और प्रभावित परिवारों को सरकार द्वारा शीघ्र आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराया जाए।

संदर्भ सूची :–

1. दुर्खीम, ई. (2008). धार्मिक जीवन के प्राथमिक रूप (के. ई. फील्ड्स, अनुवादक). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कार्य 1912 में प्रकाशित).
2. मर्टन, आर. के. (1968). सामाजिक सिद्धांत और सामाजिक संरचना. फ्री प्रेस. (मूल कार्य 1938 में प्रकाशित).
3. वेबर, एम. (2019). अर्थव्यवस्था और समाज : एक नया अनुवाद. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कार्य 1922 में प्रकाशित).
4. कुमार, आर., एवं देवी, एस. (2021). बिहार के ग्रामीण क्षेत्र में स्व–सहायता समूहों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण : एक अध्ययन. पटना : नालंदा ओपन यूनिवर्सिटी.
5. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2022). ग्रामीण आजीविका और महिला सशक्तिकरण पर वार्षिक रिपोर्ट (2021–22). नई दिल्ली : भारत सरकार.
6. जनगणना भारत. (2011). जनगणना 2011 : बिहार, पटना जिला, बख्तियारपुर प्रखंड, हरदासपुर ग्राम प्रोफाइल. नई दिल्ली : भारत सरकार, रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय.
7. द हिंदू. (2021, 3 सितम्बर). ग्रामीण बिहार में आपदा प्रबंधन : एक संचार परिप्रेक्ष्य. द हिंदू. https://www.thehindu.com/.....
8. डाउन टू अर्थ. (2022, 25 अगस्त). स्थानीय संचार प्रणाली कैसे आपदाओं के दौरान जीवन बचाती है. सेंटर फॉर साइंस एंड एन्वायरनमेंट. https://www.downtoearth.org.in/.....
9. टाइम्स ऑफ इंडिया. (2020, 11 अगस्त). बिहार बाढ़ राहत में मोबाइल संचार की भूमिका. टाइम्स ऑफ इंडिया. https://timesofindia.indiatimes.com/.....
10. एनडीटीवी. (2023, 17 जुलाई). बिहार बाढ़ : ग्रामीण क्षेत्रों में संचार की चुनौतियाँ और राहत कार्य. एनडीटीवी. https://www.ndtv.com/.....

ईमेल – nitishvrdhan@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395-7115